राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा — वर्ष 20 अंक 1, जनवरी–जून 2018
Regd. No. UPHIN/1999/00955 — ISSN 0974-0074

भारतीय राष्ट्रवाद एवं अस्मिता के संकट की चुनौतियाँ

❑ प्रोफेसर पी०एन० पाण्डेय

राष्ट्रवाद की संकल्पना की व्याख्या समकालीन समाज वैज्ञानिकों द्वारा प्रायः विश्व स्तर पर सामान्यतः राजनीतिक अवधारणा और आशय के रूप में ही होने लगी है। कारण यह कि १८वीं और १९वीं सदी की औद्योगिक क्रान्ति के साथ ही पूरे विश्व में औपनिवेशिक एवं साम्राज्यवादी शासनों से मुक्ति पाकर राष्ट्र-राज्यों का उदय हुआ है और यह प्रघटन विकासशील देशों में विशेषकर दृश्यमान है अर्थात् एशिया, अफ्रीका एवं लैटिन अमेरिका के देशों में। इन देशों में आज भी स्वशासी राष्ट्र-राज्यों की स्थापना के संघर्ष जारी हैं। विकासशील देशों में भारत का राजनीतिक राष्ट्रवादी स्वरूप विश्व के सबसे बड़े समाजवादी जनतांत्रिक ढांचे के रूप में उभरा है। राष्ट्रीयता वस्तुतः विशिष्ट सांस्कृतिक अस्मिता का द्योतक है और राष्ट्रवाद उसी अस्मिता के साथ अप्रतिम रूप से उस संस्कृति से सम्बद्ध लोगों का भावनात्मक एवं चेतनात्मक उद्गार है। अर्थात् राष्ट्रीयता एक निश्चित भू-भाग में निवास करने वाले जन समुदाय की संस्कृति का परिचायक प्रतिनिधान है और राष्ट्रवाद उस संस्कृति से जुड़ी सामूहिक अस्मिता-वैशिष्ट्य के प्रति अप्रतिम निष्ठा एवं मतैक्यपूर्ण लगाव है।

सामान्यतः राष्ट्र या राष्ट्रवाद की संकल्पना को पाश्चात्य चिन्तन की उपज माना जाने लगा है जो पूर्णतः अतार्किक एवं भ्रान्तिपूर्ण है। कुछ प्रमुख समाज वैज्ञानिक भारतीय राष्ट्रवाद को ब्रिटिश उपनिवेशवाद द्वारा आविर्भूत आर्थिक दशाओं का परिणाम मानते हैं, या तो पाश्चात्यवाद के प्रभाव से उनके विचार पूर्णतः ढंके हुए हैं या फिर वे भारत के सांस्कृतिक एवं राजनीतिक इतिहास के घटनाक्रमों की अनदेखी करते हैं। यह सत्य है कि ब्रिटिश शासन काल के दौरान भारत में राष्ट्रवाद की भावना एवं राजनीतिक सक्रियता विशेष प्रखर और मुखर हुई, किन्तु इतिहास के विभिन्न कालक्रमों के सर्वेक्षण से परिलक्षित होता है कि भारत की वैदिक संस्कृति में भी राष्ट्र की संकल्पना उजागर रही चाहे वह महाभारत का प्रकरण हो या स्मृतियों का युग हो। पुनः भारत के प्राचीन, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास तक विशेषकर चन्द्रगुप्त मौर्य से लेकर गुप्तों के शासनकाल तक और आगे तुर्कों और मुगलों के साम्राज्य तक भारत के राष्ट्रीय चरित्र एवं भारतीय राष्ट्रवाद का उल्लेख है। प्रस्तुत आलेख के अंतर्गत भारतीय राष्ट्रवाद के उदय एवं अस्मिता के संकट की चुनौतियों को आलोकित किया गया है।

सामान्यतः राष्ट्र या राष्ट्रवाद की संकल्पना को पाश्चात्य चिन्तन की उपज माना जाने लगा है जो पूर्णतः अतार्किक एवं भ्रान्तिपूर्ण है। कुछ प्रमुख समाज वैज्ञानिक भारतीय राष्ट्रवाद को ब्रिटिश उपनिवेशवाद द्वारा आविर्भूत आर्थिक दशाओं का परिणाम मानते हैं।[1] या तो पाश्चात्यवाद के प्रभाव से उनके विचार पूर्णतः ढंके हुए हैं या फिर वे भारत के सांस्कृतिक एवं राजनीतिक इतिहास के घटनाक्रमों की अनदेखी करते हैं। यह सत्य है कि ब्रिटिश शासन काल के दौरान भारत में राष्ट्रवाद की भावना एवं राजनीतिक सक्रियता विशेष प्रखर और मुखर हुई, किन्तु इतिहास के विभिन्न कालक्रमों के सर्वेक्षण से परिलक्षित होता है कि भारत की वैदिक संस्कृति में भी राष्ट्र की संकल्पना उजागर रही चाहे वह महाभारत का प्रकरण हो या स्मृतियों का युग हो। पुनः भारत के प्राचीन, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास तक विशेषकर चन्द्रगुप्त मौर्य से लेकर गुप्तों के शासनकाल तक और आगे तुर्कों और मुगलों के साम्राज्य तक भारत के राष्ट्रीय चरित्र एवं

❑ पूर्व अध्यक्ष एवं निदेशक समन्वित ग्रामीण विकास केन्द्र, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)

भारतीय राष्ट्रवाद का उल्लेख है। अकबर के शासन काल के तत्कालीन विक्टोरिया युग के अंग्रेजी राष्ट्र कवि आल्फ्रेड टेनिसन अपनी कविता 'अकबर्स ड्रीम'[२] में अकबर के व्यक्तित्व, कृतित्व एवं शासन शैली तथा तत्कालीन समाज के चिन्तन को व्यक्त किया है। उक्त पंक्तियों की आख्या से परिलक्षित होता है कि सम्राट अकबर ने हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, सिख, बौद्ध सभी धर्मो को समादर की कसौटी पर रखा। उसकी अभीप्ता भारत में एकता, अखण्डता और राष्ट्रीय सम्प्रभुता को ही स्थापित करने की रही। स्वाभाविक है कि एक ही पृष्ठभूमि में हिन्दू, मुस्लिम एवं अन्यान्य साम्प्रदायिक समूहों को लाकर आरूढ़ करने का उसका प्रयास इसी दृष्टि से राष्ट्रीयता का प्रयास कहा जा सकता है। वह एनकेन प्रकारेण अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए प्रयत्नशील था। राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रवाद किसी एक भाषाभाषी समूह या सम्प्रदाय या प्रजाति द्वारा आबद्ध नहीं होता, अपितु इसमें भाषा, धर्म, प्रजाति एवं नस्ल के जनसमूहों की सामूहिक चेतना समाविष्ट रहती है।

पुनः भारत के १८वीं और १९वीं शदी के पुनर्जागरण काल का समाजशास्त्रीय सर्वेक्षण करें तो परिलक्षित होता है कि पुनर्जागरण काल के राष्ट्रवादी आन्दोलन को जो सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक आधार मिला, जिसके माध्यम से राष्ट्रीय अखण्डता और एकता को अनुप्राणित किया गया उसे निम्नांकित प्रारूपों में अभिव्यक्त किया जा सकता है :-

१. सुधारवादी सम्प्रदाय एवं संस्थाएँ : इसमें राजाराम मोहन राय (१७७२-१८३३), दयानन्द सरस्वती (१८२४-१८८३), केशवचन्द सेन (१८३८-१८८४), विवेकानन्द (१८६३-१९०२), एनी बेसेन्ट (१८४७-१९३३), महादेव गोविन्द रानाडे (१८४२-१९०१), दादा भाई नैरोजी (१८२५-१९१७), फिरोज शाह मेहता (१८४५-१९१५), सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी (१८४८-१९२५), गोपाल कृष्ण गोखले (१८६६-१९१५), महामना मालवीय (१८६१-१९४६) और श्रीनिवास शास्त्री (१८६६-१९४६) मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं।

बंगाल में ब्रह्मसमाज, उत्तर भारत में आर्यसमाज तथा बम्बई में प्रार्थना समाज क्रमशः राजाराम मोहन राय, दयानन्द सरस्वती एवं रानाडे तथा केशवचन्द सेन के प्रयासों ने स्थापित संस्थाएं सुसुप्त राष्ट्रवाद को पुनः सचेष्ट एवं अनुप्राणित कर दीं। इसी समय दादा भाई नैरोजी जैसे विचारक ने 'पावर्टी एण्ड अनब्रिटिश रूल इन इण्डिया' नामक पुस्तक लिखी तथा तत्कालीन ब्रिटिश शासन द्वारा भारत के सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक शोषण के पहलुओं को उजागर करते हुए ब्रिटिश उपनिवेशवाद को सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिकता के शोषक के रूप में चुनौती देने का उद्घोष किया।

२. उग्र राष्ट्रवादी विचारधारा : इसके पोषक बाल-लाल-पाल माने जाते हैं। महाराष्ट्र में बालगंगाधर तिलक (१८५६-१९२०), पंजाब में लाला लाजपत राय (१८६५-१९२८), और बंगाल में विपिनचन्द पाल (१८५८-१९३२) का आविर्भाव हुआ, जिन्होंने न केवल राष्ट्रवाद के सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक सिद्धान्त का उद्घोष किया किन्तु ब्रिटिश साम्राज्यवाद को समूल उखाड़ फेकने तथा स्वतन्त्रता के जन्मसिद्ध अधिकार का दावा किया।

३. साम्प्रदायिक चुनौतियों से जुड़ी विचारधारा : पृथक हिन्दू एवं मुस्लिम राष्ट्र की संकल्पना के अग्रसर होने वालों में हिन्दू राष्ट्र पोषक विनायक दामोदर सावरकर (१८८३७१९६६) और मुस्लिम राष्ट्र पोषकों में सरसैय्यद अहमद (१८१७-१८९८), मुहम्मद इकबाल (१८७३-१९३८) और मुहम्मद अली जिन्ना (१८७६-१९४८) विशेष उल्लेखनीय हैं।

४. संश्लेषणवादी राष्ट्रीय विचारधारा : इस श्रेणी में महामना पं० मदनमोहन मालवीय (१८६१-१९४६), रवीन्द्रनाथ टैगोर (१८६१-१९४१), महात्मा गांधी (१९६९-१९४८), अरविन्द (१८७२-१९५०), मानवेन्द्रनाथ राय (१८८६-१९५४) पं० जवाहरलाल (१८८९-१९६४) आचार्य नरेन्द्र देव (१८८९-१९५६), आचार्य विनोबा (१८९५-१९८४), नेताजी सुभाषचन्द बोस (१८९७-१९५५), राममनोहर लोहिया (१९१०-१९६७) तथा लोकनायक जयप्रकाश नारायन (१९०२-१९७१) को लिया जा सकता है।

इस प्रकार भारत में राष्ट्रवादी वैचारिकी के प्रणेता एवं प्रवर्तकों की एक लम्बी श्रृंखला १७७२ (राजाराम मोहन राय) से लेकर १६७६ (जयप्रकाश नारायण) तक दीख पड़ती है। पुनः समकालीन राष्ट्रीय पटल पर राष्ट्रीय विचारकों की शून्यता दीख पड़ती है।

अस्मिता के संकट की चुनौतियों के प्रसंग में देखा जाय तो परिलक्षित होता है कि भारतीय राष्ट्रवाद का सामाजिक संरूपण विषमता और विविधता से इस प्रकार बंधा है कि सामाजिक संरचना का स्वरूप एक विशिष्ट चित्रण प्रस्तुत करता है जहां संरचनात्मक उपादानों जैसे ३००० से भी ऊपर जातीय इकाई या संयुक्त परिवार, विवाह तथा जजमानी व्यवस्था से सम्बद्ध ग्रामीण समुदाय एवं कृषकीय अर्थव्यवस्था की प्रभारता के अतिरिक्त सांस्कृतिक उपादानों और अंतर्निहित संस्थात्मक विशेषताओं जैसे- वर्णाश्रम, पुरूषार्थ, कर्म का सिद्धान्त, धर्म की धारणा के अतिरिक्त बहुतेरे साम्प्रदायिक, धार्मिक, प्रजातीय समूहों का समावेश, भाषाओं और स्थानीय बोलियों का बाहुल्य, विविध सांस्कृतिक एवं उप सांस्कृतिक विधि-विधानों के साथ ही परिस्थितिकीय सांस्कृतिक विशिष्टताओं पर आधारित जनजातीय ग्रामीण और नगरीय समुदाय सामाजिक व्यवस्था के विशिष्ट एवं जटिल पार्श्वचित्र का प्रक्षेपण करते हैं। भारतीय समाज व्यवस्था में हो रहे सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन उच्च स्तरीय अभिनवात्मक एवं तार्किक अभिगमों एवं अवधारणाओं की अपेक्षा करते हैं, जो इन परिवर्तनों की व्यावहारिक व्याख्या करने में सक्षम हैं, और समकालीन भारतीय समाज में व्याप्त प्रस्थितीय सारूप्य के संकट अर्थात् अस्मिता या अहमूवाद के संकट का निदानात्मक और उपचारात्मक विश्लेषण प्रस्तुत कर सकते हैं। समकालीन भारत सजातीय क्षेत्रवाद, धार्मिक उन्माद, महिला आन्दोलन, पिछड़े एवं अनुसूचित जातियों के बढ़ते जनाक्रोश एवं जन आन्दोलन, समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से देखा जाय तो वस्तुतः अस्मिता-संकट के रूग्ण पुंज का संकेत करते हैं, जो न केवल शासन तंत्र, राजनीतिज्ञ, विधायक मण्डल और विधायनकारी अभिकरणों के लिए अध्ययन की वस्तु है, अपितु समकालीन भारतीय समाजशास्त्रियों के लिए अध्ययन की चुनौतियों के रूप में अग्रसर हुए हैं। ऐसे संकट भारत के समाज वैज्ञानिकों एवं समाजशास्त्रियों से दिशा-निर्देश और यथार्थ विश्लेषण की अपेक्षा करते हैं, जिनसे भावी सामाजिक संरचना अपने सामाजिक संगठन के स्वरूप को उत्तरोत्तर कायम रख सके।

सामयिक परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में भारतीय संरचना का विवेचन करने पर परिलक्षित होता है कि आधुनिक शिक्षा, पाश्चात्य प्रविधि, औद्योगीकरण, नगरीकरण, यातायात-संचार साधन और इनके अतिरिक्त भौतिकवाद और अभिनववादी प्रवृत्तियों के जागरण से प्रादुर्भूत होकर आधुनिकीकरण की शक्तियों ने जातीय संरचना, श्रेणीकरण, सामाजिक स्तरण, कर्म की सैद्धान्तिक मान्यता, शुद्धता और अशुद्धता की धारणा से जुड़ी बहुतेरी सशक्त परम्पराओं पर सांघातिक प्रहार किया है।[३] इन शक्तियों के प्रहार ने नियत और निश्चित रूप से भारतीय समाज की संरचनात्मक और संस्थात्मक पहलुओं में आमूल परिवर्तन किये हैं। यह एक यथार्थता है। इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप सवर्ण हिन्दुओं से लेकर पिछड़ी जातियों, अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के सामाजिक, सांस्कृतिक और परिस्थितीय चेतन स्तर में विशेष जाग्रति आयी है। फलतः समकालीन भारतीय समाज में उभरता असंतुलन, द्वन्द्व और कलह न केवल आर्थिक हितों को लेकर है, अपितु शक्ति, प्रतिष्ठा और सत्ता की अभिप्राप्ति हेतु विभिन्न क्षेत्रीय समूह तथा भारतीय जनसमुदाय की विभिन्न इकाइयां अपने अस्तित्व, अधिकार और अस्मिता अर्थात् स्वयं की परिचयात्मक विशेषताओं के पुनःप्रस्थापित करने हेतु अग्रसर हुई हैं।

अस्मिता के संकट का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य : ऐतिहासिक सर्वेक्षणों से परिलक्षित होता है कि अस्मिता का संकट वास्तव में नवीन और समकालीन समाज की उपज नहीं है। इतिहास के विभिन्न कालक्रमों में परिवर्तन की प्रक्रिया के फलस्वरूप संगठन, विघटन और रूपान्तरण की गतिविधियां संचालित रही हैं। सामाजिक परिवर्तन का यह स्वरूप चुनौती और प्रत्युत्तर की प्रक्रिया के माध्यम से हमेशा अग्रसर हुआ है। इतिहास के प्रारम्भिक

काल में अस्तित्व से जुड़े संकट आये। शक, पर्थ, हूण तदोपरान्त तुर्क एवं उनकी उपशाखाओं तथा मुस्लिम, जैसे- खिलजी, लोदी एवं महान मुगल ताकतवर समूहों तथा कालान्तर में अंग्रेजों के आगमन, आक्रमण एवं आव्रजन के फलस्वरूप उभरे, जिनकी ऐतिहासिकता चतुर्थ सदी बी०सी० से सोलहवीं सदी ए०डी० तक कायम रही, वहां पर प्राथमिक संकट अस्तित्व रक्षा, रक्त प्रदूषण से बचाव और सजातीय संगठन से सम्बन्धित अस्मिता से जुड़े थे।[४] इस प्रकार विदेशी आक्रमण, साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद ने भारतीय जनजीवन के समाने अस्मिता का संकट प्रकट किया है। इस प्रकार का संकट तत्कालीन भारतीय समाज की सामूहिकता के अस्मिता और अस्तित्व से जुड़ा था। समकालीन भारतीय समाज में वर्तमान में जो संकट उभरे हैं उनमें सामूहिकता और एकीकृत अस्तित्व की अस्मिता का स्थान सामाजिक विखण्डन ने ले रखा है। फलतः वर्तमान भारत में जो अस्मिता की पहचान और अस्तित्व अथवा प्रस्थितीय सारूप्य की रक्षा से जुड़े प्रश्न धार्मिक, साम्प्रदायिक, भाषायी और सजातीय क्षेत्रवाद के रूप में उभर रहे हैं, वे प्रत्येक धर्म, भाषा, संस्कृति और क्षेत्रीयता से जुड़े जनसमूहों के पृथक अस्तित्व, अधिसत्ता, शक्ति एवं प्रतिष्ठा की प्रस्थापना और प्रसार की मांग आन्दोलनात्मक स्वरूप ग्रहण कर रहे हैं।[५] इनकी प्रकृति ऐतिहासिक मध्यकालीन अथवा ब्रिटिशकालीन सामाजिक संकटों से पृथक है क्योंकि मध्यकाल और ब्रिटिशकाल का संकट विदेशी तथा आक्रमणकारी समूहों की अधिसत्ता को हटाने से जुड़ा था, जबकि वर्तमान स्थिति में उभरता अस्मिता का संकट सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक संसाधनों, अधिकारों तथा शक्ति एवं प्रतिष्ठा के समान स्तर पर अभिप्राप्ति से जुड़ा है।

प्रस्तुत निबन्ध को कुछ मूलभूत सैद्धान्तिक प्रश्न बिन्दुओं एवं समस्याओं को लेकर अग्रसारित किया गया जो निम्नांकित है-

१. भारतीय समाज में पृथकतावादी प्रवृत्तियां क्यों उभर रही हैं? क्या पृथकतावादी प्रवृत्तियों का उभार आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विषमताओं का परिणाम होता है।
२. क्या भारत की प्रादेशिक विशेषताएं और उपसंस्कृतीय भिन्नताएं पृथकतावादी प्रवृत्तियों को अग्रसारित कर विभिन्न समूहों की प्रस्थितीय चेतना और राजनीतिक जागरूकता को बढ़ाने में प्रोत्साहित करती हैं? क्या इस प्रकार का पृथकतावादी प्रोत्साहन उन्हें अस्मिता के संकट का आभास दिलाता है?
३. क्षेत्रीय एवं प्रादेशिक विविधताओं और विषमताओं के परिणामस्वरूप क्या भारतीय सामाजिक संगठन का एकीकरण सम्भव है?
४. विभिन्न सजातीय समूहों के समन्वय एवं व्यवस्थापन के क्या आधार हो सकते हैं? क्या जनतांत्रिक आधार पर सांविधिक रूप से स्थापित समाजवादी संरचना और कल्याणकारी राज्य की अभिकल्पना से विभिन्न सजातीय समूह, धार्मिक एवं साम्प्रदायिक समूह सन्तुष्ट हैं?
५. प्रादेशिक स्तर पर विभिन्न जातिगत, धर्मगत एवं भाषागत समूहों में आन्तरिक संघर्ष को बढ़ावा देने में समकालीन भारतीय राजनीति एवं राजनीतिज्ञों की क्या भूमिका निहित है?

उपर्युक्त कुछ मूलभूत प्रश्नों को समाजशास्त्रीय प्रस्थापना के रूप में रखकर निबन्ध की व्याख्या को बढ़ाया गया है। भाषा, धर्म, क्षेत्रीयता उपसंस्कृति से समायोजित भारतीय समाज के लिए एकीकरण का आधार मुख्यतः भावनात्मक एवं चेतनात्मक है न कि मूर्त आधार इसके एकीकरण में संलग्न है। ऐसे राष्ट्र में जो बहुस्तरीय सामाजिक विविधता से समायोजित हो अर्थात् जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्रीयता का प्रतिनिधित्व हो वहां पर समाज वैज्ञानिक ऐसे समाज के परिवर्तन की प्रवृत्ति को समझाने के लिए विफल होंगे। विफलता का कारण यह हो सकता है कि कोई निर्णायकवादी सिद्धान्त भारतीय समाज के सभी पहलुओं का समग्रतामूलक विश्लेषण करने में अक्षम है। सामाजिक संरचना एवं व्यवस्था का विवेचन इसके समग्र रूप में न तो ऐतिहासिक पद्धतियों[६] द्वारा न ही प्रकार्यात्मक एवं द्वन्द्वात्मक प्रारूपों पर आधारित संरचनात्मक अभिगम[७] द्वारा पूर्ण रूप में

सम्भव है और न संस्कृतिकरण के सिद्धान्त[८], बहुपारम्परिक अभिगम[९] अथवा समन्वयकारी सिद्धान्त[१०] द्वारा सम्भव है, जिन्हें प्रमुख समाजशास्त्रियों, जैसे- ड्यूमा, डी०पी० मुखर्जी, ए०आर० देसाई, दुबे, श्रीनिवास, योगेन्द्र सिंह आदि लोगों ने व्यक्त किया है। ये किन्हीं अर्थों में भारतीय समाज व्यवस्था की अधूरी कहानी को ही अभिव्यक्त करते हैं।

ऐसी वस्तु स्थिति जबकि सामाजिक परिवर्तन की प्रवृत्तियां तीव्र होती हैं तो न केवल राष्ट्रीय सामूहिकता को अपितु राष्ट्रीय सामूहिकता के भीतर सन्निहित विभिन्न क्षेत्रीय एवं सजातीय समूहों, प्रजातियों एवं समुदायों के निजी अस्तित्व एवं स्वायत्तता से जुड़ी पहचान की विशिष्टता पर संघात करने वाले परिवर्तनों और प्रभावों अथवा परिवर्तनकारी अभिकरणों की अस्मिता के संकट को व्यक्त करती है। अवधारणात्मक आधार पर समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विश्लेषण किया जाय तो अस्मिता की अवधारणा किसी व्यक्ति जाति, धर्म, प्रजाति, सजातीय समूहों अथवा समुदाय की अन्तःजन्य विशिष्टताओं को अभिबोधित करती है। अर्थात् किसी भी व्यक्ति, समूह अथवा समुदाय के प्रस्थितीय सारूप्य को अस्मिता की अवधारणा से इंगित किया जा सकता है। ये विशिष्टताएं धर्म, भाषा, संस्कृति अथवा उपसंस्कृति द्वारा परिसीमित होकर पृथक परिचय बोध को संकेत करती हैं। यही पृथक परिचय बोध किसी जनसमूह की अस्मिता कहलाता है। सामान्य विवेचनों में जिसे हम पहचान अथवा परिचयात्मक विशिष्टता के नाम से संबोधित करते हैं, परिचयात्मक वैशिष्ट्य के विलय होने का भय तथा सांस्कृतिक, भाषायी और क्षेत्रीय भिन्नता के आधार पर विशिष्ट सामाजिक पहचान एवं परिचय अभिबोधन बनाये रखने की अभीप्सा भारत में राष्ट्रीय एकीकरण और अखण्डता की परिकल्पना को मूर्त रूप देने में अवरोध पैदा कर रही है। सामाजिक विकास अथवा रूपान्तरण की दौड़ में राष्ट्रीय अखण्डता की जगह सामाजिक विघटन अथवा विखण्डन की प्रवृत्तियों को अग्रसारित करने में आन्दोलन, सामाजिक अशान्ति, साम्प्रदायिक उन्माद, प्रजातीय द्वन्द्व एवं वर्ग संघर्ष को जन्म दे रही है। प्रत्येक धर्म, भाषा और संस्कृति से जुड़े जनसमुदाय समग्र संरचनात्मक परिवर्तन सामाजिक पुनर्निर्माण तथा सांस्कृतिक अभ्युत्थान में स्वजन समूहों, सजातीय क्षेत्रवाद, भाषायी समूहों एवं साम्प्रदायिक संगठनों के रूप में प्रकट हो रहे है। एक समाजशास्त्री अथवा समाजशास्त्र के अध्येता की हैसियत से मैं कह सकता हूँ कि इस प्रकार के तथाकथित तनाव और अर्न्तद्वन्द्वों का सृजन स्रोत स्वयं भारतीय सामाजिक संरचना है। जाति, धर्म शक्ति और क्षेत्रीयता के प्रति संकीर्ण भक्ति भावनाओं से ओत-प्रोत प्रतिक्रियावादी समूह अवतरित हुए हैं, जिनका आशय उन आवाजों और मांगों को आन्दोलन का स्वरूप देना है, जिनसे इनकी परिचयात्मक विशिष्टता यथावत कायम हो सके। इस दृष्टिकोण से खालिस्तान की मांग को लेकर पंजाब में संचालित सिक्ख आन्दोलन, असम में सक्रिय छात्र आन्दोलन एवं राजनीतिक शक्ति संरचना में परिवर्तन से सम्बन्धित आन्दोलन, मणिपुर, मिजोरम और नागालैण्ड में जनजातीय जागरूकता से जुड़े आन्दोलन, बंगाल की सीमा पर प्रारम्भ गोरखालैण्ड की मांग से जुड़ा गोरखा मुक्ति आन्दोलन[११], बिहार के छोटानागपुर क्षेत्र में उभरा जनजातीय झारखण्ड संगठन से जुड़ा आन्दोलन[१२], दक्षिण में तमिल और सिंघलियों का आन्दोलन, पर्वतीय क्षेत्रों में विदेशी प्रवासी समूहों के अनधिकृत प्रवासन के फलस्वरूप उनके विरूद्ध मूल निवासियों द्वारा अग्रसारित आन्दोलन, उत्तराखण्ड की पहाड़ी जनता के निजी पहचान से सम्बन्धित पृथक अस्तित्व मूलक आन्दोलन, उत्तरी भारत में विशेषकर हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख और अन्यान्य सम्प्रदायों के धार्मिक स्थलों और प्रतिष्ठानों के अस्तित्व रक्षा से जुड़े हुए जनाक्रोस, असन्तोष एवं तनाव, उत्तर प्रदेश एवं बिहार का किसान आन्दोलन कुछ ऐसे तथ्य सूचक हैं।[१३] इनसे परिलक्षित होता है कि भारत में विभिन्न धर्म, जाति और भाषा से जुड़े जन समुदाय स्वयं के परिचयात्मक विशेषताओं को पुनर्प्रस्थापित करने में जागरूक हैं। किसी व्यवस्था की पुनर्स्थापना का प्रश्न वस्तुतः समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से देखा जाय तो यह सामाजिक परिवर्तन की दौड़ में होता है, क्योंकि

परिवर्तन की शक्तियां पूर्व स्थापित आदर्शों, मान्यताओं, विधि विधानों एवं संस्थाओं को निर्मूल करती हैं और नवीन मूल्य, आदर्श, विधि-विधान एवं संस्थाएं आरोपित करती हैं। इस प्रकार प्राचीनता एवं नवीनता, आधुनिकता एवं परम्परा, धर्मजन्यता एवं धर्म निरपेक्षता के बीच समकालीन भारतीय जीवन और व्यवस्था खड़ी है। ऐसे परिवर्तन की स्थिति में भारतीय सामाजिक संरचना की अखण्डता में जाति, धर्म, भाषा और प्रजातीय विशेषताओं से जुड़े पृथक जन समुदाय अवयवीय संरचना के बाहर पृथक इकाई के रूप में अपनी प्रामाणिकता को पुनर्स्थापित करने हेतु विखण्डित होने लगे हैं।

भारतीय समाज के एक समीक्षक के रूप में समकालीन घटनाक्रमों एवं आन्दोलनों को समीक्षा के रूप में लेते हुए यह समाजशास्त्रीय निष्कर्ष देना अर्थपूर्ण एवं तथ्य संगत होगा कि समकालीन भारत अस्मिता का संकट वस्तुतः आधुनिकता एवं पारम्परिकता के बीच एक मूल्य संघर्ष है, वैचारिकी का संघर्ष है, जीवन शैली के प्रतिमानों के बीच का संघर्ष है। इस प्रकार का मूल्य संघर्ष वस्तुतः सामाजिक संकट का द्योतक है।[१४] एक ऐसा संकट जो सामाजिक व्यवस्था में अवरोध प्रादुर्भूत करता हो अथवा सामाजिक व्यवस्था की क्रियात्मकता में ह्रास एवं विसंगति लाता हो। समकालीन परिस्थितियों में भारतीय समाज के लिए इसकी भारतीयता अर्थात् अन्तःजन्य देशज विशेषताओं, संस्थाओं, परम्पराओं, व्यावहारिक नियामक, नीति, धर्म एवं जीवन शैली से जुड़ी विशेषताओं को कायम रखना आवश्यक है। अर्थात् संरचनात्मक सुदृढ़ता तभी सम्भव है जब संरचना की विभिन्न इकाइयां भी अपने अस्तित्व संकट से मुक्त होकर सामाजिक सुदृढ़ता और स्थिरता का आभास करें। इस दृष्टिकोण से विभिन्न भाषा-भाषी, धार्मिक एवं क्षेत्रीय समूहों के बीच सामाजिक-आर्थिक विभेद तथा तुलनात्मक अभाव बोध को सचेष्ट राष्ट्रीय एवं वैकल्पिक संगठनों के प्रयास से दूर कर सामाजिक सुदृढ़ता को कायम रखा जा सकता है और अस्मिता के संकट की भ्रामक मानसिकता के शिकार विविध जन समूहों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के दृष्टिकोण से समता एवं सापेक्षिक सान्निध्य के अवसर प्रदान कर समस्या का समाधान किया जा सकता है।

संक्षेप में अस्मिता के संकट से जुड़े कुछ मौलिक कारणों को निम्नांकित आधारों पर स्पष्ट किया जा सकता है-

१. विभिन्न क्षेत्रीय समूहों में आर्थिक अभाव बोध।
२. सामाजिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक दृष्टिकोण से तुलनात्मक दुराव।
३. प्रादेशिक स्तर पर विभिन्न क्षेत्रों में राजनीतिक अस्थिरता।
४. बुद्धिजीवी, राजनेता एवं नौकरशाही व्यवस्था के अधिकारीगणों का क्षेत्रीय जनता से आत्मीकरण का अभाव।
५. धर्म, परम्परा, एवं रूढ़ियों के भ्रामक नाम पर विकसित एवं प्रचलित अन्ध विश्वास।
६. भारतीय समाज की परिस्थितिकीय-सांस्कृतिक विविधता एवं विषमता
७. अन्तःसांस्कृतिक एवं अन्तःधार्मिक समन्वयात्मक अभिविनिमय की कमी।

उपर्युक्त कुछ प्रमुख मौलिक कारण एवं आधार हैं, जिनको प्रस्तुत लेख के माध्यम से प्रकट करने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार समकालीन भारतीय समाज में अस्तित्व एवं परिचयात्मक प्रधानता को लेकर विरोधाभाषी प्रवृत्तियां दृष्टिगत हो रही हैं। यह विरोधाभाष समन्वयात्मक और संघर्षात्मक दोनों ही स्वरूपों में प्रकट है। अस्मिता के संकट को लेकर उभरने वाले अवलोकनीय संघर्ष के आधार निम्नलिखित हैं-

१. धार्मिक उन्माद
२. सजातीय क्षेत्रीयता,
३. विभिन्न समूहों को विरोधात्मक आकांक्षाएं,
४. प्रादेशिक एवं स्थानीय राजनीति
५. सजातीय संगठन
६. सामाजिक विभेद एवं उग्र वर्ग चेतना
७. आप्रवासित समूहों के सात्मीकरण की समस्या।

संश्लेषण के आधारों में निम्नांकित कुछ प्रमुख तथ्यों को व्यक्त किया जा सकता है-

१. व्यवसायगत वर्ग संरचना
२. नियोजनात्मक रूप से आर्थिक विषमता का ह्रास
३. वाणिज्य एवं व्यवसाय विनिमय की अन्तःक्रिया
४. श्रम कौशल एवं विशेषीकरण
५. आर्थिक मनोवृत्तियां एवं प्रेरणाएं
६. तर्क संगत एवं निरपेक्ष दृष्टिकोण
७. समन्वयात्मक व्यक्तित्ववाद
८. सामान्य उपभोग के औपचारिक अभिकरण एवं संस्थान।

इस प्रकार अस्मिता का संकट भारतीय संभाग के सम्पूर्ण जनांकीय समुच्चय अर्थात् जनजातीय, ग्रामीण और नगरीय तीनों ही समुदायों में प्रकट अथवा परोक्ष रूप में प्रादुर्भूत हुआ है। जनजातीय समुदाय में जहां पृथक प्रादेशिक जनजातियों एवं स्वजन समूहों के बीच प्रतिस्पर्धा उभरी है, वहीं पर ग्रामीण समुदाय में पृथक जातीय संगठनों और विशेषकर उच्च, पिछड़ी एवं अनुसूचित जातियों के बीच गम्भीर प्रतिस्पर्धा एवं तनाव प्रादुर्भूत हुए हैं, जिसके फलस्वरूप ग्रामीण जनजीवन में सामाजिक असंतुलन और अशान्ति उत्पन्न हुई है। नगरीय संरचना के अन्दर देखा जाय तो मूल निवासी एवं प्रवासी विविध उपसंस्कृति समूहों के बीच सात्मीकरण की समस्या को लेकर सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में प्रतिस्पर्धा, तनाव एवं संघर्ष प्रादुर्भूत हुए हैं।

इस प्रकार अस्मिता का संकट भारतीय समाज में न केवल स्थानिक और प्रादेशिक है, अपितु अवलोकित परिणामों के अनुसार इसने राष्ट्रीय चरित्र का संकट आर्विभूत किया है।

निष्कर्षात्मक समीक्षा : प्रस्तुत निबन्ध के अन्तर्गत भारतीय समाज के विभिन्न पहलुओं में अस्मिता के पराभव के भय से उभरने वाली विभिन्न जातीय, क्षेत्रीय, भाषायी, धार्मिक और सांस्कृतिक व्यवस्थाओं तथा उनसे जुड़े जनसमुदायों की समकालीन घटनाओं का अवलोकन करने पर परिलक्षित होता है कि भारतीय समाज में बहुलक विषमताओं और विविधताओं के बावजूद सामाजिक एकीकरण और समन्वय की जो शक्तियां क्रियान्वित रही हैं, वे व्यवहारतः शिथिल हुई हैं और पृथकतावादी प्रवृत्तियों का उभार हुआ है। इन पृथकतावादी प्रवृत्तियों की उत्तरोत्तर वृद्धि में भारतीय समाज की क्षेत्रीय विशेषताएं और भिन्नताएं सजातीय क्षेत्रवाद के रूप में उभर कर प्रोत्साहनात्मक भूमिका पूरा कर रही हैं। समकालीन भारत में विभिन्न जातियों, सम्प्रदायों, प्रजातियों और क्षेत्रीय समूहों की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक शक्ति, प्रतिष्ठा और अधिसत्ता की प्राप्ति से सम्बन्धित द्वन्द्व, तनाव, जनाक्रोश और आन्दोलनों के फलस्वरूप राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया अवरूद्ध हुई है, जिसका परिणाम व्यापक स्तर पर राष्ट्रीय चरित्र की अस्मिता के संकट के रूप में उभरा है। इस प्रकार के सामाजिक विखण्डन से उभरने वाले सामाजिक असंतुलन का राजकीय और वैकल्पिक संगठनों, बुद्धिजीवियों, राजनीतिज्ञों और अधिकारी वर्गों के सक्रिय और सचेष्ट प्रयासों से समाधान किया जा सकता है। साथ ही भारतीय समाज के विभिन्न प्रादेशिक क्षेत्रों में राजनीति और राजनीतिज्ञों का झुकाव निहित पिछले स्वार्थों को छोड़कर समूह के हित में परित्याग एवं सहयोग की भावना से जुड़ना भी आवश्यक है; क्योंकि समकालीन भारत में उभरते विभिन्न क्षेत्रों के संघर्षों पर प्रकाशित गवेषणात्मक निबन्धों में स्थानिक राजनीति और राजनीतिज्ञों के निजी स्वार्थ ही प्राथमिक स्तर पर संघर्ष के प्रेरक तत्वों के रूप में प्राप्त हुए हैं।

REFERENCES

1. Desai, A.R., 'Social Background of Indian Nationalism', Popular Book Depot Bombay, 1959.
2. Tennyson, A., 'Akbar's Dream, Quoted in A survey of Islamic culture & Institions by K.D. Bhargava', Kitab Mohal, Alld. 1981.
3. Dube, S.C., 'Modernization and its Adaptive Demand on Indian Society', in Papers in Sociology of Education in India (ed.), M.S. Gore, A.R. Desai and others, NCERT, New Delhi, 1969.

4. Pandey, P.N., 'Approaches to Social Change in India : A Re-examination', Journal of Social & Economic Studies, Vol. 4, No. 1, SAGE Publications, New Delhi, 1987;
5. Sen, Sunil, 'Recent Movements in India', K.P. Bagchi & Co., New Delhi, 1982.
6. Dumont, Louis, 'Homo Hierarchicus', Vikash Publications, 1970.
7. Mukerji, D.P., 'Modern Indian Culture', People's' Publishing House, 1942; 'Diverssties', Peoples Publishing House, 1958. See also.
   Desai, A.R., 'Social Background of Indian Nationalism', op. cit.
8. Srinivas, M.N., 'Caste in Modern India & Other Essays', Asia Pub. House, 1962, Social Change in Modern India, University of California Press, 1966.
9. Redfield, R., 'Social Organiation of Traditions', Far Eastern Quarcerly, Vol. 15, 1955-56.
   Singer, Milton (Ed.), 'Traditional India-Structure & Change', Philadelphia, 1950.
   Marriott, Mckim, 'Changing Channels of Cultural Transmission in India' in (ed Aspects of Religion in India by L.P. Vidyarthi, Meerut, 1961 and also Village India (ed.) McKim Marriott, University of Chicago Press, 1955.
   Dubey, S.C., 'Study of Complex Cultures' in Towards a Sociology of Culture in India (ed), by T.K.N. Unnitham, Indra Deva and Yogendra Singh.
10. Singh, Yogendra, 'Modernization of Indian Tradition', Thomson Press India (P) Ltd. Publication Div., Faridabad, 1973.
11. Lal, Shiv, 'Indian : Current Party Politics (Gorakha & Mizo Accord)' M.D.R. Printing Press, New Delhi, 1987, see also 'Oriya Nationalism' by Nivedita Mohanty, Manohar Publications, New Delhi, 1982.
12. Lal, Shiv, Ibid.
13. Sen, Sunil, Ibid.
14. Marcuse, Herbert, 'One Dimensional Man', Routledge & Kegan Paul. 1965.

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

समेकित बाल विकास योजना समस्यायें और सुझाव

❑ डा० मंजू पंवार

ऐसा कहा जाता है कि कल का भविष्य बच्चों के हाथों में है। लेकिन यह केवल तभी संभव है जब वे शारीरिक और मानसिक रूप से पर्याप्त मजबूत हों। उन्हें मजबूत बनाने के लिए उन्हें पर्याप्त पोषण और स्वास्थ्य देखभाल सुविधाएं दी जानी चाहिए। अब यह संपूर्ण विश्व में स्वीकार किया जा चुका है कि किसी भी देश का आर्थिक विकास मानव संसाधन विकास में निवेश पर निर्भर करता हैं। बच्चे न केवल विकास के सबसे महत्वपूर्ण घटक हैं बल्कि वे मानव विकास के आधार हैं। बच्चे के जीवन के पहले छः वर्ष बहुत महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि इस चरण में शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और संज्ञानात्मक विकास की नींव रखी जाती हैं ।

कल का भविष्य बच्चों के हाथ में है। बच्चे न केवल विकास का महत्वपूर्ण घटक हैं अपितु मानव विकास का आधार हैं। अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के साथ-साथ भारत सरकार भी बच्चों के शारीरिक, भावनात्मक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक विकास के लिए विभिन्न प्रकार की योजनाएं एवं कार्यक्रम क्रियान्वित करती रही है। एकीकृत बाल विकास योजना (आई.सी.डी.एस.) भारत सरकार का एक प्रमुख कार्यक्रम है जो बच्चों की देखभाल और विकास की दृष्टि से दुनिया का सबसे बड़ा कार्यक्रम है। आई.सी.डी.एस. का जन्म १९७६ में हुआ। इसने स्वास्थ्य, पोषण शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं, पूरक भोजन और पूर्व विद्यालय शिक्षा प्रदान करके ६ वर्ष से कम आयु के बच्चों और माताओं के स्वास्थ्य में सुधार करने में अद्वितीय भूमिका निभाई है। प्रस्तुत लेख आई.सी.डी.एस. के अप्रभावी कार्यान्वयन के कारणों को जानने तथा सुचारू रूप से क्रियान्वित करने हेतु महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत करने का एक प्रयास रहा है। इस कार्यक्रम के सफल बनाने के लिए ग्रामीणों विशेषतः महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करनी अत्यावश्यक है।

यह चिन्ता का विषय है कि स्वतंत्रता से छः दशकों के बाद भी केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा चलाये गये विभिन्न कार्यक्रमों के बावजूद, देश में बच्चों की स्थिति गम्भीर बनी हुई है। भारत की जनगणना २०११ के अनुसार, छः साल से कम आयु के १५७.७६ मिलियन बच्चे हैं, और उनमें से अनेक के लिए स्वास्थ्य देखभाल, पोषण, स्वच्छता, बाल देखभाल, अनौपचारिक शिक्षा, इत्यादि की पहुंच अपर्याप्त हैं।[१] बाल कुपोषण को खत्म करना एम.डी.जी. (सहस्त्रशताब्दी विकास लक्ष्य) और एस.डी.एच. (सतत विकास लक्ष्य) का एक महत्वपूर्ण घटक है। कुपोषण की समस्या इतनी तीव्र है कि यूनिसेफ की नवीनतम रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत उन ५० देंशों में से एक है, जिसमें पांच वर्ष से कम आयु पर बाल मृत्यु दर सर्वाधिक है।[२]

हरियाणा में बच्चों की स्थिति : हरियाणा जो ''देशों मे देश हरियाणा जहां दूध दही का खाना'' के लिए जाना जाता है, बच्चे कुपोषण का शिकार हैं। चंडीगढ़ के पोस्ट ग्रेजुएट इंस्टीटयूट ऑफ मेडिकल एजुकेशन एंड रिसर्च[३] द्वारा किए गए एक अध्ययन में कहा गया है कि हरियाणा में करनाल, यमुना नगर, पंचकुला और अंबाला इन चार जिलों में दयनीय स्थिति हैं जहां बच्चों में गंभीर कुपोषण है।

रिपोर्ट में आगे कहा गया है कि ३७.४ प्रतिशत बच्चे कम वजन वाले पाए गए। करनाल में नब्बे प्रतिशत बच्चे एनीमिक पाए गए थे। यह चिन्ता का विषय है कि हरियाणा में, पांच वर्ष से कम आयु की ५३ प्रतिशत मृत्यु कुपोषण के कारण हुई हैं। यह एक मानवीय मुद्दा है जहां बच्चों के बीच पोषण संबंधी कमी का व्यापक प्रसार होता है। इस पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है। बच्चों के बीच कुपोषण को कम

❑ विभागाध्यक्षा समाजकार्य विभाग, भगत फूल सिंह महिला विश्वविद्यालय, खानपुर कलां, सोनीपत (हरियाणा)

करने के लिए विभिन्न प्रयास किये गये हैं फिर भी बच्चों में कुपोषण एक गम्भीर समस्या है।

बाल कुपोषण को खत्म करना सतत विकास लक्ष्यों (एस.डी.जी) का एक महत्वपूर्ण घटक है। केन्द्रीय और राज्य सरकारों द्वारा की गई पहल के अलावा, विश्व बैंक, यूनिसेफ, केयर इंडिया, यू.एस.ए.आई.डी जैसे अन्य अंतर्राष्ट्रीय संगठनों को बच्चों की स्थिति में सुधार करने के लिए तैयार किया गया है। हरियाणा में बच्चों के बीच तीव्र कुपोषण को ध्यान में रखते हुए मुख्यमंत्री मनोहर लाल खटटर[४] ने कहा कि 'स्वस्थ बच्चे, स्वस्थ किशोर, स्वस्थ माँ और स्वस्थ हरियाणा' के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए हरियाणा में पोषण आयोग स्थापित करने की आवश्यकता है। राज्य और कुपोषण के मुददे को हल करने के लिए राज्य पोषण नीति तैयार करें जो यूनिसेफ और डब्ल्यू.एच.ओ. के दिशा निर्देशों के अनुसार तैयार की जाएगी।

समेंकित बाल विकास योजना (आई.सी.डी.एस.): आई.सी.डी.एस. भारत सरकार के प्रमुख कार्यक्रमों में से एक है। यह बचपन की देखभाल और विकास के लिए दुनिया के सबसे बड़े और अद्वितीय कार्यक्रमों में से एक है। यह ०-६ वर्ष के ४३ मिलियन से अधिक बच्चों और सात मिलियन गर्भवती और स्तनपान कराने वाली माताओं तक पहुंचता है। आई.सी.डी.एस. १९७६ में शुरू हुआ और स्वास्थ्य और पोषण शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं, पूरक भोजन और प्री-स्कूल शिक्षा प्रदान करके छः वर्ष से कम आयु के बच्चों के स्वास्थ्य में सुधार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। मातृ और बचपन के कुपोषण को कम करने के लिए आई.सी.डी. एस. सबसे महत्वपूर्ण सरकारी हस्तक्षेप कार्यक्रम है।

अध्ययन का उदेश्य : वर्तमान अध्ययन आई.सी.डी. एस. के अप्रभावी कार्यान्वयन के प्रमुख कारणों को जानने के लिए हरियाणा के चार जिलों अंबाला, मेवात, सोनीपत और रोहतक में किया गया है। आंगनवाड़ी केन्द्रों के लिए किए गए क्षेत्रीय दौरे के अलावा, आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं और माताओं के समूहों के साथ केंद्रित समूह चर्चाएं करके आईसीडीएस व्यवहारिक स्तर पर कैसे क्रियाविन्त हो रहा है इस पर अध्ययन किया गया है। लेख के अंत में आई.सी.डी.एस.को सुचारू रूप से क्रियाविन्त करने के लिए कुछ सुझाव भी दिये गये हैं।

आई.सी.डी.एस. के वांछित परिणाम प्राप्त न होने के निम्नलिखित मुख्य कारण हैं:-

१. खाद्य आपूर्ति की अनियमितता : आईसीडीएस की सेवाओं में से एक है छः महीने से छः वर्ष के बीच बच्चों को पूरक पोषक भोजन तथा गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं के स्वास्थ्य में सुधार के लिए कार्य करना। चयनित जिलों में क्षेत्रीय यात्राओं के दौरान पाया गया कि बच्चों को सूची के अनुसार खाना नही दिया जा रहा है। उदाहरण के लिए ज्यादातर ग्राम पंचायतों में आंगनवाड़ी कार्यकत्रियों द्वारा केवल नमक का दलिया दिया जाता है। इसका मुख्य कारण है कि आंगनवाड़ी सेन्टर में तेल और चीनी न होने से रोज बच्चों को दलिया दिया गया है जिससे बच्चे ऊब जाते हैं और आंगनवाड़ी में आने से कतराते हैं। उदाहरण के लिए, सूची के अनुसार, सप्ताह में दो दिन पूरी आलू और मीठे चावल लाभार्थियों के बीच वितरित किया जाना है। लेकिन आंगनवाड़ी केंद्रों के लिए अवलोकन यात्रा आयोजित करने और क्षेत्र में आंगनवाड़ी श्रमिकों के साथ केंन्द्रित समूह चर्चाओं के बाद, यह पाया गया कि वितरण एजेंसी से चीनी और खाना पकाने के तेल की आपूर्ति की अनियमितता के कारण, उन्हें दलिया ही लाभार्थियों को देना पड़ेगा।

गर्भवती व दूध पिलाने वाली माताओं ने आगंनवाड़ी में मिलने वाले भोजन के ऊपर अपने विचार रखते हुये कहा कि एक तो प्रतिदिन दलिया खाते-खाते नीरसता आ जाती है फिर कटे पर नमक छिड़कने का काम दलिये की अच्छी गुणवता न होना है। उपर्युक्त के अलावा, आई.सी.डी.एस. में सतत खाद्य आपूर्ति का न होना और लाभार्थियों में कार्यक्रम के बारे मे जागरूकता न होना आई.सी.डी.एस. के प्रभावी क्रियान्वयन में बाधक है।

२. अधिभार आंगनवाड़ी कार्यकर्ता : आंगनवाड़ी

कार्यकर्ता बच्चों और माताओं को आई.सी.डी.एस. सेवाओं के वितरण के लिए केंन्द्र बिन्दु हैं। आईसीडीएस के सफल कार्यान्वयन के लिए आंगनवाड़ी कार्यकर्ता की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। आंगनवाड़ी कार्यकर्ता की प्रमुख भूमिका गर्भवती महिलाओं के लिए प्रसवपूर्व देखभाल सुनिश्चित करना और नए पैदा हुए बच्चों और नर्सिंग माताओं की तत्काल निदान और देखभाल करना है। महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की जिम्मेदारियों के लिए दिशानिर्देश निर्धारित किए हैं। वे छः वर्ष से कम उम्र के सभी बच्चों की देखभाल करते हैं। आंगनवाड़ी कार्यकर्ता अक्सर एक शिक्षक की भूमिका निभाता है और तीन से पांच साल की आयु के बच्चों को प्री-स्कूल शिक्षा प्रदान कराता है। इनमें इस कार्यक्रम को निष्पादित करने में सामुदायिक समर्थन और सक्रिय भागीदारी शामिल है। सभी परिवारों के नियमित त्वरित सर्वेक्षण आयोजित करना, अनौपचारिक शिक्षा गतिविधियों का आयोजन करना, परिवारों को स्वास्थ्य और पोषण शिक्षा प्रदान करना , विशेष रूप से गर्भवती महिलाओं, स्तनपान कराने के तरीके आदि, परिवारों को प्रेरित करना, परिवार नियोजन को अपनाने, बच्चों के विकास और विकास के बारे में माता-पिता को शिक्षित करना, किशोर जागरूकता कार्यक्रमों का आयोजन करके किशोर लड़कियों और माता-पिता को शिक्षित करने के लिए किशोरी शक्ति योजना के कार्यान्वयन और निष्पादन में सहायता करना ये सभी कार्य आंगनवाड़ी कार्यकर्ता को गांव में रहकर करने होते हैं।

सभी चार चयनित वाले जिलों में आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के साथ केंद्रित समूह चर्चाओं के आयोजन के बाद, यह पाया गया कि वे अधिक परेशान हैं। उनमें से अधिकतर यह मानते थे कि वे आंगनवाड़ी कार्यकर्ता की अपनी वास्तविक भूमिका को सही ढंग से पूरा करने में सक्षम नहीं है क्योंकि ज्यादातर समय से अन्य गतिविधियों जैसे कि आधार कार्ड की तैयारी, जन्म और मृत्यु प्रमाण पत्र जारी करने, चुनाव शुल्क, मातृत्व कार्ड आदि की तैयारी में लगी रहती हैं। आंगनवाड़ी कार्यकत्रियों में से कुछ ने बताया कि अत्यधिक रिकॉर्ड रखरखाव के कारण, उन्होंने अपने स्थान पर इतने सारे रजिस्टरों का ढेर कर दिया है और इसे बेचा नही जा सकता क्योंकि रिकॉर्ड किसी भी समय पूछा जा सकता है। इसके अलावा, उन्होंने यह भी कहा कि उन्हें १० साल से ज्यादा का अनुभव हो गया है परन्तु वे अन्य सरकारी कर्मचारियों की तरह व्यापक सेवानिवृति लाभों के साथ स्थायी नहीं हो रहे हैं।

३. आधारभूत संरचनाओं में कमी : मां और गैर- लाभार्थी समूह के साथ केंद्रित समूह चर्चा करने के बाद, यह पाया गया कि आईसीडीएस के अंतर्गत प्री-स्कूल घटक में कोई पठन और लेखन नहीं था, इसलिए अधिकांश माता-पिता अपने बच्चों को आंगनवाड़ी केंन्द्रों में नही भेजते हैं। अधिकांश ग्राम पंचायतों में आंगनवाड़ी केंन्द्र चलाने के लिए अलग भवन नहीं हैं। वे पंचायत घर, स्कूलों या कभी-कभी आंगनवाड़ी कार्यकर्ता के घर में काम कर रहे हैं। आंगनवाड़ी केन्द्रों में खाद्यान्नों का कोई उचित भंडारण नही है। उचित शौचालय सुविधाओं, स्वच्छ पेयजल और आंगनवाड़ी केन्द्र में अन्य सुविधाओं की कमी के कारण, गरीब परिवारों के बच्चे केवल तभी आते है जब केन्द्र में भोजन वितरित किया जाता हैं। बच्चों को नियमित रूप से आंगनवाड़ी केन्द्र में आने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए प्रांसगिक शिक्षण और शिक्षण सहायता का पर्याप्त उपयोग नही किया गया था।

४. ग्राम पंचायत और समुदाय आधारित संगठनों की सीमित भूमिका : ग्राम पंचायत की भागीदारी आई.सी.डी.एस. के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए आवश्यक है। गांव के बच्चों को पोषित करने में ग्राम पंचायत का भूमिका निभाना आवश्यक है। महिलाओं और बच्चों का विकास पंचायती राज संस्थानों के लिए ७३ वें सवैधानिक संशोधन में सूचीबद्ध २९ कार्यो में से एक है। ग्राम पंचायत आंगनवाड़ी केंन्द्रों के कामकाज पर नजर रख सकती है। यह देखना ग्राम पंचायतों की जिम्मेदारी है कि क्या केन्द्र में पर्याप्त बुनियादी ढांचा उपलब्ध कराया जा रहा है या नही और बच्चों को दिये जा रहे भोजन

की गुणवता की जांच करनी है।

हालांकि आई.सी.डी.एस. के प्रभावी कार्यान्वयन में ग्राम पंचायत की महत्वपूर्ण भूमिका है, लेकिन यथार्थ के धरातल पर अलग तस्वीर दिखाई देती है। ग्राम पंचायतों के कुछ सरपंचों के साथ बातचीत करने के बाद, यह पता लगा है कि वे 'आई.सी.डी.एस. को एक महिला और बच्चों से संबंधित योजना समझते हैं और पंचायत की इसमें कोई भूमिका नही है'। न केवल ग्राम पंचायत, स्वयं सहायता समूह, युवा क्लब, महिला मंडल इत्यादि जैसे समुदाय आधारित संगठनों को भी अपने गांव में आईसीडीएस के कामकाज में अधिक जागरूकता नहीं है और न ही दिलचस्पी है।

सुझाव : आई.सी.डी.एस. को सुचारू रूप से क्रियान्वित करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं।

१. जागरूकता : इसमें कोई संदेह नहीं है कि जागरूकता की कमी के कारण कई योजनाएं और कार्यक्रम विफल हो जाते हैं। यह जरूरी है कि नियमित रूप से जागरूकता निर्माण कार्यक्रम आयोजित किए जाएं। लोगों को न केवल कार्यक्रमों के लाभों के बारे में जागरूक किया जाना चाहिए बल्कि उनसे लाभ प्राप्त करने के तरीकों से भी अवगत कराना चाहिए। योजनाओं की उपयोगिता के बारे में चित्र, पोस्टर आदि का उचित प्रदर्शन करके लोगों को जागरूक किया जा सकता है। चूंकि अधिकांश ग्रामीण अशिक्षित हैं, इसलिए वे पोस्टर या होर्डिंग को पढ़ने में सक्षम नहीं हैं, इसलिए उन्हें वृत्तचित्र फिल्मों को दिखाया जाना चाहिए। जागरूकता बढ़ाने का एक अन्य तरीका नुक्कड़ नाटक का है जिसके माध्यम से अधिकतम लोगों को उनके लाभ के लिए लागू की जा रही योजनाओं और कार्यक्रमों के बारे में जानकारी दी जा सकती है। सभी गांवों में इन योजनाओं की सफलता की कहानियों के बारे में विस्तार से बताने आवश्यकता है ताकि वे ग्रामीण योजनाओं का लाभ उठा सकें। साहित्य का यह प्रदर्शन ग्रामीणों को समझने योग्य भाषा में किया जाना चाहिए।

२. पंचायतों के निर्वाचित प्रतिनिधियों की क्षमता निर्माणः अध्ययन में पाया गया कि ग्राम पंचायत में आई.सी.डी.एस. के प्रति उदासीन रवैया है और अधिकांश सरपंचों के विचार में आई.सी.डी.एस. एक महिला उन्मुख योजना है और पुरूष सरपंच और ग्राम पंचायतों के अन्य पुरूष सदस्यों के पास उचित कार्यान्वयन के लिए कोई भूमिका नहीं है। यहाँ यह जरूरी है कि उन्हें अपने गांवों में बच्चों और माताओं के अच्छे स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने के लिए आई.सी.डी.एस. के महत्व के बारे में जागरूक किया जाना चाहिए। इसके लिए जिन ग्राम पंचायतों ने आई.सी.डी.एस. के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य किया है उन्हें वृत्तचित्र फिल्म सरपंचों और ग्राम पंचायत के सदस्यों को दिखाया जाना चाहिए ताकि वे अपने संबंधित ग्राम पंचायतों में आई.सी.डी.एस. पर ध्यान दे सकें। ये लघु फिल्म आई.सी.डी.एस. को क्रियान्वित करने के लिए सरपंच और ग्राम पंचायतों के अन्य सदस्यों को प्रेरित करेगी। आई.सी.डी.एस. को क्रियान्वित करने में सरपंचों की अहम भूमिका है।

३. समुदाय आधारित संगठनों के लिए प्रशिक्षणः समुदाय महिला संगठन (सी.वी.ओ.) जैसे महिला मंडल, कीर्तन मंडलियां, स्व-सहायता समूह, युवा क्लब आदि गांव में काम कर रहे हैं, जो प्रेरक की भूमिका निभा सकते हैं। योजनाओं और कार्यक्रमों को उन लोगों के दरवाजे पर लाएं जिनके लिए उन्हें बनाया गया है। स्व-सहायता समूह और महिला शिक्षित समूह के नेता ग्रामीण महिलाओं को सामाजिक/सांस्कृतिक बाधाओं से दूर करके उन्हें अपने घरों की चार दीवारों से बाहर निकलने के लिए प्रेरित कर सकते हैं ताकि वे सरकार की योजनाओं और कार्यक्रमों का लाभ उठा सकें। आई.सी.डी.एस. सेवाओं और उद्देश्यों को बढ़ावा देने के लिए गैर सरकारी संस्थाओं के कार्यकर्ताओं, स्वयंसेवकों, पंचायत प्रतिनिधियों, युवा क्लबों के सदस्यों आदि द्वारा नियमित रूप से क्षमता निर्माण पर कार्यक्रम भी आयोजित किये जाने चाहिए। उन सदस्यों की क्षमता निर्माण को अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए जो समाज के सामाजिक और आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों से संबंधित हैं।

४. निधि आवंटन की पर्याप्त और समय पर

पहुंच : अध्ययन के दौरान पाया गया कि आई.सी.डी.एस. को पर्याप्त धनराशि ना मिलना भी एक बड़ी समस्या है। इस कारण आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को ना तो अपना वेतन समय पर मिल रहा है और न ही मेनू के अनुसार आंगनवाड़ी में भोजन तैयार किया जा रहा है। आंगनवाड़ी कार्यकताओं ने बताया कि राशि समय पर न मिलने के कारण उन्हें अपनी जेब से पैसे खर्च करना पड़ते हैं। हर आंगनवाड़ी में एक चार्ट प्रदर्शित किया जाता है जो भोजन को हर रोज वितरित करने के लिए दर्शाता है लेकिन खाद्य पूर्ति की अनियमितता के कारण चार्ट में उल्लिखित खाना नहीं दिया जाता है। इस विचार को ध्यान में रखते हुए यह जरूरी है कि धन सही समय पर और पर्याप्त मात्रा में पहुंच जाना चाहिए ताकि मेनू के अनुसार आंगनवाड़ी केन्द्र में भोजन तैयार किया जा सके।

५. आंगनवाड़ी केन्द्रों के लिए जगह की उपलब्धता: आंगनवाड़ी केन्द्रों के लिए जगह की अनुपलब्धता के कारण देखने में आया है कि अधिकांश आंगनवाड़ी कार्यकर्ता, आंगनवाड़ी केन्द्र को या तो अपने घर या प्राथमिक विद्यालय में चलाने के लिए मजबूर होते हैं। अतः उन्हें ऐसी जगह मिलती है जो इतनी सीमित है कि आंगनवाड़ी केन्द्र में आने वाले बच्चों को इनडोर और आउटडोर गेम खेलने के लिए पर्याप्त जगह नहीं मिलती है। अधिकांश आंगनवाड़ी केन्द्र किराये पर भी चल रहे हैं। सीमित स्थान के संदर्भ में एक समस्या यह भी है कि आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के पास रजिस्टरों एवं अन्य रिकार्ड रखने की जगह नहीं होती है। इसे ध्यान में रखते हुए आंगनवाड़ी कार्यकताओं को एक अलग भवन प्रदान किया जाना चाहिए ताकि बच्चे खेल सकें और चावल, अनाज और उनके प्रासंगिक रिकार्ड आदि को रखने के लिए जगह मिल सके।

समन्वय की आवश्यकता : आई.सी.डी.एस. को सफल बनाने के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण है कि सभी हितधारकों को एक साथ आना चाहिए और पूरी तरह से आई.सी.डी.एस. को मजबूत करने के तरीकों के बारे में सोचना चाहिए। शोध के दौरान पाया गया है कि विभिन्न विभागों, एजेंसियों, संगठनों और आई.सी.डी.एस. के प्रचार में सम्मिलित अन्य हितधारकों के बीच समन्वय की कमी है। वे जैसे जलरोधक डिब्बों में काम कर रहे हैं और एक दूसरे की भूमिकाओं और जिम्मेदारियों से अनजान हैं। यदि ग्राम पंचायत और समुदाय आधारित संगठन के बीच उचित समन्वय है, तो आई.सी.डी.एस. को धनराशि समय पर मिलेगी। प्रत्येक कार्यक्रम की सफलता सामूहिक प्रयासों पर निर्भर करती है। इसलिए, यह जरूरी है कि गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए उचित समन्वय और सहयोग हो। अधिकारियों, बैंकरों, पंचायती राज संस्थाओं और लोगों से जुड़े खुले मंचों में गांव स्तर पर सेमिनार और चर्चाओं को आयोजित करके सरकार के द्वारा चलाये गये कार्यक्रमों का लाभ उठाया जा सकता है।

७. नियमित ग्राम सभा की बैठक का आयोजन: जागरूकता की कमी के कारण, कई परिवार विभिन्न योजनाओं और कार्यक्रमों के अंतर्गत लाभ प्राप्त करने में सक्षम नहीं हैं जो उनके लिए निर्मित है। लाभार्थियों द्वारा अनुमोदन में देरी तथा भरने के लिए फार्म आदि जैसी अनेक समस्याएँ देखी गई हैं। हालांकि लाभार्थियों में से कोई भी ग्राम सभाओं में अपनी समस्या नहीं रखते हैं। उन्हें ग्राम सभा की बैठकों में इन मुद्दों को उठाना चाहिए। ग्राम सभा की बैठक की एक प्रतिलिपि उच्च्य अधिकारियों को भेजी जानी चाहिए। यह भी आवश्यक है कि ग्राम सभा की बैठक एक महीने में दो बार होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रत्येक ग्राम सभा की बैठक में पंचायतों को बी.पी.एल. परिवारों के लिए विशेष बैठकें आयोजित करनी चाहिये। यह महत्वपूर्ण है कि कंप्यूटर को तीन स्तरों, जिला, ब्लॉक, और ग्राम पंचायत में प्रदान किया जाना चाहिए। शोध के दौरान पता चला कि कंप्यूटर की अनुपलब्धता के कारण ग्राम पंचायत, समय पर जानकारी अपने उच्च्य अधिकारियों को नहीं दे पाते हैं साथ ही समय से सूचना नहीं पहुंच पाती है।

निष्कर्ष : आई.सी.डी.एस को सफल बनाने के लिए,

यह आवश्यक है कि प्रारंभिक बचपन से किशोरावस्था तक पर्याप्त पोषण प्रदान किया जाना चाहिए। आंगनवाड़ी कार्यकर्ता की भूमिका आईसीडीएस के बेहतर कार्यान्वयन के महत्वपूर्ण संकेतक में से एक है। कार्यक्रमों को उचित ढंग से क्रियान्वित करने के लिए निगरानी और मूल्यांकन की आवश्यकता है। प्रत्येक कार्यक्रम विशिष्ट उद्देश्यों के साथ प्रारंभ किया जाता है और इसलिए यह निर्धारित करने के लिए नियमित रूप से मूल्यांकन किया जाना चाहिए कि कार्यक्रमों द्वारा वांछित परिणाम प्राप्त किये जा रहे हैं या नहीं। गैर सरकारी संस्थाओं की सक्रिय भागीदारी की भी आवश्यकता है क्योंकि वे जागरूकता निर्माण और जमीनी कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण प्रदान करने, सामाजिक आन्दोलन प्रक्रिया शुरू करने आदि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इससे गांव स्तर पर केन्द्रीय प्रायोजित ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के सफल कार्यान्वयन को सशक्त बनाने में सहायता मिलेगी।

आंगनवाड़ी कार्यकर्ता की भूमिका समुदाय को शिक्षित, संगठित और व्यवस्थित करना है ताकि वे आई.सी.डी. एस को सुचारू रूप से क्रियान्वित कर सके।

References:

1. Annual Report 2011-12, Ministry of women and Child Development, New Delhi; Report of ASSOCHAMEY, 2017.
2. Children in Urban World, The State of the World's Children, UNICEF, 2012
3. Study conducted by Post Graduate Institute of Medical Education and Research, Chandigarh. The Tribune, Chandigarh, (Haryana) https://www.tribuneindia.com/2014/20140311/haryana.html
4. Chief Minister Statement taken from Press Trust of India, Posted on 22nd July 2015.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 20 अंक 1, जनवरी-जून 2018
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

भारतीय राष्ट्रवाद का उदय एवं विकास : एक विवेचनात्मक अध्ययन

❑ डॉ. मानिक लाल गुप्त

भारत की ब्रिटिश शासन से मुक्ति (१५ अगस्त, १९४७ ई. को) बड़े स्वतंत्रता संघर्ष का परिणाम थी। यह स्वतंत्रता संघर्ष विभिन्न अवस्थाओं व विभिन्न चरणों से गुजरा था। अंग्रेजी शासन काल के अंतर्गत विभिन्न कारणों से भारतीय जन-मानस में राष्ट्रीय जागृति की भावना उद्दीप्त हुई थी। भारतीय राष्ट्रवाद की एक विशिष्टता यह भी विचारणीय है कि इसका जन्म राजनीतिक दासता के युग में हुआ था। ब्रिटिश सत्ता ने अपने हित में भारतीय समाज के आर्थिक ढांचे में परिवर्तन किया था। इसके अतिरिक्त नवीन शिक्षा प्रणाली, यातायात के नवीन साधन आदि अनेक नवीन संस्थाओं का निर्माण किया था। इसके फलस्वरूप नये सामाजिक तत्व अपनी विशिष्ट प्रकृति के कारण ब्रिटिश सामाज्यवाद से टकराये, जिससे भारतीय राष्ट्रीयता के विकास की आधारशिला बनी। प्रस्तुत आलेख के अंतर्गत भारतीय राष्ट्रवाद के उदय एवं सांप्रदायिक समस्या को प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है।

भारत की ब्रिटिश शासन से मुक्ति (१५ अगस्त, १९४७ ई. को) बड़े स्वतंत्रता संघर्ष का परिणाम थी। यह स्वतंत्रता संघर्ष विभिन्न अवस्थाओं व विभिन्न चरणों से गुजरा था। अंग्रेजी शासन काल के अंतर्गत विभिन्न कारणों से भारतीय जन-मानस में राष्ट्रीय जागृति की भावना उद्दीप्त हुई थी। अंग्रेजी सत्ता की स्थापना के समय भारत एक राष्ट्र नहीं था। भारतीय संदर्भ में राष्ट्रवाद आधुनिक अवधारणा है। ब्रिटिश शासन तथा विश्वशक्तियों के प्रभाव और भारतीय समाज में विकसित विभिन्न आत्मनिष्ठ तथा वस्तुनिष्ठ कारणों की क्रिया-प्रतिक्रिया से ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय राष्ट्रवाद जन्मा था।[१]

भारत विभिन्न भाषाओं, विभिन्न धर्मों तथा विशाल जनसंख्या का देश रहा है। भारत का हिन्दू समाज और सामान्यतः सम्पूर्ण भारतीय समाज विभाजित रहा है। भारतीय राष्ट्रवाद की एक विशिष्टता यह भी विचारणीय है कि इसका जन्म राजनीतिक दासता के युग में हुआ था।[२] ब्रिटिश सत्ता ने अपने हित में भारतीय समाज के आर्थिक ढांचे में परिवर्तन किया था। इसके अतिरिक्त नवीन शिक्षा प्रणाली, यातायात के नवीन साधन आदि अनेक नवीन संस्थाओं का निर्माण किया था। इसके फलस्वरूप नये सामाजिक तत्व अपनी विशिष्ट प्रकृति के कारण ब्रिटिश सामाज्यवाद से टकराये, जिससे भारतीय राष्ट्रीयता के विकास की आधारशिला बनी।[३]

ब्रिटिश सत्ता ने मशीनों से तथा मुक्त व्यापार नीति से भारत के चरखे और करघे को समाप्त करके ग्रामीण समाज-व्यवस्था की मुख्य आधारशिला ही नष्ट कर दी। भारतीय समाज की पुरातन आर्थिक व्यवस्था का आधार नष्ट कर उसके स्थान पर पूँजीवादी व्यवस्था स्थापित करके अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भारत का शोषण करना प्रारम्भ किया। अन्ततोगत्वा ब्रिटिश शासकों ने राजसत्ता का दुरूपयोग कर भारत के प्राचीन हस्तशिल्प और उद्योग धन्धों को नष्ट कर दिया। रेलवे की स्थापना से भारत में आधुनिक उद्योगों का विकास सम्भव हुआ तथा भारत में आधुनिक मशीनरी का प्रवेश हुआ। उन्नीसवीं सदी के मध्य तक भारतीय व्यापारियों को विश्व बाजार से निकाल दिया गया। भारत का विदेशी व्यापार छीनकर अर्थ-व्यवस्था पर ब्रिटिश पूँजीपति हावी हो गये। इन्हीं आर्थिक परिवर्तनों के कारण ऐसी सामाजिक शक्तियों का उदय हुआ जिन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन और भारतीय राष्ट्रवाद को प्रेरित किया।[४] इनके परिणामस्वरूप बुर्जुआ और सर्वहारा दो नये सामाजिक वर्गों का जन्म हुआ।

नये सामाजिक वर्गों का उदय और उनकी

❑ सेवानिवृत्त विभागाध्यक्ष इतिहास, वाई.डी. पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, लखीमपुर खीरी (उ.प्र.)

विशिष्टतायें : ब्रिटिश सत्ता ने उपर्युक्त पृष्ठभूमि, कारणों व परिस्थितियों से भारतीय समाज में नये वर्ग उत्पन्न कर दिये, जो इस प्रकार समझे जा सकते हैं:-

१. जमीन के स्वामी ज़मीदार, जिनका एक भाग शहरों में निवास करता था।
२. इन ज़मीदारों से लगान पर ज़मीन लेकर कार्यरत काश्तकार।
३. ज़मीन के स्वामी कृषक।
४. खेतिहर मज़दूर।
५. आधुनिक व्यापारी व आधुनिक सूदखोर (महाजन)

यह उपर्युक्त सामाजिक वर्ग ग्रामीण क्षेत्र में थे। नगरों में सामाजिक वर्ग थे:-

१. औद्योगिक, व्यावसायिक तथा वित्तीय पूँजीपति।
२. कारखानों में कार्यरत मज़दूर।
३. पूँजीवादी अर्थतंत्र से सम्बद्ध छोटे व्यापारी और दुकानदार।
४. कारीगर, डॉक्टर, वकील, अध्यापक, मैनेजर, क्लर्क आदि बुद्धिजीवी तथा वृन्तिजीवी लोगों का मध्य वर्ग।

इन सभी नये वर्गों की यह विशेषता थी कि वे राष्ट्रीय थे। प्रत्येक नये सामाजिक वर्ग के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक हितों के अखिल भारतीय एकीकरण दृष्टिगत होने लगे। इस वर्ग के व्यक्ति और समुदाय समान हित की दिशा समझने लगे। उनमें अखिल भारतीय संगठन बनाने तथा अपने सम्मिलित सामूहिक हितों के लिए संघर्ष करने की इच्छा बलवती होती गई।[५] ये विभिन्न वर्ग अपने अलग-अलग आर्थिक तथा राजनीतिक स्वार्थों के साथ राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में सम्मिलित हुये थे, परन्तु इन सबका लक्ष्य था- राष्ट्रीय स्वाधीनता की प्राप्ति।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस : उदार दल की नीति
दिसम्बर, १८८५ ई. में ए.ओ. ह्यूम ने उदारवादी, बुद्धिजीवी वर्ग के सहयोग से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (इण्डियन नेशनल कांग्रेस) की स्थापना की थी। १८८५ ई. से १६०५ ई. तक जिन उदारवादी बुद्धिजीवियों का प्रभुत्व इस संस्था पर रहा था, वे भारतीय राष्ट्रवाद के प्रथम चरण के नेता थे, उनमें बंगाल के डब्ल्यू, सी. बनर्जी (वोमेश चन्द्र बनर्जी), आनन्द मोहन बोस, लाल मोहन घोष, ए.सी. मजूमदार, रासबिहारी घोष, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, आर.सी. दत्त, बम्बई के दादा भाई नौरोजी, फिरोज शाह मेहता, बदरूद्दीन तैयब जी, आप्टे, तेलंग, आगरकर, रानाडे, गोपाल कृष्ण गोखले, डी.ई. वाचा, चन्द्रावरकर, मद्रास के पी.आर. नायडू, सुब्रह्मण्यम अय्यर, आनन्द चार्ल, केशव पिल्लै। उत्तर भारत के पं. मदन मोहन मालवीय, पंडित धर प्रमुख थे। कांग्रेस और उसके कार्यक्रमों के विकास में ह्यूम, वेडरबर्न तथ हेनरी कॉटन सदृश उदारवादियों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही थी। इस काल (१८८५ ई. से. १६०५ ई.) में कांग्रेस राष्ट्रीय मांगों के समर्थन में प्रस्ताव करती रही थी। इसके पहले अधिवेशन में केवल ७२ सदस्य सम्मिलित हुये थे[६] परन्तु बाद में शनैःशनैः सदस्यों की संख्या बढ़ती गई। यह निम्न तालिका से दृष्टव्य है।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन

वर्ष	स्थान	सदस्य संख्या	अध्यक्ष
१८८५	बम्बई	७२	बोमेश चन्द्र बनर्जी
१८८६	कलकत्ता	४३४	दादा भाई नौरोजी
१८८७	मद्रास	६०७	बदरूद्दीन तैयब जी
१८८८	इलाहाबाद	१२४८	जार्ज यूल
१८८६	बम्बई	१८८६	विलियम वेडरबर्न
१८६०	कलकत्ता	७०७	फिरोजशाह मेहता
१८६१	नागपुर	८१२	पी. आनन्द चार्ल
१८६२	इलाहाबाद	६२५	वोमेश चन्द्र बनर्जी
१८६३	लाहौर	८६७	दादा भाई नौरोजी
१८६४	मद्रास	११६३	अल्फ्रेड वेब

नीति व दृष्टिकोण : निःसन्देह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने इस दौर में भारत में राजनीतिक जागृति उत्पन्न कर दी थी, देश में नव चेतना जागृत हुई। यह प्रयास और आन्दोलन उदारवादी तथा संवैधानिक था। इन उदारवादियों को नियमबद्ध प्रगति में आस्था थी। इन उदारवादियों ने क्रान्तिकारी आकस्मिक परिवर्तन और उसकी कार्यप्रणाली को स्वीकार नहीं किया। इस

काल में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं ने भारत में एकता की भावना को विकसित करने के प्रत्येक सम्भव प्रयास किये।[७] ये सभी राष्ट्रीय नेता इसे अपना पहला प्रमुख कर्तव्य मानते थे। वे जानते थे कि अलग-अलग धर्मों को मानने वालों को मिलाकर ही एक सूत्र में बांधा जा सकता है। देश के विभिन्न नगरों में समय-समय पर कांग्रेस के अधिवेशन आयोजित किये जाते थे, जिससे सम्पूर्ण देश के लोग इस आंदोलन के माध्यम से राष्ट्रीय एकता के प्रति जागृत हो सके। इन नेताओं ने सामाजिक समानता तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर अधिक बल दिया तथा किसी भी वर्ग के विशेषाधिकारों का विरोध किया। इन्होंने साम्राज्यवाद के आर्थिक पहलू की कटु आलोचना करके लोगों में आर्थिक चेतना जागृत की।[८] वे औद्योगीकरण और सामाजिक संबंधों के लोकतंत्रीकरण द्वारा भारत को आर्थिक प्रगति के समर्थक थे।

कांग्रेस के प्रति विभिन्न वर्गों की प्रतिक्रिया : कांग्रेस के दृष्टिकोण और उसकी नीतियों तथा कार्यक्रमों से परम्परागत सामंती, नये जमींदार (इनमें हिन्दू व मुसलमान दोनों ही थे) भयभीत थे। इन सभी को कांग्रेस से अपना भविष्य अनिश्चित दिखाई पड़ने लगा और वे सभी ब्रिटिश सरकार के अन्ध समर्थक बन गये। व्यापारी वर्ग की आवश्यकतायें तात्कालिक और स्थायी दोनों थीं। यह वर्ग अपनी स्थायी आवश्यकताओं के लिए जागरूक था। इस वर्ग की दृष्टि में ब्रिटिश सरकार उनकी स्थायी आवश्यकताओं की पूर्ति में गतिरोध उत्पन्न करती जा रही थी।[९] अतः वे सभी कांग्रेस के पक्षधर हो गये थे, क्योंकि कांग्रेस देश के आर्थिक विकास के लिए कटिबद्ध थी।

सामान्य जनता, जिसमें अधिकांश कृषक थे और इनका बड़ा भाग निरक्षर था, जिनका महाजन, जमींदार और सरकारी कर्मचारी शोषण करते थे। कांग्रेस ने क्रमशः उनके हितों के लिए संघर्ष करना प्रारम्भ किया। इस प्रकार उसकी सहानुभूति भी कांग्रेस के साथ थी। अन्ततोगत्वा कांग्रेस शनैःशनैः प्रतिनिधि संस्था के रूप में उभरने लगी, परन्तु इस आरम्भिक राष्ट्रीय आंदोलन की सबसे आधारभूत कमी इसका संकुचित सामाजिक आधार था। इस आन्दोलन को सभी का समर्थन प्राप्त नहीं हो पाया था। इसका क्षेत्र शहरी भारतीय तक ही सीमित था। वास्तविकता यह रही कि कांग्रेस की नीतियों में भारतीय समाज के प्रत्येक वर्ग के हितों का कुछ न कुछ ध्यान रखा गया था। परन्तु उदारवादी नेता साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष में सभी वर्गों को प्रेरित करने में असमर्थ रहे थे।

ब्रिटिश सरकार की प्रतिक्रिया : ब्रिटिश सरकार अपनी परम्परागत नीति ''फूट डालो और राज्य करो'' के द्वारा बढ़ते हुए राष्ट्रवादी आंदोलन के प्रति सचेत हो गयी।[१०] भारतीय लोगों की बढ़ती हुई एकता को अपने साम्राज्य के प्रति गंभीर संकट मानकर उसने कांग्रेस विरोधी आंदोलन का पथ प्रशस्त किया। इसलिए ब्रिटिश अधिकारियों ने सैय्यद अहमद खाँ तथा कुछ अन्य ब्रिटिश समर्थक लोगों को कांग्रेस विरोधी आंदोलन प्रारम्भ करने के लिए प्रेरित किया। इन ब्रिटिश अधिकारियों ने हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच भेद-भाव उत्पन्न करने के प्रयास तीव्र कर दिये। सरकारी नौकरियों के मुद्दे पर उन्होंने शिक्षित हिन्दुओं और मुसलमानों मे द्वेष उत्पन्न किया तथा साम्प्रदायिकता की भावना को प्रोत्साहित किया। हिन्दी भाषा तथा उर्दू भाषा और रूढ़िवादी हिन्दुओं द्वारा प्रारम्भ किया गया गौरक्षा आंदोलन को लेकर विषैला वातावरण बनाया।[११] अंग्रेजों ने परम्परागत सामंत वर्ग को नये बुद्धिजीवी वर्ग के, प्रान्त को प्रान्त के तथा जाति को जाति के विरूद्ध उकसाने का कार्य किया। भारतीय एकता को जड़ से मिटा देने की नीति अपनायी। इस क्रम में ब्रिटिश सरकार दमनकारी होती गई। फलतः प्रारम्भिक राष्ट्रीय आंदोलन जनता के बीच अपना सशक्त आधार बनाने में विफल रहा, जिन लोगों ने इस आंदोलन से आशायें संजोयी थीं, वे निराशा हो गये। उदारवादियों की आवेदन-निवेदन की नीति की भर्त्सना की जाने लगी और ये नेता उपहास के पात्र बन गये। युवावर्ग इनसे असन्तुष्ट हो गया। १९०५ ई. तक राष्ट्रीय आन्दोलन की धारा तीव्र हो रही थी और नेतृत्व उग्रवादी लोगों के पास खिसकता दृष्टिगत हो रहा था।[१२]

उग्रवाद का उदय : उदारवादियों की विफलता के पश्चात नवीन परिस्थितियों में अनेक नेता (बाल गंगाधर तिलक, विपिनचन्द्र पाल, लाला लाजपत राय, अरविन्द घोष आदि) उभरकर सामने आये, जिनकी मांगे आमूल परिवर्तन के साथ-साथ उग्रवादी थीं। इस कारण राष्ट्रीय आन्दोलन में उग्रवाद पनपा और इसके समर्थक उग्रवादी कहलाये। ये नये नेता निम्न मध्य वर्ग, विद्यार्थियों, मजदूरों, किसानों के पास संघर्ष करने की अपील लेकर प्रस्तुत हुये। इन उग्रवादियों का कथन था कि सामाजिक समानता और राजनीतिक स्वतंत्रता उनका जन्मसिद्ध अधिकार है। उग्रवादियों ने भारतीय संस्कृति से प्रेरणा ग्रहण की और धार्मिक देशभक्ति को बढ़ावा दिया। वे राजनीतिक दासता से मुक्ति प्राप्त हेतु आत्मनिर्भर और आत्मविश्वासी बनने पर बल देते थे जोकि स्वदेशी अपनाने, विदेशी बहिष्कार और सक्रिय प्रतिरोध से प्राप्त किया जा सकता था।[१३] उग्रवादियों ने हिन्दू गौरव के पुनरूत्थान को प्रमुखता दी, जिससे मुसलमान सशंकित व क्षुब्ध हो गये। इस प्रकार कांग्रेस कार्यकर्ताओं में ही कुछ भिन्न राजनीतिक विचारधारा और कार्यनीति वाले लड़ाकू राष्ट्रवादियों के नये दल का कांग्रेस के अन्दर ही उदय और विकास हुआ। उन्नीसवीं सदी के अन्त में यह दल, जिसे गरम दल कहा गया, बड़ी तेजी से विकसित हुआ था। ब्रिटिश सरकार से भारतीय उदारवादियों की आस्था निरन्तर समाप्त होती गई। एक नवीन चेतना तथा ब्रिटिश विरोधी भावना का संचार हुआ।[१४] नये राष्ट्रवाद को निम्न मध्यवर्ग से व्यापक समर्थन प्राप्त हुआ। १६०५ ई. के पश्चात यह आंदोलन सामाजिक आधार पर अधिक व्यापक दृष्टिगत हुआ और उसमें निम्नवर्ग के लोग भी सम्मिलित होने लगे थे।

साम्प्रदायिक समस्या : आधुनिक भारत के इतिहास में साम्प्रदायिक समस्या से तात्पर्य 'विभाजन से पूर्व जनसंख्या के २६ करोड़ हिन्दू समुदाय का लगभग १ करोड़ ४० लाख मुस्लिम समुदाय के साथ संबंधों की विवेचना है। तत्कालीन भारत में अल्पसंख्यकों की समस्या की वास्तविक स्थिति साम्प्रदायिक बनी थी और इसे अधिक जटिल बनाने में ब्रिटिश सरकार की अत्यधिक भूमिका रही थी। ब्रिटिश शासनकाल के अन्तिम तीन दशकों में साम्प्रदायिकता का विकराल रूप दृष्टिगत हुआ था, जिसकी अन्तिम परिणति ''द्विराष्ट्रीय सिद्धान्त'' के रूप में उजागर हुई थी।[१५] अर्थात् इस द्विराष्ट्रीय सिद्धान्त के क्रियान्वयन से धर्म के आधार पर भारतीय उपमहाद्वीप का विभाजन हुआ था और इस उपमहाद्वीप में एक नवीन राष्ट्र ''पाकिस्तान'' का अस्तित्व साकार हुआ था।[१६]

निःसन्देह, भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना के पूर्व भारत के दो प्रमुख समुदायों 'हिन्दू' और 'मुस्लिम' के मध्य साम्प्रदायिक संघर्ष का कोई उल्लेख इतिहास में नहीं प्राप्त होता है। इस कथन का अर्थ यह नहीं है कि मुस्लिम शासको के विरूद्ध कोई विरोध अथवा विद्रोह नहीं हुआ था। केन्द्रीय सत्ता की दुर्बलता के दौर में सामंती विद्रोह होते रहते थे परन्तु मुस्लिम शासकों के विरूद्ध इन विरोधों-विद्रोहों का आधार साम्प्रदायिक नहीं था। विद्रोहों का नेतृत्व करने वाले हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही थे। उनके नेतृत्व में युद्ध करने वाले सैनिक भी दोनों ही सम्प्रदायों के थे। किसी विशेष धर्म का अनुयायी होना उनकी स्वामिभक्ति में बाधक नहीं था। यह कहना नितान्त युक्तिसंगत है कि साम्प्रदायिक समस्या उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और बीसवीं शताब्दी में भारतीय राष्ट्रवाद और ब्रिटिश साम्राज्यवाद का सर्वाधिक महत्वपूर्ण केन्द्र बिन्दु बन गयी थी। भारत के स्वतंत्रता संघर्ष में साम्प्रदायिकता की अहम् भूमिका जटिलतम रूप में राष्ट्रवादियों को उलझाती रही थी।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मुस्लिम समुदाय का भारत में नवोदित राष्ट्रीय आंदोलन और ब्रिटिश सत्ता के प्रति जिस ब्रिटिश प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोण का परिचय प्राप्त होता है[१७] उसके मूल में १८५७ ई. के विद्रोह के घटनाक्रम रहे थे। ब्रिटिश शासन की दृष्टि में १८५७ ई. की परिस्थितियों में भारत का प्रत्येक मुसलमान विद्रोही था। प्रसिद्ध इतिहासकार टॉमस मेटकॉफ का यह उद्धरण विचारणीय है। ''ब्रिटिश शासकों की दृष्टि में मुस्लिम नेतृत्व और षड्यन्त्र के कारण १८५७ ई. का विद्रोह प्राप्त हुआ था, जो प्रारम्भ में सैनिक विद्रोह था,

राजनैतिक संघर्ष में परिवर्तित हो गया था।'' इसी कारण विद्रोह के उपरान्त हिन्दुओं की तुलना में मुसलमान ब्रिटिश दंड नीति के अधिक शिकार हुए थे। तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमंत्री लार्ड पामर्स्टन का वक्तव्य भी इसे प्रमाणित करता है - ''मुस्लिम संस्कृति से संबंधित प्रत्येक इमारत को, चाहे कला की दृष्टि से वह कितनी भी मूल्यवान हो, भूमिसात कर दी जाये।''[१८] अन्ततोगत्वा ब्रिटिश नीति और उसकी मनोभावना के क्रियान्वयन के फलस्वरूप भारतीय मुसलमान उपेक्षित होते गये। इसके अतिरिक्त उनमें व्याप्त अन्धविश्वासों और कुरीतियों ने भी उन्हें भारतीय समाज में आगे नहीं बढ़ने दिया। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में मुस्लिम समुदाय की स्थिति नितान्त शोचनीय थी। १८५८ ई. से १८७८ ई. के काल में १३७३ भारतीयों को स्नातक की उपाधि प्राप्त हुई थी, जिसमें मुसलमानों की संख्या शून्य थी। ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च शिक्षा के विरूद्ध मुसलमानों में एक धार्मिक और सांस्कृतिक उदासीनता विद्यमान थी।[१९] उच्च शिक्षा के प्रति उस मानसिक प्रतिरोध को जिसका मुस्लिम समुदाय शिकार बन गया था, समाप्त करने में सैय्यद अहमद खाँ ने भारी योगदान किया।

सैय्यद अहमद खाँ का दृष्टिकोण और उनकी भूमिका - सैय्यद अहमद खाँ ने मुस्लिम समुदाय को एक नई पहचान दी। उन्होंने पाश्चात्य शिक्षा और विचारधारा का समर्थन किया। उन्होंने व्यक्त किया कि पश्चिमी शिक्षा और विचारधारा इस्लाम-विरोधी नहीं है। सैय्यद अहमद खाँ ने अपने विचारों और कार्यक्रमों का केन्द्र बिन्दु अलीगढ़ को बनाया। इसीलिए अलीगढ़ में किये गये सभी प्रयासों का सामूहिक नाम 'अलीगढ़ आन्दोलन' है।[२०]

सैय्यद अहमद खाँ के प्रयासों का धार्मिक नेताओं ने प्रबल विरोध किया था, परन्तु वे अपने निश्चय पर अडिग रहे और उन्होंने मुस्लिम समुदाय को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए सदैव प्रोत्साहित किया। उन्होंने मुसलमानों में नव चेतना का संचार किया और उन्हें संगठित करने के लिए बौद्धिक हाई कमान की भूमिका अपनायी। उनके द्वारा स्थापित स्कूल, कालेज, संस्थाओं और आल इंडिया मुहम्मडन एजुकेशन कॉन्फ्रेन्स ने मुसलमानों को प्रगतिशील बनाया तथा उन्हें संगठित किया। अपने आंदोलन की मुख्यधारा को लोकप्रिय बनाया।

सैय्यद अहमद खाँ अपने कांग्रेस विरोधी उद्‌गारों में संकुचित साम्प्रदायिकता से नहीं अपितु अपने सामंती दृष्टिकोण से प्रेरित थे।[२१] पश्चिमी सभ्यता से वे प्रभावित अवश्य थे, परन्तु उनकी स्वयं की मानसिकता परिवर्तित नहीं हुई थी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की प्रतिनिधित्व प्रणाली की मांग को वह निम्न वर्गों के हाथों में सत्ता का हस्तांतरण समझते थे। सैय्यद अहमद खाँ आजीवन ब्रिटिश राज के प्रति दृढ़ स्वामिभक्ति रखते रहे थे, साथ ही अपनी कौम की पृथक हित साधना उनका राजनीतिक दृष्टिकोण बन गया था। वे मृत्यु पर्यन्त भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के विरोधी बने रहे थे। कांग्रेस-विरोधी अभियान में एम.ए.ओ. कॉलेज अलीगढ़ के प्रिंसिपल थियोडोर बेक उनकी धार को तेज करते रहे थे। कांग्रेस विरोधी राजनीतिक विचारधारा को इंग्लैण्ड में प्रचारित करने के लिए थियोडोर बेक की सहायता से अगस्त १८८८ ई. में यूनाइटेड इंडियन पैट्रियाटिक एसोसिएशन स्थापित की गई थी। इसका लक्ष्य था कि ब्रिटिश सरकार कांग्रेस की मांगों को स्वीकार न करे तथा मुस्लिम कौम के हितों की सुरक्षा करे।[२२] इस प्रकार सैय्यद अहमद खाँ की दृष्टि में कांग्रेस आन्दोलन में भागीदारी करना मुसलमानों के हितों को आघात पहुंचाना था।

हिन्दू उग्रवादी धार्मिक आन्दोलन की भूमिका : अलीगढ़ आंदोलन ने बौद्धिक जागरूकता का प्रचार-प्रसार कर मुसलमानों को अपनी एक पहचान स्थापित करने की सशक्त भूमिका निभाई थी। इसी जागरूकता ने कालान्तर में मुसलमानों को राजनीतिक रूप से संगठित होने का पथ प्रशस्त किया था। मुस्लमानों को संगठित होने की स्थिति उत्पन्न करने में एक और भी सहयोगी तत्व रहा था- 'हिन्दू उग्रवादी धार्मिक आन्दोलन', जिसके परिणामस्वरूप मुस्लिम सामुदायिक भावनायें मुस्लिम साम्प्रदायिक भावनाओं में परिवर्तित होती चली गयीं।[२३]

हिन्दू धार्मिक पुनरूत्थान के दौर में उत्तर भारत तथा

पश्चिम भारत के बहुसंख्यक हिन्दू समाज को स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अत्यधिक प्रभावित तथा आंदोलित किया था। उनके द्वारा स्थापित 'आर्य समाज' का इस क्षेत्र में व्यापक प्रभाव था। भारत के इस भाग में 'आर्य समाज' की लोकप्रियता का एक कारण यह भी था कि इस भाग में अभी भी सामाजिक दृष्टिकोण से मुस्लिम प्रभाव विद्यमान था। आर्य समाज हिन्दू कुरीतियों पर आघात करने के साथ-साथ इस्लाम के प्रति असहिष्णुता का ज्वलन्त प्रमाण 'गौ'हत्या' के विरूद्ध आन्दोलन में दृष्टिगत होता है। १८८२ ई. में स्वामी दयानन्द ने ''गौरक्षिणी सभा' की स्थापना की, जिसके फलस्वरूप लाहौर, अम्बाला, फिरोजपुर में गौ-हत्या के विरूद्ध साम्प्रदायिक दंगे हुए। १८८६ ई. में लुधियाना और दिल्ली में साम्प्रदायिक दंगे हुए। सबसे अधिक सांप्रदायिक दंगे १८६३ ई. में हुए जो पूर्वी उत्तर-प्रदेश के मऊ स्थान से प्रारम्भ हुये और जिन्होंने जूनागढ़ तथा बम्बई तक को अपनी लपेट में ले लिया।[२४] इस साम्प्रदायिक दंगे में ८० लोग मृत्यु के घाट उतार दिये गये थे तथा ३०० के लगभग मन्दिर-मस्जिद, दुकानें नष्ट हो गई थीं।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अपने आप में पूर्णतया धर्म-निरपेक्ष संस्था थी, परन्तु उसके अधिकांश सदस्य गौ रक्षिणी सभाओं के भी सदस्य थे, उनको अनुशासित और नियंत्रित रखना कांग्रेस के लिए संभव नहीं था जिससे कांग्रेस की धर्म निरपेक्षता की छवि धूमिल हुई। प्रोफेसर जॉन मैक्लेन ने अपनी पुस्तक ''इंडियन नेशनलिज्म एण्ड अर्ली इंडियन कांग्रेस'' में उल्लेख किया है कि इन दंगों के कारण कांग्रेस अधिवेशनों में मुसलमानों की संख्या कम होती गई।[२५] उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि १८८५ ई. से १८६२ ई. तक कांग्रेस अधिवेशनों में कुल ६४१३ सदस्यों ने भागीदारी की थी, जिसमें ८६८ मुसलमान सदस्य सम्मिलित हुये थे अर्थात् १३.५ प्रतिशत उनकी उपस्थिति रही थी। १८६३ ई. से १६०५ ई. के तेरह वर्षों के काल में कुल सदस्य संख्या १०६७७ रही, जिसमें ७६१ अर्थात् ७.१ प्रतिशत मुसलमान सदस्य सम्मिलित रहे थे।

हिन्दू धार्मिक आंदोलनों की यही आक्रामक प्रवृति पश्चिमी भारत, विशेषतया महाराष्ट्र में दृष्टिगत होती है। इसका नेतृत्व बाल गंगाधर तिलक ने किया था। वे स्वयं साम्प्रदायिकता से कोसों दूर थे, परन्तु विदेशी सत्ता के विरूद्ध जनमत बनाने में जिन राजनीतिक प्रतीकों का प्रयोग किया, उससे हिन्दू-मुस्लिम विद्वेष बढ़ा। उन्होंने शिवाजी महोत्सव का आयोजन कर अपने समाचार पत्रों 'मराठा', 'केसरी' के माध्यम से मुस्लिम सुल्तानों और मुगल शासकों के विरूद्ध शिवाजी के कार्यों का अतिरंजित वर्णन प्रस्तुत किया था। इसके परिणामस्वरूप मुस्लिम लेखक बीजापुर तथा औरंगजेब के समर्थन में तथ्य प्रस्तुत करने लगे।[२६]

उत्तर पश्चिमी प्रान्त में इसी दौर में उर्दू भाषा संबंधी विवाद उत्पन्न हो गया। इस प्रान्त में अरबी लिपि में उर्दू भाषा का प्रयोग न्यायालयों तथा शासन के निम्न स्तरों पर दीर्घकाल से प्रचलित रहा था। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उर्दू के स्थान पर देवनागरी लिपि में हिन्दी को शासन की भाषा बनाये जाने की मांग की जाने लगी। बिहार और मध्य प्रान्त में इस काल में हिन्दी का प्रयोग शासन स्तर पर किया जाने लगा था। अतएव १६०० ई. में उत्तर पश्चिमी प्रान्त के लेफटीनेन्ट गवर्नर मैक्डानेल ने बिना किसी पूर्व मन्त्रणा के हिन्दी को न्यायालय की वैकल्पिक भाषा के रूप में मान्यता दे दी,[२७] जो हिन्दू-मुस्लिम संबंधों को तनावपूर्ण बनाने में एक सशक्त कारक बनी।

निष्कर्षः अन्ततोगत्वा हिन्दू, मुसलमान, सिख और पारसी तथा निम्न जातियों के हिन्दू, जो सुधार आन्दोलनों से प्रभावित हुए थे एक-दूसरे से उत्तरोत्तर अलग होने लगे। राष्ट्रीय चेतना के उदय के साथ एक अन्य चेतना 'साम्प्रदायिक चेतना' भी उदित होने लगी। कोई भी एक आन्दोलन समस्त भारतीय जन-जीवन को अपना कार्यक्षेत्र नहीं बना सका था।

सन्दर्भ

१. शुक्ल राम लखन, 'आधुनिक भारत का इतिहास', हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, १६६४,पृ. ३८५-३८६
२. ग्रोवर बी.एल., यशपाल, 'आधुनिक भारत का इतिहास', एस. चन्द्र एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, १६८७, पृ. ४०४
३. शुक्ल रामलखन, पूर्वोक्त, पृ. ३८६
४. गुप्त मानिक लाल, 'भारत विभाजन : १६४७', साहित्य रत्नालय, कानपुर, २०१४, पृ. ३१-३२
५. चन्द्र बिपिन, 'भारत का स्वतंत्रता संघर्ष', हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, १६६२, पृ. ४३-४४
६. शुक्ल रामलखन, पूर्वोक्त, पृ. ३६१
७. गुप्त मानिक लाल, पूर्वोक्त, पृ. ३४
८. शुक्ल रामलखन, पूर्वोक्त, पृ. ३६३
६. चन्द्र बिपिन, पूर्वोक्त, पृ. पृ. ४६
१०. ग्रोवर, बी.एल., यशपाल, पूर्वोक्त, पृ. ४०६
११. गुप्त मानिक लाल, पूर्वोक्त, पृ. ३५-३६
१२. शुक्ल रामलखन, पूर्वोक्त, पृ. ३६४-३६५
१३. वही, पृ. ३६५-३६६
१४. गुप्त मानिक लाल, पूर्वोक्त, पृ. ३६
१५. शुक्ल रामलखन, पूर्वोक्त, पृ. ३६५
१६. वही, पृ. ३६६
१७. वही, पृ. ३६६-३६७
१८. शुक्ल राम लखन, पूर्वोक्त, पृ. ३६७
१६. वही, पृ. ३६७-३६८
२०. वही, पृ. ३६८-४०१
२१. चन्द्र बिपिन, पूर्वोक्त, पृ. ४७
२२. वही, पृ. ४७-४८
२३. चन्द्र बिपिन, पूर्वोक्त, पृ. ४८-५०
२४. गुप्त मानिक लाल, पूर्वोक्त, पृ. ३६-३७
२५. वही, पृ. ३७
२६. वही, पृ. ३७-३८
२७. वही, पृ. ३८

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 20 अंक 1, जनवरी-जून 2018
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

गैर-सरकारी संगठन द्वारा प्रवासी मजदूरों में एड्स वायरस के प्रबंधन का समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ अनिल कुमार
❖ प्रोफेसर जितेंद्र प्रसाद

प्रस्तुत शोध हरियाणा राज्य के रोहतक जिले में आर.पी. ऐजुकेशन सोसाइटी जैसे गैर- सरकारी संगठन के द्वारा चलाए गए एड्स जागरूकता अभियान का अध्ययन है। शोध पत्र में प्रवासी मजदूरों को ध्यान में रखकर संगठन को एड्स जागरूकता अभियान को फैलाने में मिली सफलता का आकलन किया गया है। इस दौरान १० हजार के लगभग प्रवासी मजदूरों को तीन वर्ष के अंतराल में अर्थात फरवरी २०१३ से जनवरी २०१६ तक विभिन्न क्षेत्रों में शिविर तथा कार्यशाला आयोजित कर एड्स के बारे में जानकारी देकर जागरूक करने का प्रयास किया गया। प्रवासी मजदूरों को एड्स से उत्पन्न होने वाले वायरस से बचने के उपाय बताए गए। २०० प्रवासी मजदूरों को चयनित कर साक्षात्कार अनुसूची तथा अनौपचारिक साक्षात्कार विधि के द्वारा उनके विचार जानने की कोशिश की गई। इस गैर-सरकारी संगठन के द्वारा सकारात्मक विचार और उनकी सेवाओं से प्रवासी मजदूरों के विचार जानना मुख्य उद्देश्य रहा है।

भारत में राष्ट्रीय स्तर पर एक उच्च स्तरीय कमेटी का गठन १९८६ में हुआ। रोचक बात यह है कि यह आकस्मिक कदम तब उठाए गए जब एच.आई.वी. वायरस से संक्रमित एड्स रोग का पता ८० के प्रारंभ दशक में हुआ।[१] इससे पहले एड्स वायरस से संक्रमित रोगियों के लक्षण दक्षिण अफ्रीका में पाए थे। वस्तुतः दक्षिण अफ्रीका के बाद भारत में ही एड्स वायरस से संक्रमित लोगों का पता चला है।[२] सरकारी रिपोर्ट के अनुसार भारत में लगभग २२ लाख से अधिक एच.आई.वी. वायरस से संक्रमित लोगों का पता चला है। वैश्विक स्तर पर २५० लाख लोग एड्स वायरस के कारण अपनी जान गंवा चुके हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार बीसवीं सदी के अंतिम दशक में एड्स वायरस से संक्रमित लोगों की संख्या ४७० लाख के लगभग अंकित की गई।[३] इनमें से लगभग ७० प्रतिशत संक्रमित लोग अफ्रीका से थे। यह निश्चित रूप से एक दुखद तथ्य हैं कि १९९१ से २००१ के बीच ५० लाख नये लोग एड्स वायरस से संक्रमित पाये गऐ। इन तथ्यों के संदर्भ में यह कहना या सोचना गलत नहीं होगा कि हमारे देश में भी एड्स से संक्रमित लोगों की संख्या में आश्चर्यजनक रूप से वृद्धि हुई है।

हाल ही में ७ फरवरी २०१८ को एक चौंका देने वाला तथ्य उजागर हुआ, जब लखनऊ से ५० किलोमीटर की दूरी पर उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले में एक झोलाछाप डॉक्टर राजेश द्वारा एक ही संक्रमित सिरिंज से लगभग ३० मरीजों को इंजेक्शन लगाया गया जिससे २१ लोग एड्स वायरस से संक्रमित हो गये। झोलाछाप डॉक्टर द्वारा इस बात को स्वीकार किया गया कि उसने एक ही सिरिंज का प्रयोग मरीजों की लंबी कतार होने के कारण किया। उसके पास इतना समय नहीं था कि गरीबों को नए डिस्पोजेबल सिरिंज के द्वारा इंजेक्शन लगा सके। इसके बदले में एक इंजेक्शन लगाने के उसे सिर्फ १० रू ही मिलते हैं, इसलिए उसने ऐसा किया।[४]

दॉ हिन्दू अखबार में छपे इस दर्दनाक प्रकरण के सन्दर्भ में यह मानना सही नहीं होगा कि जिन एड्स वायरस के आंकड़ें सरकारी खाते में अंकित हैं, उससे कहीं अधिक की संख्या में एड्स वायरस से संक्रमित लोग इस रोग के शिकार हो सकते हैं। इसलिए सरकार ने गैर-सरकारी

❑ शोध अध्येता, समाजशास्त्र विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)
❖ सेवानिवृत्त प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

संगठनों तथा कुछ जागरूक सामाजिक कार्यकर्ताओं के माध्यम से एड्स के नियंत्रण तथा प्रबंधन का कार्यक्रम एक अभियान के रूप में चलाने का निर्णय लिया। यहाँ इस बात का उल्लेख करना अत्यंत आवश्यक है कि जब १९८० के दशक में एड्स वायरस के बारे में जानकारी प्राप्त हुई तब सर्वप्रथम एड्स से पीड़ित लोगों को सहारा देने के लिए परिवार के सदस्य, मित्र और समाजसेवी संस्थाओं ने ही इसे नियंत्रित करने के बारे में विचार किया। समय के साथ-साथ सामुदायिक संगठनों तथा गैर-सरकारी संगठनों ने इस भयानक संक्रमित वायरस से बचाव के लिए कारगर तरीके से अकुंश लगाने के उपाय सोचे। सरकारी तंत्र के उदासीन व्यवहार के बावजूद इस प्रकार के गैर-सरकारी सामाजिक संगठनों ने अपने कदम इस दिशा में बढ़ाए ताकि एड्स वायरस से संक्रमित लोगों को सहारा दिया जा सके और पीड़ित किसी उपेक्षा तथा हीन भावना से ग्रसित होकर हताश ना हों।

उन्नाव जिले में जिस झोलाछाप डाक्टर के द्वारा एड्स से संक्रमित ३० लोगों को एक ही सिरिंज लगाने पर जिन २१ मरीजों में इस वायरस के लक्षण पाए गए उसके बाद उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा उस डाक्टर के खिलाफ ठोस कार्यवाही करने के साथ-साथ संक्रमित मरीजों की जाँच के लिए एक विशेष टीम का भी गठन किया। गठित टीम ने यह बताया कि एच.आई.वी से संक्रमित सिरिंज से ही यह घटना घटित हुई है। परंतु उत्तर प्रदेश की जांच कमेटी का नेतृत्व कर रहे जांच कमेटी के सदस्य ए.के. सिंघल ने अपनी जाँच के द्वारा दो अतिरिक्त कारण भी बताए। उनमें से एक कारण अत्यधिक प्रवसन तथा अल्पकालिक आवास भी पाया गया। जाँच कमेटी ने अपनी जाँच के दौरान यह भी पाया कि बांगरमऊ गांव से काफी संख्या मे लोगों का आना-जाना होता रहता है। वहाँ के निवासी बाहर के राज्यों में मजदूरी करने के लिए सूरत तथा लुधियाना में जाते रहते हैं और इस प्रकार इन प्रवासी मजदूरों में एच.आई.वी वायरस से संक्रमित होने की संभावना अधिक होती है। जिस जांच कमेटी का गठन उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा किया गया, उसमें केन्द्र सरकारद्वारा नाको (नेशनल एड्स कंट्रोल आर्गेनाईजेशन) के तीन प्रमुख सलाहकार और यू.पी. स्टेट एड्स कंट्रोल सोसाइटी के पांच सदस्य थे। इस जांच कमेटी ने पांच पेजों की रिपोर्ट तैयार की, जिसे राज्य के स्वास्थ्य मंत्रालय को भेज दिया गया ताकि स्वास्थ्य मंत्रालय इसे नियंत्रित करने के लिए उचित कार्रवाई कर सके।[५]

उत्तर प्रदेश की इस घटना के बाद केन्द्र सरकार के स्वास्थ्य मंत्री जेपी नड्डा ने एक सराहनीय फैसला लिया, जिसमें मुफ्त सेवा के अर्न्तगत टेस्टिंग सेवा का प्रावधान उन लोगों के लिए है जिन्हें पी.एल.एच.आई.वी (पीपुल लिविंग विथ एचआईवी एड्स) माना जाता है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक वर्ष १२ लाख लोगों को मुफ्त जांच सेवा प्रदान की जायेगी। इससे पीड़ित लोगों के लिए उपचार की सुविधा भी निशुल्क दी जायेगी। इस वायरल लोड टेस्ट के द्वारा एंटीरेट्रोवाइरल उपचार की सुविधा साल में कम से कम एक बार १२ लाख लोगों को उपलब्ध हो सकेगी।[६] इस कदम से खून में पाए जाने वाले अनुवांशिक तत्व का भी पता चल पाएगा। भारत में एक अनुमान के अनुसार २१.१७ लाख PLHIVs (People Living with HIV Virus) हैं[७] परन्तु अनुमानित संख्या जो वायरस के शिकार हो सकते हैं उससे कहीं अधिक है।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत शोध हरियाणा राज्य के रोहतक जिले में आर.पी. ऐजुकेशन सोसाइटी जैसे गैर- सरकारी संगठन के द्वारा चलाए गए एड्स जागरूकता अभियान पर आधारित है। शोध पत्र में प्रवासी मजदूरों को ध्यान में रखकर संगठन के एड्स जागरूकता अभियान को फैलाने में मिली सफलता का आकलन किया गया है। इस दौरान १० हजार के लगभग प्रवासी मजदूरों को तीन वर्ष के अंतराल में अर्थात फरवरी २०१३ से जनवरी २०१६ तक विभिन्न क्षेत्रों में शिविर तथा कार्यशाला आयोजित कर उन्हें एड्स के बारे में जानकारी देकर जागरूक करने का प्रयास किया गया। प्रवासी मजदूरों को एड्स से उत्पन्न होने वाले वायरस से बचने के उपाय बताए गए। २०० प्रवासी मजदूरों को चयनित कर साक्षात्कार अनुसूची तथा अनौपचारिक साक्षात्कार

विधि के द्वारा उनके विचार जानने की कोशिश की गई। इस गैर-सरकारी संगठन के द्वारा सकारात्मक विचार और उनकी सेवाओं से प्रवासी मजदूरों के विचार जानना मुख्य उद्देश्य था। प्रवासी मजदूरों के सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमि के साथ-साथ उनके विचारों को जानने के लिए, साक्षात्कार विधि पर आधारित तथ्यों का विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

(१) उत्तरदाताओं की सामाजिक तथा आर्थिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना।

(२) उत्तरदाताओं के लैंगिक व्यवहार का अध्ययन जिसके कारण एच.आई.वी या एड्स से संक्रमित या पीड़ित होने की संभावना बढ़ जाती है।

(३) गैर-सरकारी संगठन द्वारा एच.आई.वी या एड्स जागरूकता के बारे में चलाए गए कार्यक्रमों के विषय में उत्तरदाताओं के विचारों का अध्ययन करना।

(४) एच.आई.वी या एड्स के फैलाव को नियंत्रित करने में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका का अध्ययन करना।

विश्लेषण : आर.पी. ऐजुकेशन सोसाईटी के द्वारा प्रवासी मजदूरों की सामाजिक व आर्थिक पृष्ठभूमि से सम्बन्धित तथ्यों का संकलन किया गया है।

अधिकांश उत्तरदाताओं की आयु १५ से ३५ वर्ष थी। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रवासी मजदूरों में अधिकांश युवा वर्ग से हैं, जिनके लैंगिक व्यवहार में विसंगति पाए जाने के कारण उनमें एच.आई.वी वायरस से संक्रमित होने की संभावना बढ़ जाती है। इसीलिए आर. पी. ऐजुकेशन सोसाइटी ने सरकार द्वारा चलाये जा रहे एड्स जागरूकता अभियान को विशेष रूप से प्रवासी मजदूरों को जागरूक करने में अपनी दिलचस्पी दिखाई। अधिकांश प्रवासी मजदूर जो काम की तलाश में दूसरे प्रान्तों में जाकर काम करते हैं उनमें पुरूषों की सख्या ६७ प्रतिशत पाई गई जबकि महिलाओं की संख्या ३३ प्रतिशत थी।

प्रवासी मजदूरों को अधिकतम संख्या में मिलने वाला कार्य मजदूरी से जुड़ा है। अधिकांश उत्तरदाताओं (८४ प्रतिशत) ने बताया कि मजदूरी का काम उन्हें बराबर मिलता रहता है इसलिए वे हरियाणा में आने को सदैव तत्पर रहते हैं। मजदूरी के अलावा दूसरी कंपनी में नौकरी, घरेलू कार्य,तथा ठेकेदारी आदि का काम भी वे कर लेते हैं। कुल मिलाकर उनकी संख्या १६ प्रतिशत से भी कम है।

३३ प्रतिशत लोग निरक्षर और ६२ प्रतिशत लोग साक्षर हैं। अधिकतर प्रवासी मजदूर पांचवी तथा दसवीं कक्षा से उपर की पढ़ाई नहीं कर पाए थे। केवल ५ प्रतिशत प्रवासी मजदूरों ने यह बताया कि वह मैट्रिक से ऊपर की ही पढ़ाई कर सके थे।

विवाहित उत्तरदाताओं की संख्या अधिक है। विवाहित प्रवासी उत्तरदाताओं की संख्या ८१ प्रतिशत थी जबकि अविवाहित उत्तरदाताओं की संख्या १६ प्रतिशत थी।

सारणी संख्या -१

उत्तरदाताओं की एड्स के बारे में जानकारी का स्तर

स्तर	संख्या	प्रतिशत
असुरक्षित लैंगिक सम्बन्ध	७०	३५
माँ से बच्चों में संक्रमण	२०	१०
संक्रमित सिरिंज से संक्रमण	७०	३५
संक्रमित रक्त से हस्तांतरित	४०	२०
कुल	२००	१००

सारणी संख्या १ से यह पता चलता है कि ३५ प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते हैं कि असुरक्षित लैंगिक संबंध तथा ३५ प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि संक्रमित सीरिंज के कारण ही एड्स फैलता है, जबकि २० प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते हैं कि संक्रमित रक्त के चढ़ाने से एड्स रोग हस्तांतरित होता है। इसके अतिरिक्त १० प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया कि संक्रमित माँ से बच्चों को एड्स होने का खतरा रहता है।

सारणी संख्या - २

उत्तरदाताओं के जानकारी के स्त्रोत

स्त्रोत	संख्या	प्रतिशत
मित्र	१२	६
मीडिया	२६	१३
गैर-सरकारी संगठन	१०८	५४
अन्य अस्पताल	५४	२७
कुल	२००	१००

सारणी संख्या २ से स्पष्ट है कि अधिकांश उत्तरदाताओं अर्थात ५४ प्रतिशत ने इस बात को स्वीकार किया कि उन्हें एड्स के विषय में जानकारी गैर-सरकारी संगठन के स्वास्थ्य कर्मियों से हुई जबकि २७ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि एड्स की जानकारी उन्हें अस्पताल अथवा अन्य स्वास्थ्य केन्द्रों से प्राप्त हुई। १३ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया कि एड्स की जानकारी उन्हें मीडिया यानि रेडियो, टी.वी., समाचार पत्र से प्राप्त हुई। जबकि ६ प्रतिशत उत्तरदाताओं को एड्स के विषय में जानकारी अपने मित्रों तथा सहकर्मियों से प्राप्त हुई।

सारणी संख्या - ३

एड्स के फैलने के बारे में मत

विचार	संख्या	प्रतिशत
अज्ञानता	५२	२६
परिवार के बिना रहना	८२	४१
मित्रों का दबाव	३८	१६
नशीली दवा/मदिरा सेवन	२८	१४
कुल	२००	१००

सारणी संख्या ३ से स्पष्ट हो जाता है कि ४१ प्रतिशत उत्तरदाताओं का यह मानना है कि एड्स के फैलने का मुख्य कारण परिवार से दूर रहना है, इस कारण एड्स के होने की संभावना बढ़ती है क्योंकि परिवार में रहते हुए प्रवासी मजदूर किसी लैंगिक विसंगतियों के शिकार नहीं होते, जबकि २६ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अज्ञानता तथा १६ प्रतिशत ने मित्रों के दबाव के कारण तथा १४ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने नशीली दवाओं तथा मदिरा का सेवन करने के कारण एड्स के फैलने की संभावना को स्वीकार किया।

सारणी संख्या -४

गैर-सरकारी संगठन द्वारा उत्तरदाताओं को एड्स के विषय में दी गई जानकारी

जानकारी	संख्या	प्रतिशत
कण्डोम का नियमित प्रयोग	७०	३५
अस्पताल में नियमित जाँच	५६	२८
सिरिंज का दोबारा प्रयोग न करना	३४	१७
संक्रमित रक्त के बारे में जानकारी	४०	२०
कुल	२००	१००

सारणी संख्या ४ से यह स्पष्ट है कि ३५ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यह बताया कि कंडोम के नियमित प्रयोग से एड्स से बचा जा सकता है वहीं दूसरी ओर २८ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यह माना कि अस्पताल में नियमित रूप से जांच करवा कर यह जानकारी प्राप्त की जा सकती है कि वे एच.आई.वी. वायरस से संक्रमित हैं या नही। २० प्रतिशत उत्तरदाताओं की यह राय है कि संक्रमित रक्त के कारण एड्स फैलता है। केवल १७ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने माना कि सूई का दोबारा प्रयोग करना एड्स के फैलने का कारण है।

सारणी संख्या - ५

एड्स पर नियंत्रण करने के बारे मे उत्तरदाताओं के मत

विचार	संख्या	प्रतिशत
गैर-सरकारी संगठनों द्वारा ज्ञान प्राप्त होना	१६	८
नियमित स्वास्थ जाँच	४२	२१
गैर-सरकारी संगठनों द्वारा काउंसलिंग	५८	२६
नियमित रक्त जाँच	२६	१३
गैर सरकारी संगठनों के कैम्प	३०	१५
मीडिया प्रचार	२८	१४
कुल	२००	१००

यह पूछे जाने पर कि क्या एड्स पर रोक लगाई जा सकती है, उत्तरदाताओं ने यह स्वीकार किया कि ऐसा

संभव है। सारणी संख्या ५ से यह स्पष्ट है कि २६ प्रतिशत उत्तरदाता यह स्वीकार करते हैं कि उन्हें गैर-सरकारी संगठन के स्वास्थ्य कर्मियों से एड्स के विषय में बेहतर जानकारी प्राप्त हुई है। जबकि २१ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यह माना कि नियमित स्वास्थ्य जांच के द्वारा एड्स पर नियंत्रण संभव है। १५ प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि गैर-सरकारी संगठन द्वारा लगाए गए स्वास्थ्य कैम्प के द्वारा उन्हें एड्स के विषय में जानकारी प्राप्त हुई है। इसके अतिरिक्त १४ प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि मीडिया के योगदान से उन्हें एड्स के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई है। १३ प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत था कि नियमित रक्त जाँच से ही एड्स का पता चल सकता है। केवल ८ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया उन्हें गैर सरकारी संगठन के स्वास्थ्य कर्मियों के द्वारा दी गई काऊसलिंग से एड्स के विषय में जानकारी मिली है।

सारणी संख्या -६

उत्तरदाताओं के मौलिक प्रवास क्षेत्र

मौलिक प्रवास क्षेत्र	संख्या	प्रतिशत
बिहार	९२	४६
उत्तर प्रदेश	५२	२६
राजस्थान	०२	१.०
आसाम	२८	१४
मध्य प्रदेश	२६	१३
कुल	२००	१००

सारणी संख्या ६ में उत्तरदाताओं के प्रदेश जहाँ के वे मूल निवासी हैं उससे जुड़ी जानकारी से यह स्पष्ट है कि ज्यादातर उत्तरदाता हिन्दी बोले जाने वाले क्षेत्र के मूल निवासी हैं। सबसे अधिक संख्या में बिहार से ४६ प्रतिशत, उत्तर प्रदेश से २६ प्रतिशत, राजस्थान से १ प्रतिशत, आसाम से १४ प्रतिशत और मध्य प्रदेश से १३ प्रतिशत उत्तरदाता हैं। इनमें सबसे कम संख्या राजस्थान से है।

सारणी संख्या - ७

प्रवासी मजदूरों के प्रवसन की अवधि

प्रवसन की अवधि	संख्या	प्रतिशत
०-२ वर्ष	९४	४७
३-५ वर्ष	७२	३६
६-८ वर्ष	२६	१३
९ वर्ष और उससे ऊपर	०८	४
कुल	२००	१००

सारणी संख्या ७ के द्वारा यह स्पष्ट है कि अधिकांश मजदूर यानि ४७ प्रतिशत रोहतक में पिछले दो वर्ष से यहाँ मजदूरी करने के लिए आ रहे है। ३६ प्रतिशत मजदूर पिछले ३ से ५ वर्ष से रोहतक में मजदूरी करने के लिए आ रहे हैं। त्यौहार तथा पर्व के समय वे अपने मूल स्थान पर वापस जाते हैं। इन प्रवासी मजदूरों में पिछले ६ से ८ वर्ष की अवधि में आने वालों का प्रतिशत १३ है व ९ वर्ष या इससे अधिक समय तक आने वाले मजदूरों का प्रतिशत ४ है। इस तरह से कम अवधि तक रहने वाले मजदूरों में से कुछ मजदूर ऐसे भी हैं जो बसते तो रोहतक में है परन्तु काम के लिए वे दिल्ली भी जाते हैं। लगभग सभी प्रवासी मजदूर जो काम की तलाश में रोहतक आये थे पहली बार ही मजदूरी के लिए रोहतक काम करने आये और इसके लिए भी वे अकेले नहीं आये बल्कि अपने मित्र तथा रिश्तेदार के साथ ही यहाँ आये और उनके साथ ही निवास करते हैं।

सारणी संख्या -८

उत्तरदाताओं के प्रवसन के स्त्रोत

प्रवसन के स्त्रोत	संख्या	प्रतिशत
मित्र	१२६	६३
सम्बन्धी	७२	३६
स्व-प्रेरित	२	१
कुल	२००	१००

सारणी सख्या ८ से स्पष्ट है कि ६३ प्रतिशत मजदूर अपने मित्रों के साथ रहते हैं और ३६ प्रतिशत मजदूर ऐसे है जो अपने रिश्तेदारों के साथ रहते हैं और १ प्रतिशत मजदूर किराये पर अकेले निवास रहते हैं।

ज्यादातर प्रवासी मजदूर दिवाली तथा छठ पर्व पर अपने मूल स्थान को जाते हैं।

शैक्षणिक स्तर के आधार पर एड्स के बारे में उत्तरदाताओं के विचार सारणी संख्या ६ में प्रदर्शित हैं।

सारणी संख्या - ६

शैक्षणिक स्तर के आधार पर एड्स के बारे मे उत्तरदाताओं की जानकारी

शैक्षणिक स्तर	उत्तरदाताओं के विचार			
	परिवार के बिना रहना	मित्र दबाव	मदिरा/नशीले पदार्थ सेवन	अज्ञानता
निरक्षर	५४ (३३.५४)	१५ (२८.३०)	२० (३२.२५)	१५ (२२.७२)
कक्षा १-५ तक	३७ (२२.६८)	१० (१८.८६)	१४ (२२.५८)	१७ (२५.७५)
६-१० तक	६१ (३७.८८)	२२ (४१.५०)	२५ (४०.३२)	२५ (३७.८७)
११ से ऊपर	६ (५.५६)	६ (११.३२)	०३ (४.८३)	०६ (१३.६३)
कुल	१६१	५३	६२	६६

सारणी संख्या ६ से स्पष्ट है कि जो उत्तरदाता पांचवी पास थे उनमें से २२.६८ प्रतिशत का मानना था कि परिवार के बिना रहने से एड्स का खतरा बढ़ता है तथा १८.८६ प्रतिशत का मानना था यह मित्र दबाव के कारण बढ़ता है जबकि २२.५८ प्रतिशत ने यह माना कि मदिरा सेवन के कारण फैलता है। छठी कक्षा से ऊपर के लोगों में ३७.८८ प्रतिशत लोगों का यह मानना था कि परिवार से अलग रहने के कारण तथा निरक्षर और पांचवी कक्षा तक पढ़े (२८.३०+१८.८६) ४७.१६ प्रतिशत प्रवासी मजदूरों का मानना था कि यह मित्र दबाव के कारण बढ़ता है। ११वीं से उपर ४.८३ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यह माना कि यह मदिरा सेवन के कारण होता है तथा कक्षा ६ से उपर के शैक्षणिक स्तर के ५१.५ प्रतिशत लोगों का यह मानना था कि अज्ञानता के कारण यह अधिक बढ़ जाता है छठी कक्षा से ऊपर प्रवासी मजदूरों के विचार लगभग निरक्षर और पांचवी कक्षा के समूह के तरह ही थे। इस प्रकार यह कहा जा सकता है सभी उत्तरदाता जो निरक्षर या ग्यारहवीं कक्षा तक पढ़े लिखे थे उनके विचार में अधिक अन्तर नहीं था।

सारणी संख्या -१०

शैक्षणिक आधार पर एड्स रोग फैलने के बारे मे उत्तरदाताओं के विचार

शैक्षणिक स्तर	हाँ	नहीं
निरक्षर	५८ (३२.४०)	०८ (३८.०६)
कक्षा १से ५ तक	४२ (२३.४६)	०६ (२८.५७)
६-१० तक	१७ (६.४६)	०६ (२८.५७)
११ से ऊपर	०६ (५.०२)	०१ (४.७६)
कुल-२००	१७६ (८६.५०)	२१ (१०.५०)

शैक्षणिक स्तर पर एड्स के फैलने के बारे में उत्तरदाताओं से जानकारी ली गई तो अधिकांश लोगों ने (८६.५ प्रतिशत) ने यह स्वीकार किया कि अनियमित लैंगिक संबंध के कारण एच.आई.वी वायरस के फैलने की संभावना बढ़ जाती है जबकि १०.५० प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यह माना कि ऐसा नहीं है। इस बात से स्पष्ट है कि अनियंत्रित लैंगिक संबंध को अधिकांश उत्तरदाता एच.आई.वी. वायरस से एड्स फैलने का कारण मानते हैं।

सारणी संख्या -११
शैक्षणिक आधार पर एड्स रोग के फैलने के बारे मे उत्तरदाताओं के विचार

शैक्षणिक स्तर	उत्तरदाताओं के विचार			
	असुरक्षित लैगिंक संबंध	संक्रमित सिरिंज	संक्रमित रक्त से	संक्रमित माँ से बच्चों तक
निरक्षर	५० (३६.६८)	४८ (३८.०६)	४६ (२७.३८)	०६ (१५.७८)
कक्षा १-५ तक	२४ (१६.०४)	२७ (२१.४२)	४० (२३.८०)	१० (२६.६१)
६-१० तक	४२ (३३.३३)	४१ (३२.५३)	७२ (४२.८५)	१६ (४२.१०)
११ से ऊपर	१० (७.६३)	१० (७.६३)	१० (५.६५)	०६ (१५.७८)
कुल-२००	१२६ (६३)	१२६ (६३)	१६८(८४)	३८ (१६)

सारणी संख्या ११ से यह स्पष्ट हो जाता है कि अधिकांश सूचनादाताओं (६३ प्रतिशत) का यह मानना है कि असुरक्षित लैंगिक संबंध तथा संक्रमित सुई के इस्तेमाल से एड्स वायरस का खतरा बढ़ जाता है। अधिकांश उत्तरदाताओं का यह विचार था कि रक्त आधान (Blood Transfusion) के द्वारा ही यह बीमारी ज्यादा फैलती है। ८४ प्रतिशत लोगों ने इस बात को स्वीकार किया कि रक्त आधान के द्वारा यह बीमारी फैलती है। आश्चर्य इस बात का है कि केवल १६ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यह स्वीकार किया है कि यदि संक्रमित माँ अपने बच्चे को दूध पिलाती है तो उसे भी एड्स हो सकता है। विस्तार से जानकारी प्राप्त करने पर यह पता चला है कि यह मिथ्या धारणा है।

सारणी संख्या -१२
आयु के आधार पर एड्स रोग के फैलने के बारे में उत्तरदाताओं के मत

आयु समूह	उत्तरदाताओं के विचार			
	मदिरा सेवन	**नशीले पदार्थ**	**मनोरंजन**	**वेश्यावृति**
१५-२५	२२ (५०)	०६ (३७.५)	६५ (५१.६३)	३८ (५६.३७)
२६-३५	११ (२५)	०५ (३१.२५)	६४ (३४.२३)	२२ (३४.३७)
३६-४५	०६ (२०.४५)	०४ (२५.००)	२३ (१२.५)	०४ (६.२५)
४६ से ऊपर	०२ (४.५४)	०१ (६.२५)	०३ (१.६३)	००
कुल	४४	१६	१८४	६४

सारणी संख्या १२ से स्पष्ट हो जाता है कि ५६.३७ प्रतिशत उत्तरदाता जो १५-२५ वर्ष के हैं वे वेश्याओं के साथ यौन संबंध बनाते हैं जिससे उनमें एड्स होने की संभावना अधिक होती है। उक्त सारणी से यह भी स्पष्ट है कि २६ से ३५ वर्ष के आयु वाले ३४.३७ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यह माना कि यौन संबंध स्थापित करने से एड्स के खतरे बढ़ जाते हैं। ३६ वर्ष के आयु के ऊपर वाले ६.२५ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यह माना कि एड्स फैलने की संभावना वेश्याओं के पास जाने से बढ़ जाती है। उत्तरदाताओं का यह मानना है कि अकेलेपन तथा परिवार से दूर रहने के कारण यौन विसंगति की संभावना बढ़ जाती है जिसके कारण ऐसे लोगों में एचआईवी वायरस के फैलने की संभावना अधिक होती है। इस प्रकार के व्यवहार १५ से ३५ वर्ष के मजदूरों में ज्यादा होते हैं और इन्हीं युवाओं में एच. आई.वी वायरस होने का खतरा ज्यादा होता है। खतरे की संभावना अधिक होने का कारण असुरक्षित यौन सम्बन्ध पाया गया। अनौपचारिक साक्षात्कार के दौरान उत्तरदाताओं ने यह बताया कि वेश्याओं से सम्बन्ध बनाते समय वे कण्डोम या अन्य किसी प्रकार के यौन सम्बन्धी सुरक्षित तरीके नहीं अपनाते हैं।

सारणी संख्या -१३

आयु के आधार पर वेश्याओं से सम्बन्ध होने पर एड्स के बारे में उत्तरदाताओं के रूझान

आयु वर्ग	हाँ	नहीं	अनिश्चित
१५-२५	८७	०५	१०
	(५८.००)	(२३.८०)	(३४.४८)
२६-३५	४६	०५	१४
	(३२.६६)	(२३.८०)	(४८.२७)
३६-४५	१३	१०	०३
	(०८.६६)	(४७.६१)	(१०.३४)
४६ से ऊपर	०१	०१	०२
	(०.६६)	(४.७६)	(६.८६)
कुल	१५०	२१	२६

सारणी संख्या १३ से यह स्पष्ट हो जाता है कि ५८ प्रतिशत १५-२५ आयु वर्ग के व ३२.६६ प्रतिशत २६-३५ आयु वर्ग के उत्तरदाताओं के अनुसार वेश्याओं के साथ सम्बन्ध स्थापित करना ही एच.आई.वी. वायरस के फैलने का मुख्य कारण है। ९० प्रतिशत उत्तरदाता जो १५- ३५ वर्ष आयु के हैं उनकी सोच इस प्रकार के यौन संबंध के बारे में सकारात्मक पाई गई, जबकि ४६ प्रतिशत यानि १५-३५ आयु वर्ग के युवाओं ने इस बात से इन्कार किया कि वेश्याओं के साथ यौन संबंध नहीं बनाया जाए तो इस वायरस से बचा जा सकता है। ३६ से उपर आयु वर्ग वाले ५२.३० प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यह माना कि वेश्याओं के साथ सम्बन्ध नहीं बनाने पर एड्स से बचाव संभव है।

सारणी संख्या -१४

आयु के आधार पर एड्स के बारे में उत्तरदाताओं के रूझान

आयु वर्ग	हाँ	नहीं
१५-२५	८४	१८
	(५०.९०)	(५१.४२)
२६-३५	५६	१२
	(३२.९३)	(३४.२८)
३६-४५	२२	०४
	(१३.३३)	(११.४२)
४६ से ऊपर	०३	०१
	(१.८१)	(२.८५)
कुल-२००	१६५	३५
	(८२.५)	(१७.५)

सारणी संख्या १४ से यह स्पष्ट हो जाता है कि अधिकांश उत्तरदाताओं अर्थात ८२.५ प्रतिशत को एड्स के बारे में पूरी जानकारी थी, जबकि १७.५ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यह माना कि एड्स के बारे में उन्हें किसी प्रकार की कोई जानकारी उपलब्ध नहीं थी।

सारणी संख्या -१५

आयु के आधार पर एड्स के खतरे के बारे मे उत्तरदाताओ के मत

आयु समूह	परिवार	मित्र	मदिरा	अज्ञानता
		से अलग	दबाव	सेवन
१५-२५	८२	२७	३२	३५
	(५०.९३)	(५०.९४)	(५१.६१)	(५३.०३)
२६-३५	५४	१८	२०	२२
	(३३.५४)	(३३.९६)	(३२.२५)	(३३.३३)
३६-४५	२२	०७	०८	०७
	(१३.६६)	(१३.२०)	(१२.९०)	(१०.६०)
४६ से ऊपर	०३	०१	०२	०२
	(१.८६)	(१.८८)	(३.२२)	(३.०३)
कुल	१६१	५३	६२	६६

सारणी संख्या १५ से यह स्पष्ट है कि ८०.५ प्रतिशत उत्तरदाता १५ से ४६ वर्ष के थे, जिन्होंने स्वीकार किया कि एच.आई.वी वायरस के फैलने की संभावना परिवार से अलग होने के कारण बढ़ जाती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि परिवार से अलग रहने वाले प्रवासी मजदूरों में ना केवल एड्स वायरस से संक्रमित होने के खतरें ज्यादा होते हैं बल्कि शराब तथा मित्रों के दबाव के कारण और भी गलत आदतें जिनमें मदिरा सेवन, नशे की दवाई लेना आदि से भी बढ़ जाते हैं। इस प्रकार परिवार से अलग रहने की मजबूरी तथा अज्ञानता को अधिकांश उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया कि ये संक्रमित वायरस को फैलाने में प्रमुख कारक तत्व होते हैं।

निष्कर्ष : उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो

जाता है कि गैर सरकारी संगठन के संपर्क में आने से प्रवासी मजदूरों में एड्स वायरस के बारे में काफी जागरूकता आई है।प्रवासी मजदूर गैर-सरकारी संगठन के कार्यकर्ताओं को अपने विश्वास में लेकर लैंगिक विसंगतियों के बारे में खुलकर बात करते हैं। संभवतः इसीलिए प्रवासी मजदूरों को एड्स की बीमारी से हुए खतरे के बारे में पूरी जानकारी होती है। परन्तु अकेलापन और युवा वर्ग में लैंगिक विसंगति का कारण परिवार से दूर और दोस्तों के बीच रहना भी होता है जिसके कारण जानकारी होने के बावजूद प्रवासी मजदूर इस बात को स्वीकार करते हैं कि असुरक्षित यौन सम्बन्ध तथा समलैंगिक सम्बन्ध के कारण एड्स का खतरा बढ़ जाता है।

प्रवासी मजदूरों के ज्ञान का स्रोत गैर-सरकारी संगठन के सम्पर्क में आने से निश्चित रूप से बढ़ा है। इस जानकारी को प्राप्त करने के स्तर का आकलन शैक्षणिक स्तर, आयु तथा प्रवसन की अवधि से जोड़कर भी किया गया है। जो आंकड़े इन कारक तत्वों से जोड़कर एकत्रित किये गए हैं, उनसे प्रवासी मजदूरों के एड्स के बारे में जानकारी के स्तर का पता चलता है। ज्यादातर युवावर्ग तथा निरक्षर लोगों में एड्स के प्रति जागरूकता का स्तर कम मिला। यद्यपि गैर-सरकारी संगठन के प्रयास से उन्हें इस बीमारी के बारे में यह तो पता चला कि इस बीमारी का कोई सफल इलाज नहीं है। इसलिए लैंगिक व्यवहार को नियंत्रित कर ही इस बीमारी से बचा जा सकता है परन्तु प्रवासी मजदूरों की जो स्थिति है या जिन हालात में वो दूसरी जगह जाकर मजदूरी करते हैं उनमें एकाकीपन व्याप्त होता है, जिसके कारण जानकारी होने के बावजूद वे अपने लैंगिक व्यवहार को नियंत्रित नहीं कर पाते। संभवतः इसी आशंका से वे गैर-सरकारी संगठन की मदद से इसके उपचार के तरीके के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए उनके द्वारा बुलाई गई कार्यशालाओं में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाते हैं।

सारणीबद्ध आंकड़ों के विश्लेषण से एक और महत्वपूर्ण जानकारी मिली कि संक्रमित सूई के इस्तेमाल से भी यह वायरस खतरनाक रूप से फैलता है परन्तु दवा व्यवसन से इस बीमारी के फैलने की जानकारी उन्हें कम थी। इसी प्रकार मां के द्वारा दूध पिलाने से बच्चों में यह रोग फैल सकता है, इसकी जानकारी भी उनकी सोच का हिस्सा नहीं थी। गैर-सरकारी संगठन कर्मियों ने यह स्वीकार किया कि अधिकांश प्रवासी मजदूरों में पेशेवर लैंगिक संबंध बनाए रखने तथा समलैंगिक संबंध बनाने वालों में एक प्रकार का भय व्याप्त होता है जिसके कारण अपने लैंगिक संबंध के बारे में सारी बातें गोपनीय रखने का निवेदन करते है।इससे यह भी पता चलता है कि अधिकांश प्रवासी मजदूर लोकलाज तथा बदनामी की वजह से अपने घर वालों तथा मित्रों को भी अपनी बात नहीं बताते हैं। जरूरत इस बात की है कि गैर सरकारी संगठन को इस जागरुकता अभियान को पूरी संवेदनशीलता के साथ चलाने के लिए सरकार प्रोत्साहित करें, ताकि इस समस्या को दूर कर संक्रमित लोगों को जो इसका इलाज का खर्च वहन नहीं कर सकते है उन्हें सरकारी सहायता के द्वारा इलाज की सुविधा भी उपलब्ध कराई जाए नहीं तो एड्स के लक्षण पर पूर्ण रुप से नियंत्रण पाना काफी कठिन हो जाएगा। उम्मीद है कि समय रहते सरकार इसे गंभीरता से लेगी और प्रवासी मजदूरों को एच.आई.वी. वायरस फैलाने का अवसर या खुली छूट नहीं देगी।

सन्दर्भ

1. Naraian,J.P., 'AIDS in Asia Challenge Ahead', Sage Publications, New Delhi, 2004, p. 19.
2. Mckee,Neill, Janet Bertrand, Antje, Becker Benton, 'Strategic Communication in the HIV / AIDS Epidemic', Sage Publication, New Delhi, 2004, p. 23
3. Mishra,R.C., 'HIV / AIDS Education', APH Publishing Corporation, New Delhi, 2009, p. 271.
4. 21 Contact HIV after quack reuses syringe, The Hindu, Feb. 7, 2018, p 10.
5. Rashid Omar - '10 doctor blamed for spurt in HIV case had a long queue of patients', 'The Hindu', Feb. 8, 2018, p.7.
6. Omar, Rashid- 'Quack not sole reason for Unnao HIV Spike', 'The Hindu', February 9, 2018, p. 7.
7. Free viral load testing a year for HIV +ve, 'The Tribune', February 27, 2018, p. 7.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 20 अंक 1, जनवरी-जून 2018
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

किसानों की आय 2022 तक दोगुनी करने के लिए प्रधानमंत्री की सात सूत्रीय कार्ययोजना का संकल्पनात्मक एवं क्रियात्मक स्वरूप

❑ डॉ० गजवीर सिंह
❖ डॉ० श्वेता चौधरी

सन २०२२ अर्थात देश की स्वतंत्रता के ७५ वें वर्ष तक किसानों की आय दोगुनी करने के लिए प्रधानमंत्री जी की सात सूत्रीय कार्य योजना एक अतिशय महत्वाकांक्षी योजना है। यदि किसान इस कार्य योजना के सभी सूत्रों/घटकों को अपनाए साथ ही कृषि में नवीनीकरण, विवेकशीलता और प्रौद्योगिकी के प्रयोग करें तो निश्चित ही अपनी आय दोगुनी कर सकते हैं, जिससे कृषि का विकास होगा, किसान का विकास होगा, गाँव का विकास होगा, समाज का विकास होगा तथा देश का विकास होगा। प्रस्तुत अध्ययन प्रधानमंत्री की इसी सात सूत्रीय कार्य योजना के संकल्पनात्मक स्वरूप तथा उसकी क्रियात्मक स्थिति के समाजशास्त्रीय विश्लेषण पर आधारित है।

“**अगर भारत** का भाग्य बदलना है तो गॉव से बदलने वाला है, किसान से बदलने वाला है और कृषि क्रांति से बदलने वाला है। हम लोग सालों से पीढ़ी-दर-पीढ़ी किसानी करते आ रहे हैं, बहुत कम किसान हैं जो नया प्रयोग करते हैं या कुछ नया करने का साहस करते हैं। हमारे सामने सबसे बड़ी चुनौती यही है कि हम हमारी किसानी को आधुनिक कैसे बनाएं, टेक्नोलॉजी युक्त कैसे बनाएं, हमारी युवा पीढ़ी जो आधुनिक आविष्कार कर रही है उन आधुनिक आविष्कारों को खेत तक कैसे पहुंचाएं, किसान के घर तक कैसे पहुंचाएं।”[१] १६ मार्च २०१६, को कृषि उन्नति मेले में व्यक्त प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी के ये उद्गार हमारे देश में खेती-किसानी के महत्व और उससे जुड़ी चुनौतियों का वर्णन करने की दृष्टि से अतिशय महत्वपूर्ण हैं।

हमारे देश में कृषि आज भी देश की अर्थव्यवस्था और उन्नति-प्रगति का आधार है, जबकि करोड़ों किसान इसके सूत्रधार- कर्णधार हैं। इसलिए कृषि के वैज्ञानिक विकास और किसानों की समृद्धि के बिना हम स्वस्थ, सम्पन्न, और सुखी भारत की कल्पना नहीं कर सकते। इस जाने-माने तथ्य के बावजूद वर्तमान सरकार ने जब मई-२०१४, में कार्यभार संभाला तो कृषि क्षेत्र अनेक कठिन चुनौतियों से गुजर रहा था। सिमटते-बिगड़ते प्राकृतिक आपदाओं का कहर, किसानों की लगातार गिरती आमदनी और युवाओं का खेतों से पलायन, चिंता के मुख्य विषय थे। कृषि विकास की कमजोर दर संकेत दे रही थी कि यदि कृषि क्षेत्र को जल्दी ही नहीं उभारा गया तो देश की खाद्य सुरक्षा संकट में फंस सकती है, और अर्थव्यवस्था भी डगमगा सकती है। इस गंभीर परिदृश्य में भारत सरकार ने कृषि क्षेत्र को प्राथमिकता देकर संकट से उबारने का नीतिगत निर्णय लिया। प्रधानमंत्री ने वर्ष २०१५ के स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर लाल किले की प्राचीर से ‘कृषि मंत्रालय’ का नाम बदलकर ‘कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय’ करने की घोषणा की। इस छोटे लेकिन अहम् बदलाव ने कृषि और किसानों को लेकर भारत सरकार की नयी सोच एवं इरादों को उजागर कर दिया। किसानों के आर्थिक उद्धार को अपनी जिम्मेदारी मानते हुए प्रधानमंत्री ने सन् २०२२ (देश की स्वतंत्रता के ७५ वें वर्ष) तक किसानों की आमदनी दोगुनी करने का लक्ष्य निर्धारित किया। यह एक बड़ा ऐतिहासिक और कठिन फैसला था, क्योंकि अभी तक कृषि विकास को किसानों की सकल आमदनी के साथ जोड़कर देखने की परम्परा नहीं थी। इस लक्ष्य ने कृषि विकास के दृष्टिकोण और रणनीति को पूरी तरह बदल दिया।[२]

❑ असोशिएट प्रोफेसर समाजशास्त्र, लाल बहादुर सिंह स्मारक महाविद्यालय गोहावर, बिजनौर (उ.प्र.)
❖ असोशिएट प्रोफेसर गृहविज्ञान, लाल बहादुर सिंह स्मारक महाविद्यालय गोहावर, बिजनौर (उ.प्र.)

वर्तमान सरकार ने २०१६-१७ के बजट में यह घोषणा की कि वह अगले छः वर्षों में यानी वर्ष २०२२ तक किसानों की आय दोगुनी करने के लिए प्रतिबद्ध है। इसी को दृष्टिगत रखते हुए प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने एक सात सूत्री कार्ययोजना तैयार की है जिससे किसानों की आय वर्ष २०२२ तक दोगुनी करने का लक्ष्य हासिल किया जा सके।[३] यह सात सूत्री कार्ययोजना निम्नलिखित है[४] -

:- सिंचाई को विशेष महत्व देते हुए 'प्रति बूँद, अधिक उपज' के अभियान को पूरे देश में लागू करना।

:- किसानों को उचित कीमत और सही समय पर बेहतर गुणवत्ता वाले बीज उपलब्ध कराना और खेत की मिट्टी की दशा के अनुसार पोषक तत्वों की आपूर्ति करना।

:- कटाई-उपरान्त और भण्डारण के दौरान होने वाले नुकसान को कम करने के लिए प्रशीतन श्रृंखलाओं और भंडार गृहों के विकास में पर्याप्त निवेश की व्यवस्था।

:- खाद्य प्रसंस्करण द्वारा कृषि उत्पादों का मूल्यवर्धन।

:- देश की सभी प्रमुख कृषि मंडियों को आपस में जोड़ते हुए इलेक्ट्रॉनिक यानी डिजिटल बाजार मंच की सुविधा विकसित करना।

:- नई और बेहतर फसल बीमा योजना लागू करके किसानों की आजीविका को सुरक्षित बनाना।

:- मुर्गी पालन, मधुमक्खी पालन और मछली पालन जैसे सहायक उद्यमों को बढ़वा देने के लिए नयी नीतियों का विकास।

प्रधानमंत्री की सात सूत्री कार्ययोजना में **पहला सूत्र** 'प्रति बूंद, अधिक उपज,' के उद्देश्य को लेकर बड़े पैमाने पर निवेश के साथ सिंचाई पर ध्यान देना है। 'हर खेत को पानी' का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए पांच वर्षो में पचास हजार करोड़ का निवेश किया जाएगा। बजट २०१७-१८ में दीर्घकालिक सिंचाई कोष को १०० प्रतिशत बढ़ाकर ४०,००० करोड़ रुपये किया गया। सूक्ष्म सिंचाई के लिए 'प्रति बूँद अधिक फसल' के अन्तर्गत २०१४-१७ के दौरान १५.८६ लाख हेक्टेयर भूमि को इसके अन्तर्गत लाया गया।[५]

दूसरा सूत्र किसानों को उचित कीमत और सही समय पर बेहतर गुणवत्ता वाले बीज उपलब्ध कराना और खेत की मिट्टी की दशा के अनुसार पोषक तत्वों की आपूर्ति कराना है, ताकि किसान अपनी सीमित भूमि से ही अधिक उत्पादकता प्राप्त कर सके। २०१८ तक सभी किसानों को मृदा स्वास्थ्य कार्ड जारी करने का लक्ष्य रखा गया। अभी तक ६.६३ करोड़ मृदा स्वास्थ्य कार्ड जारी किये गये, २५ अप्रैल २०१७ तक मिट्टी के २.८० करोड़ नमूनों का संग्रह किया गया। २०१४-१७ के बीच ८५७२ मिनी लैबों सहित ९०६३ मृदा परीक्षण प्रयोगशालाए मंजूर की गईं, जबकि २०११-१४ के दौरान इसकी संख्या मात्र १५ थी।[६]

तीसरा सूत्र है 'भंडारण सुविधा'। फसल की पैदावार प्राप्त होने के बाद किसानों को उसके भण्डारण की समस्या आती है। इसी परिप्रेक्ष्य में प्रधानमंत्री ने अपने सात-सूत्री कार्यक्रम में भण्डारण गृह, कोल्डचेन और भण्डारण सुविधाओं पर भी बड़े पैमाने पर निवेश करने की योजना बनायी है। नई सोच के साथ खाद्य प्रसंस्करण मंत्रालय देश में राष्ट्रीय कोल्डचैन ग्रिड का निर्माण कर रहा है ताकि सभी खाद्य उत्पादक केन्द्रों को शीत भण्डारण और प्रसंस्करण उद्योग से जोड़ा जा सके। मंत्रालय ने पूरे देश में फैली १०१ नई एकीकृत कोल्डचैन परियोजनाओं को मंजूरी दी है। ये परियोजनाएं फलों और सब्जियों, डेयरी, मछली, मांस, समुद्री उत्पाद, मुर्गी उत्पाद, खाने के लिए तैयार/पकाने के लिए तैयार खाद्य पदार्थो के लिए है। इस प्रयास से भी प्रधानमंत्री की ओर से किसानों की आय को दोगुनी करने के मिशन को प्राप्त करने में मद्द मिलेगी।[७]

चौथा सूत्र है खाद्य प्रसंस्करण द्वारा कृषि उत्पादों का मूल्य वर्द्धन। खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र प्रतिवर्ष ८ प्रतिशत की दर से बढ़ रहा है। खाद्य प्रसंस्करण मंत्रालय के लिए २०१७-१८ वर्ष के लिए बजट ७१५ करोड़ रूपये की तुलना में वर्ष २०१८-१९ में दोगुना कर १४०० करोड़ कर दिया गया। टमाटर, आलू, प्याज के उत्पादकों के लिए 'आपरेशन ग्रीन' प्रारंभ किया जा रहा है, जिसमें भंडारण, प्रसंस्करण, विपणन की सुविधाएं किसानों को उपलब्ध होंगी। यदि यह आपरेशन सही दिशा मे दिल्ली से निकलकर गांव तक वास्तविकता में उतर जाता है तो इन फसलों के किसानों को निश्चित लाभ होगा। प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ को राष्ट्रीय स्तर पर बेचने के

लिए केन्द्र सरकार राष्ट्रीय कृषि बाजार प्रणाली विकसित कर रही है। केन्द्रीय खाद्य प्रौद्योगिकी अनुसंधान संस्थान मैसूर तथा राष्ट्रीय पोषण संस्थान हैदराबाद जैसे १५ संस्थान फल व सब्जियों और दूसरे खाद्य पदार्थों के प्रसंस्करण पर शोध एवं प्रशिक्षण कार्य कर रहे हैं। देश के सभी राज्यों में **कृषि व बागवानी** विश्वविद्यालयों में भी खाद्य प्रसंस्कारण के क्षेत्र में पाठ्यक्रम संचालित किया जा रहा है। खाद्य प्रसंस्करण प्रक्रिया में फल व सब्जियों का मूल्य बढ़ जाता है अर्थात् आलू, टमाटर जैसी सब्जियाँ जोकि खुले बाजार में यदि १०-१५ रूपये प्रति किलो की दर से बेची जाती है जिनको सामान्य तापक्रम पर अधिक समय तक सुरक्षित नहीं रखा जा सकता है। खाद्य प्रसंस्करण द्वारा प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ के मूल्य में तीन से चार गुना तक की वृद्धि हो जाती है तथा इसे सामन्य तापक्रम पर लम्बी अवधि तक सुरक्षित भी रखा जा सकता है।[८]

पांचवा सूत्र सभी प्रमुख कृषि मंडियों को जोड़ते हुए इलेक्ट्रॉनिक डिजिटल बाजार मंच विकसित करना। बिचौलियों के चलते अच्छी पैदावार के बावजूद किसान तक उसका दाम नहीं पहुंच पाता। इस स्थिति से निपटने के लिए प्रधानमंत्री ने १४ अप्रैल २०१६, को एकीकृत राष्ट्रीय कृषि बाजार (ई-नाम) की स्थापना को अपनी सात सूत्री कार्ययोजना में स्थान दिया है। १३ राज्यों में ४१७ मंडियां सीधे ई-नाम प्लेटफार्म से जुड़ चुकी हैं। प्रत्येक मंडी को ई-नाम के ढांचे की स्थापना के लिए ७५ लाख रुपये राशि आवंटित की गयी। ४१.६१ लाख से भी अधिक किसान और ८६,३१२ व्यापारी इस प्लेटफार्म पर पंजीकृत हैं। २४ अप्रैल २०१७, तक १६,६१६.८१ करोड़ रुपये मूल्य के कृषि उत्पादों का लेन-देन ई-नाम प्लेटफार्म पर हो चुका है।[९]

सात-सूत्री कार्य योजना में छठा महत्वपूर्ण सूत्र किसानों की आर्थिक सुरक्षा के लिए प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना के माध्यम से आपदा प्रबंधन का प्रयास करना है जिससे प्राकृतिक आपदा की स्थिति में किसान ऋण के बोझ में दबकर तनाव की स्थिति में आत्महत्या का विचार मन में न लाए और अपने परिवार का भरण-पोषण कर सकें। अगले २ से ३ साल में फसल बीमा कवरेज को २० प्रतिशत से बढ़ाकर ५० प्रतिशत करने की योजना है। खरीफ २०१६ के दौरान २३ राज्यों में इसका कार्यन्वयन, ३,६० करोड़ किसानों ने पॉलिसी ली और १,४१,८८३.३० करोड़ रुपये की बीमा राशि का बीमा हुआ। रवि २०१६-१७ के दौरान अब तक १.६७ करोड़ किसानों ने ७१७२८.५६ करोड़ रुपये की बीमा राशि का बीमा कराया।[९]

सातवा सूत्र सहायक उद्यमों को बढ़ावा देना है। प्रधानमंत्री की सात सूत्री कार्य योजना में सरकार ने खेती-किसानी से इतर किसानों में उद्यमिता जागृत करने के उपायों को भी बढ़ावा दिया है। पशुपालन, मत्स्यपालन और मधुमक्खी पालन जैसी कई योजनाओं ने किसानों की आय में अतिरिक्त आमदनी का योग किया है। डेयरी उद्योग का विकास भी अन्ततः किसानों को लाभ पहुचा रहा है।[११]

प्रधानमन्त्री फसल बीमा योजना, प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना, मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना, नीम की परत वाले यूरिया जैसी कृषि क्षेत्र की योजनाओं, न्यूनतम समर्थन मूल्य में बृद्धि जैसे कदमों ने मानसून की अनिश्चिताओं के बीच भी हमारे देश के किसानों को अच्छी स्थिति में रखा है।[१२]

प्रधानमंत्री की सात सूत्री कार्य योजना के अतिरिक्त कृषि एवं किसान कल्याण के उद्देश्य से किसानों के लिए प्रमुख मोबाइल एप की शुरूआत की गई। जैसे-

:- **किसान सुविधा मोबाइल एप**- किसान सुविधा मोबाइल एप, १६ मार्च, २०१६ को जारी किया गया जो किसानों को मौसम, कीमत, बीज, उर्वरक, कीटनाशक आदि की जानकारी देता है, साथ ही, इस एप से कृषि वैज्ञानिकों से राय भी ली जा सकती है।

:- **एग्रीमार्केट मोबाइल एप** - ५० किमी के दायरे में आने वाले बाजारों में फसलों की कीमत के बारे में जानकारी देने के लिए।

:- **फसल बीमा मोबाइल एप** - इस एप से किसान अपनी फसल बीमा से सम्बन्धित जानकारी के साथ कबरेज एवं अधिसूचित फसल हेतु प्रीमियम की गणना कर सकते हैं।

:- **पूसा कृषि मोबाइल एप** - यह एप भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा द्वारा विकसित फसलों की उन्नत किस्मों तथा नई प्रौद्योगिकियों की जानकारी देता है।

:- **भुवन हैल्स्टॉर्म मोबाइल एप** - इस एप से ओलावृष्टि से प्रभावित क्षेत्र के चित्रों को अपलोड कर सकते है।[13]

कृषि विज्ञान के क्षेत्र में ई-चौपाल केन्द्रों की भी स्थापना हो रही है। देश के अनेक भागों में हजारों से अधिक ई-चौपाल केन्द्र आवश्यक जानकारी देकर कृषि और किसानों के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं, ये केन्द्र इन्टरनेट के माध्यम से किसानों को टिकाऊ खेती, मधुमक्खी पालन, मंडी भाव व बागवानी आदि से सम्बन्धित सभी जानकारियां उपलब्ध करा रहे हैं। इसमें कोई सन्देह नही है कि इन्टरनेट के प्रसार से महत्वपूर्ण सूचनाओं की किसानों तक पहुंच हुई है। इंटरनेट किसानों, वैज्ञानिकों और सरकार के मध्य सम्पर्क सेतु का कार्य करता है, इसके माध्यम से सरकारी योजनाओं और कृषि अनुसंधान संबंधी महत्वपूर्ण सूचनाएं सीधे तौर पर किसानों तक पहुचती हैं।[14] कृषकों एवं ग्रामीण उद्यमियों के हितों को ध्यान में रखते हुए बैंकों द्वारा कृषि ज्ञान केन्द्रों की स्थापना की गयी है, इन केन्द्रों का प्रमुख कार्य कृषि से जुड़े व्यक्तियों को कृषि के क्षेत्र में विश्व स्तर पर दिन-प्रतिदिन हो रहे परिवर्तनों जैसे क्रोपिंग पैटर्न, सुधारित बीज, फर्टिलाइजर, कीटनाशक, नवीन तकनीक, जलवायु की जानकारी, फसल की किस्म, तथा गुणवत्ता में सुधार के उपाय आदि से सम्बंधित जानकारी दी जायेगी, ताकि उत्पादकता में बृद्धि हो एवं कृषक अधिक आय अर्जित करके अपने पैरो पर खड़े हो सकें।[15]

लेकिन इतना सब होने के बाद भी यहां कई प्रश्न खड़े होते हैं- किसानों से लगातार रिकार्ड पैदावार लेते रहने के बाद भी क्या देश उन्हें उनकी उपज का उचित मूल्य दे पा रहा है? क्या किसानों की आय वढ़ाने के पर्याप्त उपाय हुए है? क्या किसान मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना का लाभ ले रहे हैं? क्या किसान प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना को पर्याप्त मान रहे हैं? क्या 'प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना' हर खेत को पानी देने के लक्ष्य को पूरा करने में कारगर सिद्ध हो रही है। इन सब स्थितियों के आलोक में एक आनुभाविक अध्ययन की आवश्यकता अनुभव की गई, प्रस्तुत अध्ययन इसी दिशा में एक प्रयास है।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत आनुभाविक अध्ययन उत्तर प्रदेश के जनपद बिजनौर के विकास खण्ड ऑकू (नहटौर) पर आधारित है जिसमें सोद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि द्वारा विकास खण्ड के तीन गॉवों (नन्हेड़ा, बालापुर और धनुपुरा) का चयन करते हुए कुल १५० अध्ययन इकाइयों (प्रत्येक गॉव से ५० किसानों) को अध्ययन में सम्मिलित किया गया है। तत्पश्चात् अध्ययन इकाइयों (किसानों) से साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से तथ्यों का संकलन किया गया है। उसके बाद तथ्यों के वर्गीकरण व सारणीयन के साथ उनका सांख्यिकीय विश्लेषण करके निष्कर्ष प्राप्त किये गये हैं।

प्रस्तुत शोध प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों ही प्रकार के तथ्यों पर आधारित है। प्राथमिक तथ्यों के संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची को आधार बनाया गया है तथा द्वितीयक तथ्यों हेतु पुस्तकालय, शासकीय प्रतिवेदन, संचालित योजनाओं, सम्बन्धित शोध, इंटरनेट, समाचारपत्र एवं पत्रिकाओं आदि का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य -

१. सात सूत्री कार्य योजना के प्रति किसानों की जागरूकता एवं दृष्टिकोण का अध्ययन करना।
२. 'प्रधानमंत्री कृषि सिचाई योजना' से लाभान्वित हो रहे किसानों की स्थिति का अध्ययन करना।
३. 'प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना' का किसानों के लिए आपदा प्रबंधन, आर्थिक संरक्षण के रूप में अध्ययन करना।
४. शोधित बीजों एवं मृदा स्वास्थ्य कार्ड की उपलब्धता का अध्ययन करना।
५. भण्डारण सुविधाओं के लाभ एवं उत्पादित फसल के समुचित मूल्य की उपलब्धता का अध्ययन करना।

उपकल्पनाऐें-

१. प्रधानमंत्री के सात सूत्री कार्य योजना में अधिकांश किसान जागरूक होकर रूचि ले रहे हैं।
२. 'प्रधानमंत्री कृषि सिचाई योजना' का किसान लाभ ले रहे हैं।
३. 'प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना' किसानों के लिए आर्थिक सुरक्षा कवच सिद्ध हो रही है।
४. किसानों को बुआई के लिए शोधित बीज और मृदा

स्वास्थ्य कार्ड के द्वारा मिट्टी के पोषक तत्वों का ज्ञान हो रहा है।

५. अधिकांश किसान भण्डारण सुविधाओं (कोल्ड स्टोर) एवं उत्पादित फसल के समुचित मूल्य का लाभ ले रहे हैं।

विश्लेषण : अध्ययन से सम्बंधित उद्देश्यों को ज्ञात करने एवं उपकल्पना की जांच करने के लिए सबसे पहले सारणी संख्या -०१ में अध्ययन इकाइयों (किसानों) से किसानों की आय २०२२ तक दोगुनी करने के सम्बन्ध में प्रधानमंत्री की सात सूत्री कार्य योजना के बारे में जागरूकता को जानने का प्रयास किया गया है।

सारणी संख्या-०१

किसानों की आय २०२२ तक दोगुनी करने हेतु 'प्रधानमंत्री की सात सूत्री कार्य योजना' की जानकारी

गॉव	पूर्ण जानकारी है (संख्या/प्रतिशत)	आंशिक रूप से जानकारी है (संख्या/प्रतिशत)	बिलकुल जानकारी नहीं है (संख्या/प्रतिशत)	योग (संख्या/प्रतिशत)
बालापुर	१८(१२.००)	१६(१२.६६)	१३(८.६६)	५०(३३.३३)
नन्हेड़ा	१५(१०.००)	२३(१५.३३)	१२(८.००)	५०(३३.३३)
धनुपुरा	१४(६.३३)	२१(१४.००)	१५(१०.००)	५०(३३.३३)
योग	४७(३१.३३)	६३(४१.६६)	४०(२६.६६)	१५०(६६.६६)

सारणी संख्या ०१ के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ३१.३३ प्रतिशत सूचनादाता ऐसे हैं जो प्रधानमंत्री की सात सूत्री कार्य योजना के बारे में पूर्णतः जानकारी रखते हैं जिनमे सबसे अधिक सूचनादाता (१२ प्रतिशत) बालापुर गाँव से हैं। समग्र में २६.६६ प्रतिशत सूचनादाता इस कार्ययोजना से बिल्कुल परिचित नहीं हैं, जिसमें सबसे अधिक सूचनादाता (१० प्रतिशत) धनुपुरा से है। अध्ययन के अंतर्गत ४१.६६ प्रतिशत सूचनादाता प्रधानमंत्री की सात सूत्री कार्ययोजना के बारे में आंशिक रूप से जानकारी रखते हैं जिनमे सबसे अधिक (१५.३३ प्रतिशत) सूचनादाता ग्राम नन्हेड़ा से है। अतः किसानों की आय दोगुनी करने की प्रधानमंत्री की सात सूत्री कार्य योजना के प्रति किसान एक दूसरे को देखकर धीरे-धीरे जागरूक हो रहे हैं।

प्रधानमंत्री की सात सूत्री कार्ययोजना की एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना है जिसमें प्रतिबून्द अधिक उपज सुनिश्चित करने के लिए सूक्ष्म सिंचाई योजना को लोकप्रिय बनाने पर जोर दिया जा रहा है। सारणी संख्या-०२ अध्ययन क्षेत्र में 'प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना' की वास्तविक स्थिति को प्रदर्शित करती है।

सारणी संख्या-०२

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना से लाभ

	बालापुर (संख्या/प्रतिशत)	नन्हेड़ा (संख्या/प्रतिशत)	धनुपुरा (संख्या/प्रतिशत)	योग (संख्या/प्रतिशत)
हॉ	३३(२२.००)	३६(२४.००)	३६(२६.००	१०८(७२.००)
नही	१७(११.३३)	१४(६.३३)	११(७.३३)	४२(२८.००)
योग	५०(३३.३३)	५०(३३.३३)	५०(३३.३३)	१५०(१००.००)

सारणी संख्या-०२ के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में कुल ७२ प्रतिशत सूचनादाता ऐसे हैं जो 'प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना' 'प्रति बून्द अधिक उपज' का लाभ ले रहे हैं जिसमें सबसे अधिक (२६ प्रतिशत) सूचनादाता ग्राम धनुपुरा से और सबसे कम (२२ प्रतिशत) सूचनादाता बालापुर से हैं जबकि

२८ प्रतिशत सूचनादाता ऐसे हैं जो कि इस योजना का लाभ नहीं ले पा रहे हैं या फिर उन्हें आवश्यकता नहीं है जिनमें सबसे कम (७.३३ प्रतिशत) सूचनादाता धनुपुरा से और सबसे अधिक (११.३३ प्रतिशत) बालापुर से है।

१३ जनवरी २०१६, को मंत्रिमंडल द्वारा अनुमोदित 'प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना' को अधिकाधिक किसान हितैषी बनाने का प्रयास सरकार द्वारा किया गया है जो कि किसानों को आपदा प्रबंधन से किसानों को आर्थिक सुरक्षा/संरक्षण देने का कार्य करेगी। सारणी संख्या-०३ में सूचनादाताओं से 'प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना' के महत्व को जानने का प्रयास किया गया।

सारणी संख्या-०३

'प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना' किसानों के लिए आर्थिक सुरक्षा का सही प्रयास

	बालापुर (संख्या/प्रतिशत)	नन्हेड़ा (संख्या/प्रतिशत)	धनुपुरा (संख्या/प्रतिशत)	योग (संख्या/प्रतिशत)
एक बहुत सही कदम है	२८(१८.६६)	२९(१९.३३)	२७(१८.००)	८४(५६.००)
पर्याप्त नहीं है	१८(१२.००)	१७(११.३३)	१६(१०.६६)	५१(३४.००)
सही कदम नहीं हैं	०४(२.६६)	०४(२.६६)	०७(४.६६)	१५(१०.००)
योग	५०(३३.३२)	५०(३३.३२)	५०(३३.३२)	१५०(१००.००)

'प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना' के महत्व के संबंध में सूचनादाताओं की राय से संबंधित सारणी संख्या-०३ से स्पष्ट होता है कि अधिकांश (५६ प्रतिशत) सूचनादाता इस प्रयास को किसानों के लिए आर्थिक संरक्षण देने का एक बहुत सही कदम मान रहे हैं जिसमे सबसे अधिक (१९.३३ प्रतिशत) सूचनादाता नन्हेड़ा से हैं। संपूर्ण में (१० प्रतिशत) सूचनादाता ऐसे हैं जो इस योजना को बिल्कुल सही नहीं मान रहे हैं जिसमें सबसे अधिक (४. ६६ प्रतिशत) ग्राम धनुपुरा से हैं। सारणी के अध्ययन से एक तथ्य यह भी स्पष्ट होता है कि ३४ प्रतिशत सूचनादाता ऐसे हैं जो इस प्रयास को सही तो मान रहे हैं लेकिन पर्याप्त नहीं मान रहे हैं उनके अनुसार इसमें अभी और सुधार की आवश्यकता है जिसमें सबसे अधिक (१२ प्रतिशत) ग्राम बालापुर से है।

किसानों की आय दोगुनी करने के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण प्रयास शोधित बीजों (क्वालिटी बीजों) और मृदा स्वास्थ्य कार्ड (भूमि में पोषकों की उपलब्धता) के लिए भी किया जा रहा है। अतः अध्ययन में यह भी जानने का प्रयास किया गया कि क्या किसानों की बुआई के लिए शोधित बीज पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो रहे हैं और उनकी भूमि के पोषक तत्वों की जांच हो पा रही है।

सारणी संख्या-०४

शोधित बीजों तथा मृदा स्वास्थ्य कार्डों की उपलब्धता

शोधित बीज की उपलब्धता				
	पर्याप्त उपलब्ध	कम उपलब्ध	बिल्कुल उपलब्ध नहीं	योग
बालापुर	३६(२४.००)	११(७.३३)	०३(२.००)	५०(३३.३३)
नन्हेड़ा	३२(२१.३३)	१४(९.३३)	०४(२.६६)	५०(३३.३३)
धनुपुरा	२९(१९.३३)	१३(८.६६)	०८(५.३३)	५०(३३.३३)
योग	९७(६४.६६)	३८(२५.३३)	१५(१०.००)	१५०(९९.९८)

मृदा स्वास्थ्य कार्ड तथा पोषक तत्वों की उपलब्धता				
बालापुर	१३(८.६६)	२१(१४.००)	१६(१०.६६)	५०(३३.३३)
नन्हेड़ा	११(७.३३)	२०(१३.३३)	१६(१२.६६)	५०(३३.३३)
धनुपुरा	१०(६.६६)	१८(१२.००)	२२(१४.६६)	५०(३३.३३)
योग	३४(२२.६६)	५९(३९.३३)	५७(३७.९८)	१५०(९९.९९)

सारणी संख्या-०४ से सुस्पष्ट होता है कि अधिकांश (६४.६६ प्रतिशत) सूचनादाता ऐसे हैं जिन्हें शोधित बीज उपलब्ध हो रहे हैं जिससे फसल का उत्पादन बढ़ रहा है, जबकि १०.०० प्रतिशत सूचनादाता ऐसे हैं जिन्हें शोधित बीज बिल्कुल भी उपलब्ध नहीं हो पा रहे हैं, इसके साथ ही २५.३३ प्रतिशत किसान ऐसे हैं जिन्हें शोधित बीज उपलब्ध तो हो रहे हैं लेकिन आवश्यकता से कम उपलब्ध हो रहे हैं।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड तथा भूमि के लिए पोषक तत्वों की उपलब्धता संबंधी तालिका का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि मात्र २२.६६ प्रतिशत सूचनादाता ऐसे हैं जिन्हें मृदा स्वास्थ्य कार्ड मिलने के साथ-साथ भूमि के लिए पोषक तत्वों की सरकारी स्तर से उपलब्धता हो रही है, और ऐसे किसान अपनी फसल के उत्पादन में वृद्धि कर रहे हैं। जबकि ३७.९८ प्रतिशत सूचनादाता ऐसे हैं जिन्हें मृदा स्वास्थ्य कार्ड और भूमि के लिए पोषक तत्व उपलब्ध नहीं हो रहे हैं। इसके साथ ही ३९.३३ प्रतिशत सूचनादाताओं को मृदा स्वास्थ्य कार्ड एवं भूमि के लिए पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं हो रहे हैं।

अध्ययन में यह भी जानने का प्रयास किया गया कि भण्डारण सुविधाओं (कोल्ड स्टोर) के विस्तार और किसानों द्वारा उत्पादित फसल की बिक्री के साथ क्या उसका समुचित मूल्य किसानों को प्राप्त हो रहा है जो कि किसानों की आय दोगुनी करने के सात सूत्रों में एक प्रमुख घटक है। इससे संबंधित आंकड़े सारणी संख्या-०५ में प्रदर्शित हैं।

सारणी संख्या -०५

भण्डारण सुविधाओं का लाभ एवं फसल के उचित मूल्य से संतुष्टि

संस्तुष्टि की स्थिति	बालापुर (संख्या/प्रतिशत)	नन्हेड़ा (संख्या/प्रतिशत)	धनुपुरा (संख्या/प्रतिशत)	योग (संख्या/प्रतिशत)
पूर्णतः संतुष्ट	२९(१९.३३)	३१(२०.६६)	२७(१८.००)	८७(५८.००)
आंशिक संतुष्ट	१३(८.६६)	१२(८.००)	१५(१०.००)	४०(२६.६६)
संतुष्ट नहीं	०८(५.३३)	०७(४.६६)	०८(५.३३)	२३(१५.३३)
योग	५०(३३.३२)	५०(३३.३२)	५०(३३.३३)	१५०(९९.९९)

सारणी संख्या-०५ का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि अधिकांश (५८ प्रतिशत) सूचनादाता सरकार की भण्डारण सुविधाओं के लाभ और फसल के उचित मूल्य से संतुष्ट हैं जिनमें सबसे अधिक (२०.६६ प्रतिशत) सूचनादाता ग्राम नन्हेड़ा से हैं जबकि १५.३३ प्रतिशत सूचनादाता ऐसे हैं जो कि सरकार की भण्डारण सुविधाओं के लाभ एवं उत्पादित फसल के समुचित मूल्य से संतुष्ट नहीं हैं। सारणी से एक तथ्य यह भी उजागर होता है कि २६.६६ प्रतिशत सूचनादाता ऐसे हैं जो इस व्यवस्था से पूर्णतः संतुष्ट नहीं हैं, अतः वे भण्डारण सुविधाओं के लाभ और उत्पादित फसल के उचित मूल्य में और सुधार की मांग कर रहे हैं।

निष्कर्ष एवं सुझाव- शोध पत्र मे तथ्यों के उपर्युक्त संपूर्ण विश्लेषण के प्रकाश में यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि किसानों की आय २०२२ तक दो गुनी करने के लिए प्रधानमंत्री की सात सूत्री कार्य योजना के बारे में

किसान जागरूक होकर रूचि ले रहे हैं। प्रधानमंत्री कृषि सिचाई योजना का पात्र किसान लाभ लेकर प्रति बूंद अधिक उपज के महत्व को समझ रहे हैं। किसानों के लिए सबसे बड़ा जोखिम उसकी तैयार फसल पर किसी भी तरह के नुकसान से फसल नष्ट होने से बड़ी आर्थिक क्षति होती थी जिससे कई बार किसान कर्ज के बोझ में दब जाते है और आत्महत्या कर लेते हैं इसके लिए प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना कुछ हद तक आर्थिक सुरक्षा कवच के रूप में कार्य कर रही है। किसान अपने खेत की मिट्टी की जॉच कराकर उसमें पोषक तत्वों की पूर्ति करके शोधित बीजों की बुआई करके अधिक फसल उत्पादन लेने का प्रयास कर रहे हैं। अध्ययन में यह भी तथ्य उल्लेखनीय है कि बहुत से किसान आज भी भण्डारण सुविधाओं और उत्पादित फसल के समुचित मूल्यों से संतुष्ट नहीं हैं, आज भी कई किसान अपनी फसल को बिचौलियों के हाथ बेचने को मजबूर हैं जिससे उन्हें फसल का उचित मूल्य प्राप्त नहीं होता।

अध्ययन से प्राप्त तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में सात सूत्री कार्ययोजना को और अधिक सार्थक एवं लाभकारी बनाने के लिए कुछ सुझाव निम्नलिखित हैं -

:- सात सूत्री कार्य योजना का ग्रामीण स्तर पर सम्बन्धित विभाग के अधिकारियों एवं कर्मचारियों द्वारा और अधिक प्रचार प्रसार किया जाये।

:- जिला स्तर, तहसील स्तर और ब्लाक स्तर पर किसान एवं कृषि मेलों का आयोजन किया जाये।

:- प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना के अन्तर्गत और अधिक मदों जैसे बिजली के तार टूटने से फसल का जलकर नष्ट हो जाना को भी कवरेज किया जाए।

:- मृदा स्वास्थ्य कार्ड (मिट्टी की जॉच की सुविधा) को और अधिक सरल बनाकर उसके लिए पोषक तत्वों (जैसे- जिंक, सल्फर और नाइट्रोजन आदि) तथा शोधित बीजों को अधिक से अधिक किसान की पहुंच में लाने के प्रयास किये जायें।

:- भण्डारण सुविधाओं (कोल्ड स्टोर) का फसल की प्रकृति के अनुरूप अधिक विस्तार किया जाये तथा प्रत्येक फसल का समुचित मूल्य निर्धारित किया जाये, जिससे खाद्य फसलें, सब्जी और दूध जैसी वस्तुओं को किसानों द्वारा सड़कों पर फेंकने की स्थिति न आये।

:- किसान स्वयं भी कार्ययोजना के प्रति अपनी सहभागिता सुनिश्चित करते हुए अपनी आय दोगुनी करने के लिए निरन्तर सजग एवं प्रयासरत् रहें तथा सात सूत्री कार्ययोजना का लाभ उठाऐं।

सन्दर्भ

१. WWW.Krishiunnatimela2016.
२. सक्सैना, जगदीप, 'कृषि विकास और किसान कल्याण चुनौतियों से उपलब्धियों तक का सफर' कुरूक्षेत्र, वर्ष ६३, अंक ६, मई २०१७, पृ. १० ।
३. 'किसानों की आय बढ़ाने की दिशा में उठाये गए कदम' कुरूक्षेत्र, जून २०१७, वर्ष ६३, अंक ८, पृ. २८ ।
४. सक्सैना, जगदीप, पूर्वोक्त, पृ. १० ।
५. 'किसानों की आय बढ़ाने की दिशा में उठाये गए कदम' कुरूक्षेत्र, वर्ष ६३, अंक ८, जून-२०१७, पृ. २६ ।
६. वही पृ. २६ ।
७. यादव, चंद्रभान, 'बेहतर प्रबंधन से बदलेगी कृषि की तस्वीर, कुरूक्षेत्र, जून-२०१७, पृ. ३६-४० ।
८. तिवारी के.एन., 'कृषि विकास पर टिका ग्रामीण विकास', कुरूक्षेत्र, वर्ष ६४, अंक ८, जून २०१८, पृ. १८-१६ ।
६. 'किसानों की आय बढ़ाने की दिशा में उठाये गए कदम' पूर्वोक्त, पृ. २८ ।
१०. वही, पृ. २६ ।
११. प्रधान, नितिन, 'खेती-किसानी के वित्तपोषण के बेहतर तन्त्र से बढ़ेगी आमदनी' कुरूक्षेत्र, वर्ष ६३ अंक ८, जून-२०१७ पृ. ३७ ।
१२. नायडू, एम० वेंकैया, 'गाथा नए भारत की' योजना, वर्ष ६१, अंक ५, मई २०१७, पृ. ११ ।
१३. मधुसूदन, राजेन्द्र सिंह, 'फसल बीमाः आपदाओं के विरूद्ध आर्थिक सुरक्षा से बढ़ेगी कृषि आय' कुरूक्षेत्र, वर्ष ६३ अंक ८, जून-२०१७, पृ. ३५ ।
१४. शर्मा, अर्पिता, 'नवीनतम तकनीकों द्वारा कृषि विकास-२१ वीं सदी की एक महती आवश्यकता' प्रतियोगिता दर्पण, फरवरी २०१६, पृ. १११।
१५. श्रीवास्तव, संतोष, 'ग्रामीण क्षेत्र में वित्तीय समावेशन का महत्व एवं इसके लाभ' प्रतियोगिता दर्पण, अगस्त-२०१६, पृ. ७८।

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 20 अंक 1, जनवरी-जून 2018
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

कार्यरत महिलाओं में तनाव उत्पन्न करने वाली कार्यगत परिस्थितियाँ : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

❑ डॉ. रेनू प्रकाश

वर्तमान युग महिला सशक्तीकरण का युग माना जाता है। महिला सशक्तीकरण का सीधा संबंध महिलाओं की सामाजिक तथा आर्थिक स्वतंत्रता, स्वावलंबन तथा आत्मनिर्भरता से लगाया जा सकता है। वास्तव में आज महिलाएं केवल घर की चारदिवारी तक ही सीमित नहीं रह गयी हैं बल्कि घर के बाहर प्रत्येक क्षेत्र में अपनी एक स्पष्ट भागीदारी भी सुनिश्चित कर रही हैं। आज महिलाएं घर से बाहर निकल कर विभिन्न क्षेत्रों में अर्थोपार्जन करने के साथ-साथ अपने समस्त पारिवारिक दायित्वों का निर्वहन भी पूर्ण सफलता के साथ संपन्न कर रही हैं इसलिए उनकी परस्पर क्रिया का क्षेत्र काफी विस्तृत हो जाता है जिसके फलस्वरूप वे अपनी तुलना समाज में अन्य लोगों तथा कार्यस्थल के सहयोगियों के साथ करने लगती हैं। यदि वह स्वयं को उनकी तुलना में अभावग्रस्त समझती हैं तो उसके अंदर सापेक्ष अभावबोध की भावना आ जाती है। सामान्यतः परंपरागत रूप से महिलाओं की गृहणी की भूमिका को प्रमुख केंद्र माना जाता है। चूंकि कार्यरत महिलाओं को परिवार एवं कार्यालय दोनों ही स्थानों पर अपनी भूमिकाओं का निर्वाह करना होता है। इसलिए ऐसा माना जाता है कि उन्हें अपनी विभिन्न भूमिकाओं के मध्य भूमिका संघर्ष की स्थिति का सामना करना पड़ता है। परंपरागत समाजों के संदर्भ में ऐसी मान्यता रही है कि ऐसी व्यवस्था में महिलाओं का सदैव शोषण होता है अर्थात् एक महिला जो घर से बाहर निकल कर कार्य करती है उसे कई प्रकार के मानसिक तनावों से होकर गुजरना पड़ता है। कार्यगत परिस्थितियों में सापेक्ष अभावबोध, भूमिका संघर्ष तथा शोषण की स्थिति का सामना प्रायः सभी कार्यरत महिलाओं को करना पड़ता है, जो सर्वाधिक मानसिक तनाव उत्पन्न करता है। परंपरागत समाजों में महिला की परस्पर क्रिया का क्षेत्र सीमित था तब संभवतः महिलाएं मानसिक तनाव का सामना प्रायः नहीं करती थीं। परंतु वर्तमान समय में आधुनिकता, शिक्षा के बढ़ते सुअवसर तथा आर्थिक दबाव व आर्थिक आत्म-निर्भरता के कारण घर की चारदीवारी से बाहर निकल कर कार्य करना आवश्यक हो गया है। अतः ऐसी स्थिति में उपरोक्त तीनों स्थितियों का आना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है क्योंकि परिवर्तन तथा विकास की प्रक्रिया के साथ ही ये समस्याएं भी विकसित होने लगती हैं।

आधुनिक भारत में महिलाओं की प्रस्थिति तथा भूमिकाओं के बारे में प्रचलित परम्परागत मान्यताओं में तीव्र गति से परिवर्तन आ रहा है, जो स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर भी हो रहा है। अनेक ऐसे कारणों जिसमें मुख्य रूप से आधुनिकीकरण तथा शिक्षा के बढ़तें अवसरों ने महिलाओं को आर्थिक निर्भरता प्रदान की है। वर्तमान समय में महिलाओं द्वारा घर से बाहर निकल कर धनोपार्जन करना एक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में परिलक्षित हो रहा है, जिसमें महिलायें आर्थिक मजबूरीवश तो कार्य करती ही हैं साथ ही कई महिलायें एक उपयोगी और उच्चतर रहन सहन वाला सामाजिक जीवन जीने के लिए भी अनेक क्षेत्रों में कार्य करती हैं। अतः ऐसी स्थिति में एक महिला जो घर से बाहर निकल कर कार्य करती है उसे कई प्रकार के मानसिक तनावों से होकर गुजरना पड़ता है। कार्यगत परिस्थितियों में सापेक्ष अभावबोध, भूमिका संघर्ष तथा शोषण की स्थिति का सामना प्रायः सभी कार्यरत महिलाओं को करना पड़ता है, जो सर्वाधिक मानसिक तनाव उत्पन्न करता है। ऐसी स्थिति में उपरोक्त तीनों स्थितियों का आना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है क्योंकि परिवर्तन तथा विकास की प्रक्रिया के साथ ही ये समस्याएं भी विकसित होने लगती हैं।

अवधारणाओं का स्पष्टीकरण एवं साहित्य सर्वेक्षणः

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर, एस०एस०जे० परिसर, अल्मोड़ा, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

एक कार्यरत महिला का कार्यक्षेत्र चूंकि विस्तृत होता है। वह घर से बाहर जाकर कार्य करती है इसलिए विभिन्न व्यक्तियों के संपर्क में आने के कारण वह अपनी तुलना अन्य लोगों से करती है। यदि वह अपने को उनकी तुलना में अभावग्रस्त महसूस करती है तो उसके अंदर सापेक्ष अभावबोध की भावना आ जाती है, सापेक्ष अभावबोध समाज में पाए जाने वाली वह भावना है जो हमारे आपसी संबंधों के मध्य एक तनाव की स्थिति लाती है। सापेक्ष अभावबोध की अवधारणा सर्वप्रथम स्टाफर एवं उनके साथियों द्वारा द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान अपनी पुस्तक ''अमेरिकन सोल्जर'' में अमेरिकी सैनिकों के संदर्भ में प्रस्तुत की गई।''[१]

सापेक्ष अभावबोध की व्याख्या सामान्यतः संदर्भ समूह व्यवहार के परिप्रेक्ष्य में की जाती है। संदर्भ समूह शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम हाइमैन ने सन् १६४२ में अपनी पुस्तक ''द साइकोलॉजी आफ स्टेट्स'' में किया था। संदर्भ समूह की अवधारणा को विकसित करने में राबर्ट मर्टन का विशेष योगदान है। हाइमैन के अनुसार व्यक्ति के व्यवहार प्रतिमान और उसकी स्थिति का विश्लेषण केवल जिस समूह का वह सदस्य है के जान लेने से ही नहीं किया जा सकता। वास्तव में व्यक्ति अन्य समूहों जिन्हें वह अपना आदर्श मानता है और उनसे अपने व्यवहार की तुलना एवं मूल्यांकन करता है। साथ ही ये उसके व्यवहार पर अत्यधिक प्रभाव डालते हैं।[२]

इस संदर्भ में मर्टन का कहना है कि सामान्यतया संदर्भ समूह का उद्देश्य होता है- मूल्यांकन एवं आत्ममूल्यांकन की उन प्रक्रियाओं के निर्धारकों एवं परिणामों को व्यवस्थित करना जिनमें व्यक्ति एवं समूहों के मूल्यों अथवा मानकों को एक तुलनात्मक संदर्भ के रूप में लेता है।[३]

इस संदर्भ में इन्दिरा चौहान ने अपने अध्ययन में पाया कि ''एक कार्यालय में समान पदों में पदोन्नति के अवसरों में कमी, अधिकारियों द्वारा पक्ष लेने तथा बराबरी न होने के कारण समान पद के लोगों के संबंध काफी प्रभावित होते हैं।[४]

अतः सापेक्ष अभावबोध वह धारणा है जो व्यक्तियों या समूहों के मध्य तुलनात्मक दृष्टिकोण विकसित करती हैं। तुलना समान स्थिति या समान श्रेणी के व्यक्तियों अथवा ऐसे व्यक्तियों के साथ स्थायी संबंध हो भी सकते हैं और नहीं भी हो सकते हैं। दो या दो से अधिक भूमिकाओं के मध्य जब विरोधाभास की स्थिति उत्पन्न होती है तब भूमिका संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है। भूमिका संघर्ष की स्थिति तब उत्पन्न होती है जब व्यक्ति विभिन्न पद मर्यादाओं को धारण करके अपने जीवन में विरोधी भूमिकाओं का सामना करता है। एक कार्यरत महिला के संदर्भ में यदि भूमिका संघर्ष की स्थिति को देखा जाए तो उसका कार्यक्षेत्र घर तथा कार्यस्थल दोनों होने के कारण दोनों प्रकार की भूमिकाओं के उत्तरदायित्व का निर्वाह उसे अकेले करना पड़ता है अतः ऐसी स्थिति में भूमिका संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस संदर्भ में मृदुला का कथन है कि ''भारतीय समाज एक परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है जिसके कारण समाज में पारंपरिक और आधुनिक मूल्यों के बीच एक टकराव की स्थिति उत्पन्न हो गई है। विशेषकर समाज में महिलाओं को नई जिम्मेदारियों के कारण घर और बाहर दोहरी भूमिका का निर्वाह करना पड़ता है। परिवार की बढ़ती आवश्यकताओं के परिणामस्वरूप बढ़ते आर्थिक दबाव के कारण नौकरी करने को बाध्य होना पड़ता है।[५]

कार्यरत महिलाओं के समायोजन की समस्या के संदर्भ में कृष्णा चक्रवर्ती ने लिखा है कि अक्सर महिलाओं को यह कहते हुए पाया गया है कि एक कार्यरत महिला घर और बाहर के कार्यों का निर्वाह भली प्रकार से नहीं कर पाती उनको इन दोनों में से एक का चुनाव करना ही पड़ता है। अन्यथा कार्य करने की स्थिति में वैवाहिक और मातृत्व के रूप में सुखी रहना बहुत मुश्किल है। साथ ही एक महिला से ही धार्मिक कार्यों को संरक्षित और जारी रखने की उम्मीद की जाती है।[६]

महिलाओं की स्थिति तथा भूमिका में कई परिवर्तन तो आए हैं, परंतु इन परिवर्तनों में कोई भी संरचनात्मक या विचारात्मक परिवर्तन नहीं आए हैं। अतः यह स्थिति एक महिला के लिए विशेष रूप से कष्टकारी हो जाती

है, वह घर से बाहर कार्य तो अवश्य करती है परंतु साथ ही उन्हें परंपरागत स्त्रीत्व के प्रतिरूप में भी बंधना पड़ता है।[७]

शोषण एक सार्वभौमिक धारणा है, शोषण किसी भी व्यक्ति के साथ उसकी इच्छा के विरूद्ध कार्य करना या व्यवहार करना है। महिलाओं के संबंध में यदि शोषण की प्रक्रिया देखा जाए तो हमारे समाज में महिलाएं प्रत्येक क्षेत्र में प्राचीन काल से लेकर आज तक शोषण का शिकार हो रही हैं। डी० पाल के अनुसार ''सामाजिक और आर्थिक विकास में सहभागिता के बावजूद एक महिला का स्तर असंतोषजनक है। इसका प्रमुख कारण है हमारे समाज में महिला के प्रति सामाजिक व्यवहार मानव द्वारा बनाए गए नियम और सामाजिक चलन जो उसके निम्न स्तर, बुरे व्यवहार और उत्पीड़न के लिए जिम्मेदार हैं।[८]

संरचनात्मक हिंसा को Elise Bouldling परिवार के संरचनात्मक आदर्शों से जुड़ा मानती हैं। सांस्कृतिक आदर्श तथा मूल्य, साथ ही राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्थाएं एक विशेष समाज में निर्धारित करती हैं कि कौन हिंसा करेगा और कौन इसे सहेगा। समाज में कुछ व्यक्ति समाज की सुविधाओं से दूसरे के सापेक्ष अधिक वंचित रहते हैं। संरचनात्मक हिंसा से ही शारीरिक हिंसा की उत्पत्ति होती है। महिलाएं दोनों ही (संरचनात्मक और व्यवहारिक) महसूस करती हैं।[९]

ऐसा माना जाता है कि भूमिका तथा स्थिति परिवर्तन के साथ ही अनेक समस्याएं भी विकसित होती रहती हैं। पारिवारिक व्यवस्था में शोषण के साथ ही कार्यस्थल में भी अनेकों प्रकार की समस्याओं और शोषण का सामना करना पड़ सकता है। अनेकों अध्ययन इस बात की पुष्टि भी करते हैं।

अतः सार रूप में कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में एक महिला जो किसी भी कारणवश कार्यरत है या अर्थोपार्जन कर रही है। सदैव एक प्रकार के मानसिक तनाव से ग्रसित रहती है जिसमें महिला को सापेक्ष अभावबोध, भूमिका संघर्ष एवं शोषण का सामना करना ही पड़ता है। अतः ऐसी स्थिति में उपरोक्त तीनों स्थितियों का आना तथा इस तीनों स्थितियों से उत्पन्न मानसिक तनाव उत्पन्न होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया मानी जा सकती है।

अध्ययन की प्रासंगिकता : जैसा कि यह सर्वविदित है कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है जिससे कोई भी समाज अछूता नही रह सकता अर्थात स्थिर समाज की कल्पना नही की जा सकती। परिवर्तन के कारण ही महिलाओं का आजीविका हेतु व्यवसाय एवं धनोपार्जन करना सम्भव हुआ। वास्तव में यह आवश्यकता तथा परिवर्तन दोनों का ही सम्मिलित परिणाम है। आर्थिक रूप से सशक्त होने तथा धनोपार्जन के क्षेत्र में आने वाली महिलाओं का कोई एक विशेष समरूप समूह नही है। परिवार की आर्थिक मदद के साथ अपनी योग्यता एवं कुशलता को सिद्व करने के लिए भी महिलायें कार्यक्षेत्र में आती हैं। किन्तु महिलायें किसी भी रूप में कार्यक्षेत्र में आई हों उन्हें अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना ही पड़ता है। प्रस्तुत अध्ययन नैनीताल के नगरीय क्षेत्र में राजकीय कार्यालयों में कार्यरत महिलाओं पर आधारित है, जिसमें घर तथा कार्यालय दोहरे उत्तरदायित्व के मध्य कार्य करने वाली महिलाओं में सर्वाधिक मानसिक तनाव उत्पन्न करने वाली कार्यगत् परिस्थितियों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे-जैसे सरल समाज जटिल समाज में परिवर्तित होता है वैसे ही समस्यायें अधिक विकराल रूप ले लेती है। अतः वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत अध्ययन का महत्व यह है कि इतने वर्षो के पश्चात कार्यरत महिलाओं में इस प्रकार की मानसिक तनाव प्रकट करने वाली परिस्थितियों में वृद्धि हुई है या कमी, साथ ही इसकी गहनता क्या है। इसी निरन्तरता में मानसिक तनाव उत्पन्न करने वाली प्रमुख परिस्थितियां शोध के महत्वपूर्ण विषय हो सकते हैं।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य सर्वाधिक मानसिक तनाव उत्पन्न करने वाली कार्यगत परिस्थितियों (सापेक्ष अभावबोध, भूमिका संघर्ष तथा शोषण के विशेष सन्दर्भ में) का एक समाजशास्त्रीय

विश्लेषण प्रस्तुत करना रहा है।

प्रस्तुत शोध नैनीताल जिले के नगरीय क्षेत्रों के शासकीय विभागों में कार्यरत महिलाओं पर आधारित है। अध्ययन में सभी श्रेणियों (प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ) की कार्यरत महिलाओं को सम्मिलित किया गया है। ३६ प्रमुख शासकीय विभागों में से केवल ११ विभागों में चारों श्रेणियों में महिलाएं कार्यरत हैं अतः अध्ययन हेतु इन्हीं विभागों को अध्ययन में सम्मिलित किया गया है।

प्रथम एवं द्वितीय श्रेणी की कार्यरत महिलाओं को समग्र तथा तृतीय तथा चतुर्थ श्रेणी की कार्यरत महिलाओं के ५० प्रतिशत को दैव निदर्शन पद्धति की लाटरी विधि से चयनित किया गया। इस प्रकार प्रस्तुत अध्ययन कुल ४६४ (१८, ३६, २५०, १६०) अध्ययन इकाइयों पर आधारित है।

प्रस्तुत अध्ययन मुख्य रूप से प्राथमिक आंकड़ों पर आधारित है तथा आंकड़े एकत्रित करने के लिए मुख्य रूप से साक्षात्कार अनुसूची तथा आवश्यकतानुसार असहभागी अवलोकन पद्धति का उपयोग किया गया है।

विश्लेषण : रूचि के अनुसार उपलब्ध कार्य किसी भी व्यक्ति की कार्यक्षमता को विकसित करता है परंतु एक महिला के संदर्भ में यदि देखा जाए तो यह स्पष्ट है कि आज भी महिला को अपनी रूचि के क्षेत्र में कार्य नहीं मिल पाता है। अतः जो कार्य उपलब्ध है उसे स्वीकार करने के लिए वह बाध्य होती है। रूचिकर कार्यों की अनुपलब्धता निम्न सारणी से स्पष्ट होती है :

सारणी संख्या १

महिलाओं को रूचिकर कार्यों की अनुपलब्धता

वर्ग	योग		प्रथम श्रेणी		द्वितीय श्रेणी		तृतीय श्रेणी		चतुर्थ श्रेणी	
सुख प्राप्ति	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	३४८	७५.०	१२	६६.७	३०	८३.३	१७०	६८.०	१३६	८५.०
नहीं	११६	२५.०	६	३३.३	६	१६.७	८०	३२.०	२४	१५.०
योग	४६४	१००	१८	१००	३६	१००	३५०	१००	१६०	१००

सारणी के आधार पर कहा जा सकता है कि सर्वाधिक उत्तरदाताओं को अपनी रूचि के अनुसार कार्य उपलब्ध नहीं है। इस संदर्भ में एक रूचिकर बात यह परिलक्षित होती है कि महिला के रूचिकर कार्य की अनुपलब्धता के संबंध में सकारात्मक मत (७५ प्रतिशत) नकारात्मक मत (२५ प्रतिशत) के लगभग तीन गुना अधिक हैं। इसी तरह श्रेणीगत आधार में भी प्रथम, द्वितीय तथा चतुर्थ श्रेणी में इस प्रतिशत में (क्रमशः ६६.७ प्रतिशत, ८३.३ प्रतिशत तथा ८५ प्रतिशत) लगातार वृद्धि हुई है। केवल इस आवृति में तृतीय श्रेणी के उत्तरदाताओं का प्रतिशत (६८ प्रतिशत) कुछ घटा है। इससे यह स्पष्ट होता है कि रूचिकर कार्यों की उपलब्धता के संदर्भ में उत्तरदाताओं में पुरूषों की तुलना में सापेक्ष अभावबोध पाया जाता है।

ऐसा समझा जाता रहा है कि धार्मिक रीति-रिवाज या कर्मकाण्ड केवल महिलाओं के लिए आवश्यक है। पुरूषों के लिए अनिवार्य नहीं है कि वह इनका पालन कठोरता से करे। निम्न सारणी में उत्तरदाताओं के इस संबंध में विचारों को प्रदर्शित किया है :

सारणी संख्या २

धार्मिक नियम स्त्री पर लागू होते हैं पुरूषों पर नहीं

वर्ग	योग		प्रथम श्रेणी		द्वितीय श्रेणी		तृतीय श्रेणी		चतुर्थ श्रेणी	
मत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत
पूर्णतः सहमत	१२८	२७.६	६	३३.४	१२	३३.३	४६	१८.४	६४	४०.०
सहमत	१७४	३७.५	२	११.१	८	२२.२	७८	३१.२	८६	५३.७
आंशिक सहमत	६०	१२.६	२	११.१	६	१६.७	४४	१७.६	८	५.०
असहमत	५४	११.६	४	२२.२	६	१६.७	४४	१७.६	–	–
पूर्णतः असहमत	४८	१०.४	४	२२.२	४	११.१	३८	१५.२	२	१.३
योग	४६४	१००	१८	१००	३६	१००	२५०	१००	१६०	१००

उपर्युक्त सारणी के आधार पर कहा जा सकता है कि सर्वाधिक उत्तरदाता (३७.५ प्रतिशत) इस मत से सहमत हैं कि धार्मिक नियम स्त्री पर लागू होते हैं पुरूषों पर नहीं। जबकि इस मत से केवल १०.४ प्रतिशत उत्तरदाता ही पूर्णतः असहमत हैं । श्रेणीगत आधार पर भी प्रथम और द्वितीय श्रेणी में सर्वाधिक उत्तरदाता (क्रमशः ३३.४ प्रतिशत तथा ३३.३ प्रतिशत) इस मत से पूर्णतः सहमत हैं। जबकि तृतीय और चतुर्थ श्रेणी में भी सर्वाधिक उत्तरदाता (क्रमशः ३१.४ प्रतिशत तथा ५३.७ प्रतिशत) इस मत से सहमत हैं। इससे स्पष्ट होता है कि महिलाओं के ऊपर अभी भी परंपरागत धार्मिक नियमों का कठोरता से पालन करने की बाध्यता है जबकि पुरूषों पर इस प्रकार का कोई प्रतिबंध नहीं है। यहां पर उत्तरदाताओं में सापेक्ष अभावबोध की भावना स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है कि वह एक पुरूष के समक्ष अपने को अभावग्रस्त महसूस करती हैं कि रीति-रिवाजों का पालन न करने की स्वतंत्रता केवल पुरूषों को ही प्राप्त है।

यद्यपि समाज ने कार्यरत महिलाओं को नई भूमिकाओं का भी निर्वाह करने की स्वीकृति प्रदान की है तथापि इस संबंध में महिलाओं से संबंधित परंपरावादी मान्यताएँ/अपेक्षाएं विशेष परिवर्तित नहीं हुई हैं। उदाहरणार्थ अब भी घरेलू जीवन संबंधी समस्त जिम्मेदारियाँ केवल एक महिला की ही मानी जाती हैं। अतः एक महिला के लिए अपनी व्यवसायिक भूमिका तथा घरेलू भूमिका के निर्वाह में सामंजस्य स्थापित करना कठिनाईयुक्त हो जाता है। सारणी संख्या ३ इसी समस्या को प्रदर्शित करती है।

सारणी संख्या ३

दोहरी भूमिकाओं की मांगों में अपेक्षित सामंजस्य में कठिनाई

वर्ग	योग		प्रथम श्रेणी		द्वितीय श्रेणी		तृतीय श्रेणी		चतुर्थ श्रेणी	
मत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत
पूर्णतः सहमत	७४	१५.६	४	२२.२	१६	४४.४	४४	१७.६	१०	६.३
सहमत	१३०	२८.०	४	२२.२	६	१६.७	७२	२८.८	४८	३०.०
आंशिक सहमत	१३०	२८.०	४	२२.२	६	१६.७	५६	२२.४	६४	४०.०
असहमत	८२	१७.७	–	–	६	१६.७	५०	२०.०	२६	१६.२
पूर्णतः असहमत	४८	१०.४	६	३३.४	२	५.६	२८	११.२	१२	७.५
योग	४६४	१००	१८	१००	३६	१००	२५०	१००	१६०	१००

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि उन उत्तरदाताओं का प्रतिशत समान (२८.० प्रतिशत) है जो इस मत से सहमत और आंशिक रूप से सहमत हैं कि प्रायः महिलाओं से जो उम्मीदें रखी जाती हैं उनके लिए कठिनाइयाँ उत्पन्न कर देती हैं क्योंकि एक ही समय में दोहरी मांगों के बीच सामंजस्य स्थापित करना अत्यधिक कठिन हो जाता है। साथ ही १५.९ प्रतिशत उत्तरदाता इस मत से पूर्णतः सहमत हैं। जबकि इसे विपरीत १७.७ प्रतिशत उत्तरदाता इस मत से असहमत तथा १०.४ प्रतिशत उत्तरदाता इस मत से पूर्णतः असहमत हैं। श्रेणीगत आधार पर यदि देखें तो प्रथम श्रेणी के सर्वाधिक उत्तरदाता (३३.४ प्रतिशत) इस मत से पूर्णतः असहमत हैं जबकि उन उत्तरदाताओं का प्रतिशत समान है (२२.२ प्रतिशत) जो इस मत से पूर्णतः सहमत/सहमत/आंशिक रूप से सहमत हैं अर्थात् उन उत्तरदाताओं का प्रतिशत अधिक है जो सामंजस्य संबंधी कठिनाई महसूस करते हैं, द्वितीय श्रेणी के सर्वाधिक उत्तरदाता (२८.८ प्रतिशत) इस मत से सहमत हैं। साथ ही १७.६ प्रतिशत उत्तरदाता इस मत से पूर्णतः सहमत तथा २२.४ प्रतिशत उत्तरदाता आंशिक रूप से सहमत हैं जबकि २० प्रतिशत उत्तरदाता असहमत तथा ११.२ प्रतिशत उत्तरदाता पूर्णतः असहमत हैं, इसी प्रकार चतुर्थ श्रेणी के सर्वाधिक उत्तरदाता (३० प्रतिशत) इस मत से सहमत हैं। साथ ही ४० प्रतिशत उत्तरदाता इस मत से आंशिक रूप से सहमत हैं तथा ६.३ प्रतिशत उत्तरदाता इस मत से पूर्णतः सहमत हैं। जबकि १६.२ प्रतिशत उत्तरदाता इस मत से असहमत हैं तथा ७.५ प्रतिशत उत्तरदाता इस मत से पूर्णतः असहमत हैं। **यद्यपि एक** कार्यरत महिला की नई व्यवसायिक भूमिका को समाज में धीरे-धीरे स्वीकृति मिल रही है परंतु दैनिक जीवन शैली अब भी वही परंपरागत है। घरेलू समस्त जिम्मेदारियां आज भी केवल महिला की ही मानी हैं। अतः एक कार्यरत महिला घर तथा बाहर दोनों जिम्मेदारियों के अकेले निर्वहन से त्रस्त हो जाती है और तनाव महसूस करती है। निम्नांकित सारणी उत्तरदाताओं के इसी तनाव को प्रदर्शित करती है ।

सारणी संख्या ४

दोहरी जिम्मेदारियों के निर्वहन के कारण कार्यरत महिलाओं में तनाव

वर्ग	योग		प्रथम श्रेणी		द्वितीय श्रेणी		तृतीय श्रेणी		चतुर्थ श्रेणी	
उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	३३०	७१.१	१२	६६.७	२०	५५.६	१५८	६३.२	१४०	८७.५
नहीं	८०	१७.३	६	३३.३	१४	३८.८	५०	२०.०	१०	६.३
कह नहीं सकते	५४	११.६	-	-	२	५.६	४२	१६.८	१०	६.२
योग	४६४	१००	१८	१००	३६	१००	२५०	१००	१६०	१००

जैसा कि उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि अधिकांश उत्तरदाता (७१.१ प्रतिशत) इस मत से सहमत हैं कि घरेलू और कार्यरत दोनों प्रकार की जिम्मेदारियों के अकेले निर्वहन से वे त्रस्त हो जाते हैं जिससे अत्यधिक तनाव महसूस करते हैं। इसके विपरीत केवल ११.६ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस विषय में अपने कोई विचार व्यक्त नहीं किए, जबकि १७.३ प्रतिशत उत्तरदाता किसी भी प्रकार का तनाव महसूस नहीं करते। श्रेणीगत आधार पर भी चारों श्रेणियों की सर्वाधिक उत्तरदाता (क्रमशः ६६.७ प्रतिशत, ५५.६ प्रतिशत, ६३.२ प्रतिशत तथा ८७.५ प्रतिशत) इस तनाव को महसूस करते हैं। श्रेणीगत आधार पर आंकड़ों को देखने पर एक रोचक प्रवृत्ति यह परिलक्षित होती है कि सर्वाधिक तनावग्रस्तता चतुर्थ श्रेणी के उत्तरदाताओं में पाई जाती गई। सार रूप में कहा जा सकता है कि यहां पर उत्तरदाताओं में भूमिका संघर्ष स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है क्योंकि सर्वाधिक उत्तरदाता सारी जिम्मेदारियों के अकेले निर्वहन से तनाव महसूस करते हैं।

शासकीय कार्यालयों में एक प्रमुख समस्या स्थानान्तरण की मानी जाती है और कार्यरत महिलाएं भी इससे अछूती नहीं हैं। इसके परिणामस्वरूप उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है जैसे- पति और बच्चों से अलग रहना, नए शहर में व्यवस्थित रूप से रहने संबंधी कठिनाइयां तथा अविवाहित होने की स्थिति में अकेले हो जाने संबंधी कठिनाइयां आदि। निम्न सारणी उत्तरदाताओं की स्थानांतरण संबंधी समस्या को प्रदर्शित करती है।

सारणी संख्या ५

स्थानान्तरण संबंधी समस्याओं से उत्पन्न तनाव

वर्ग	योग		प्रथम श्रेणी		द्वितीय श्रेणी		तृतीय श्रेणी		चतुर्थ श्रेणी	
समस्याएं	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत
पति और बच्चों के कारण हाँ	४३२	९३.१	१६	८९.९	३४	९४.४	२२८	९१.२	१५४	९६.३
नहीं	३२	६.९	२	११.१	२	५.६	२२	८.८	६	३.७
छोटे बच्चे-हाँ	४३८	९४.४	१६	८८.९	३२	८८.९	२३६	९४.४	१५४	९६.३
नहीं	२६	५.६	२	११.१	४	११.१	१४	५.६	६	३.७
नया शहर-हाँ	३९८	८५.८	१०	५५.६	३०	८३.३	२०६	८२.४	१५२	९५.०
नहीं	६६	१४.२	८	४४.४	६	१६.७	४४	१७.६	८	५.०
अविवाहित होने- हाँ	३९०	८४.१	१०	५५.६	१८	५०.०	२१६	८६.४	१४६	९१.३
नहीं	७४	१५.९	८	४४.४	१८	५०.०	३४	१३.६	१४	८.७
योग	४६४	१००	१८	१००	३६	१००	२५०	१००	१६०	१००

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि सर्वाधिक उत्तरदाताओं ने स्थानांतरण के कारण उत्पन्न होने वाली समस्याओं को महसूस किया है। सर्वाधिक उत्तरदाता (९३.१ प्रतिशत) अपने पति और बच्चों को छोड़कर नहीं जा पाते। बच्चे यदि छोटे हों तो उन्हें साथ ले जाना संभव नहीं होता। इसी प्रकार ८५.८ प्रतिशत उत्तरदाताओं का यह मानना है कि नए शहर में जाना मुश्किल हो जाता है जबकि ८४.१ प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते हैं कि अविवाहित लड़कियों को अकेले जाने की अनुमति नहीं मिलती। श्रेणीगत आधार पर भी सर्वाधिक उत्तरदाता इस मत से समहत हैं कि स्थानांतरण से समस्याएं उत्पन्न होती हैं। प्रथम श्रेणी के सर्वाधिक उत्तरदाता पति और बच्चों को छोड़कर नहीं जाना चाहते (८९.९ प्रतिशत) साथ ही छोटे बच्चों के साथ होने वाली समस्या को भी महसूस करते हैं (८८.९ प्रतिशत), नया शहर (५५.६ प्रतिशत) तथा अविवाहित होने (५५.६प्रतिशत) की समस्या को भी महसूस करते हैं, द्वितीय श्रेणी के सर्वाधिक उत्तरदाताओं ने पति और बच्चों (९४.४ प्रतिशत), छोटे बच्चों (८८.९ प्रतिशत) और नए शहर की परेशानी (८३.३ प्रतिशत) को महसूस किया। परंतु ऐसे उत्तरदाताओं को प्रतिशत समान (५० प्रतिशत) है जो अविवाहित होने पर अकेले जाने की समस्या को महत्व दिया है/महसूस नहीं करते हैं। तृतीय श्रेणी के सर्वाधिक उत्तरदाता पति और बच्चों (९१.२ प्रतिशत) छोटे बच्चों (९४.४ प्रतिशत), नया शहर (८२.४ प्रतिशत) तथा अविवाहित स्थिति (८६.४ प्रतिशत) संबंधी कठिनाई को स्वीकार करते हैं। चतुर्थ श्रेणी के सर्वाधिक उत्तरदाता पति और बच्चों (९६.३ प्रतिशत), छोटे बच्चों (९६.३ प्रतिशत), नया शहर (९५ प्रतिशत) तथा अविवाहित स्थिति (९१.३ प्रतिशत) संबंधी कठिनाई

को स्वीकार करते हैं।

कार्यरत होने की स्थिति में एक कार्यरत महिला दोहरी जिम्मेदारियों के निर्वहन के कारण अधिक तनाव महसूस करती है और यह तनाव कई रूपों में प्रदर्शित भी होता है। निम्नांकित सारणी उत्तरदाताओं के तनाव की स्थिति को प्रदर्शित करती है :

सारणी संख्या ६

कार्यरत होने की स्थिति में अधिक तनाव को महसूस करना

वर्ग	योग		प्रथम श्रेणी		द्वितीय श्रेणी		तृतीय श्रेणी		चतुर्थ श्रेणी	
तनाव	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	३२६	७०.३	१०	५५.६	२२	६१.१	१५०	६०.०	१४४	९०.०
नहीं	१३८	२६.७	८	४४.४	१४	३८.६	१००	४०.०	१६	१०.०
योग	४६४	१००	१८	१००	३६	१००	२५०	१००	१६०	१००

जैसा कि उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि सर्वाधिक उत्तरदाता (७०.३ प्रतिशत) इस मत से सहमत हैं कि एक कार्यरत महिला दोहरी जिम्मेदारियों के कारण अधिक तनाव महसूस करती है। जबकि केवल २६.७ प्रतिशत उत्तरदाता ही इस तरह के तनाव को महसूस नहीं करते हैं। श्रेणीगत आधार पर भी चारों श्रेणियों के सर्वाधिक उत्तरदाता इस तरह के तनाव को महसूस करते हैं। सारणी में यह बात विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करती है कि चतुर्थ श्रेणी के उत्तरदाताओं में सर्वाधिक तनाव एवं प्रथम श्रेणी के उत्तरदाताओं में न्यूनतम तनाव व्याप्त है। द्वितीय एवं तृतीय श्रेणी के उत्तरदाताओं में तनाव की स्थिति समान है।

कार्यरत महिलाओं में मानसिक तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थितियाँ अनेक होती हैं। किंतु ऐसी मान्यता है कि एक कार्यरत महिला में सर्वाधिक तनाव उसका दोहरा उत्तरदायित्व उत्पन्न करता है। हमारे उत्तरदाता भी इस सामान्य मान्यता के अपवाद नहीं है। जैसा कि निम्नलिखित सारणी से स्पष्ट होता है :

सारणी संख्या ७

सर्वाधिक मानसिक तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थितियाँ

वर्ग	योग		प्रथम श्रेणी		द्वितीय श्रेणी		तृतीय श्रेणी		चतुर्थ श्रेणी	
परिस्थितियाँ	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत
पुरूष सहकर्मी मानसिक रूप से शोषण करते हैं	५०	१०.८	२	११.१	८	२२.२	१६	६.४	२४	१५.०
स्त्री होने का ताना	८४	१८.१	२	११.१	४	११.१	३२	१२.८	४६	२८.८
दोहरा उत्तरदायित्व	२८४	६१.२	१०	५५.६	२०	५६.६	१६८	६७.२	८६	५३.८
कमाऊ स्त्री होने का ताना	२२	४.७	२	११.१	–	–	१८	७.२	२	१.२
स्त्री के दोनों कार्यों को महत्व न देना	२४	५.२	२	११.१	४	११.१	१६	६.४	२	१.२
योग	४६४	१००	१८	१००	३६	१००	२५०	१००	१६०	१००

जैसा कि उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि सर्वाधिक उत्तरदाता (६१.२ प्रतिशत) यह स्वीकार करते हैं कि घर तथा कार्यस्थल दोहरे दायित्व के निर्वहन से सर्वाधिक मानसिक तनाव उत्पन्न होता है, जबकि केवल ५.२ प्रतिशत उत्तरदाता यह स्वीकार करते हैं कि उन्हें इस बात से अधिक तनाव उत्पन्न होता है जब घर के अन्य

सदस्य विशेष रूप से कार्य न करने वाली महिलाएं उसके दोनों कार्यों को कोई महत्व नहीं देती। श्रेणीगत आधार पर यदि देखें तो चारों श्रेणियों के सर्वाधिक उत्तरदाता (क्रमशः ५५.६ प्रतिशत, ५५.६ प्रतिशत, ६७.२ प्रतिशत तथा ५३.८ प्रतिशत) घर तथा कार्यस्थल दोहरे दायित्व के निर्वहन से ही सर्वाधिक मानसिक तनाव महसूस करते हैं। दोहरे उत्तरदायित्व के कारण जहाँ एक ओर महिलाओं में भूमिका संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है वहीं दूसरी ओर यही दोहरा उत्तरदायित्व उनमें मानसिक तनाव उत्पन्न करने का सर्वाधिक महतवपूर्ण कारण भी है। इसी दोहरे उत्तरदायित्व को महिलाओं के शोषित होने का भी एक प्रमुख कारण माना जा सकता है।

एक कार्यरत महिला कार्यस्थल में विभिन्न लोगों के संपर्क में आती है। कार्यस्थल में उसके सहकर्मी पुरूष भी होते हैं और स्त्री भी। परंतु यदि महिला किसी पुरूष से अच्छी मित्रता के संबंध रखती है तो उनके स्वस्थ संबंध भी सदैव शक के घेरे में आ जाते हैं। यह एक ऐसा सत्य है जिसे सर्वाधिक उत्तरदाता महसूस करते हैं। जैसा कि निम्नांकित सारणी से स्पष्ट होता है :

सारणी संख्या ८

पुरूष सहकर्मी के साथ मित्रता के संबंध का शक के घेरे में आना

वर्ग	योग		प्रथम श्रेणी		द्वितीय श्रेणी		तृतीय श्रेणी		चतुर्थ श्रेणी	
मत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	३३०	७१.१	१२	६६.७	२८	७७.८	१६२	६४.८	१२८	८०.०
नहीं	७४	१६.०	६	३३.३	२	५.६	४२	१६.८	२४	१५.०
कह नहीं सकते	६०	१२.६	–	–	६	१६.६	४६	१८.४	८	५.०
योग	४६४	१००	१८	१००	३६	१००	२५०	१००	१६०	१००

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि अधिकांश उत्तरदाताओं (७१.१ प्रतिशत) ने स्वीकार किया है कि एक कार्यरत महिला यदि एक पुरूष से अच्छी मित्रता रखती हैं तो वह अच्छी दृष्टि से नहीं देखी जाती हैं और उसकी मित्रता पर सदैव शक किया जाता है। श्रेणीगत आधार पर भी चारों श्रेणियों की अधिकांश उत्तरदाताओं (क्रमशः ६६.७ प्रतिशत, ७७.८ प्रतिशत, ६४.८ प्रतिशत तथा ८०.० प्रतिशत) ने भी यह माना है कि ऐसे संबंध सदैव शक के कारण बनते हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि यदि समाज ने महिलाओं का स्वतंत्र रूप से नौकरी करना स्वीकार किया है परंतु अब भी समाज ने महिला और पुरूष की समान व स्वस्थ मित्रता को स्वीकार नहीं किया है। यह एक ऐसा मानसिक उत्पीड़न है जो महिला में सर्वाधिक मानसिक तनाव उत्पन्न करता है। यह स्थिति कभी-कभी इतनी विस्फोटक होती है कि इससे विवाहित महिला का घरेलू जीवन तनावग्रस्त हो जाता है।

निष्कर्ष– संपूर्ण विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है कि सर्वाधिक उत्तरदाताओं को अपनी रुचि के अनुरूप कार्य उपलब्ध नहीं हो पाता अतः रूचिकर कार्यों की अनुपलब्धता के संदर्भ में उत्तरदाताओं में सापेक्ष अभावबोध पाया गया। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कार्यरत होने के पश्चात भी महिलाओं के ऊपर धार्मिक नियमों को कठोरता से पालन करने की बाध्यता है, जबकि पुरूषों पर इस प्रकार की कोई बाध्यता नही होती है। अधिकांश उत्तरदाताओं का मानना है कि घरेलू और कार्यरत दोनों प्रकार की जिम्मेदारियों के अकेले निर्वहन से वे त्रस्त हो जाते हैं जिससे अत्यधिक तनाव उत्पन्न होता है। एक समय में दोहरी भूमिकाओं की मांगों में अपेक्षित सामंजस्य स्थापना संबंधी कठिनाईयों को अधिक उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया है साथ ही स्थानान्तरण के कारण उत्पन्न होने वाली समस्या को सर्वाधिक उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया है क्योंकि परिवार, पति तथा बच्चों को छोड़कर जाना संभव नहीं

हो पाता जो सर्वाधिक मानसिक तनाव उत्पन्न करता है। दोहरी जिम्मेदारियों से उत्पन्न अनेकों तनावों को अधिकांश उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया है, जो क्रोध के रूप में बाहर निकल कर आता है। अध्ययन में पाया गया कि अर्थोपार्जन करने वाली महिला की नई मांगों तथा आशाओं का उसकी पारिवारिक व्यवस्था में कोई स्थान नहीं होता। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि समाज ने महिलाओं का स्वतंत्र रूप से नौकरी करना स्वीकार किया है परंतु अब भी समाज ने महिला और पुरूष की समान व स्वस्थ मित्रता को स्वीकार नहीं किया है। यह एक ऐसा मानसिक उत्पीड़न है, जो महिला में सर्वाधिक मानसिक तनाव उत्पन्न करता है। यह स्थिति कभी-कभी इतनी विस्फोटक होती है कि इससे विवाहित महिला का घरेलू जीवन तनावग्रस्त हो जाता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि अधिकांश महिलाएं आज अर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना अनिवार्य मानती हैं। अब न केवल महिलाएं अधिक दबाव के कारण लाभप्रद वैतनिक नौकरियां कर रही हैं बल्कि वह महिलाएं भी घर से बाहर निकल कर कार्य करती हैं जो अपनी योग्यता; कार्य कुशलता को सिद्ध करना चाहती हैं तथा आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ कर एक बेहतर जीवन स्तर बिताना चाहती हैं। अतः ऐसे में आवश्यक है कि उसे एक स्वस्थ वातावरण तथा परिवेश प्राप्त हो सके, किंतु यह भी वास्तविकता है कि समाज अब भी पूर्णतया पारंपरिक ही है जिससे एक महिला की कार्य के साथ-साथ कई प्रकार के मानसिक तनावों से भी होकर गुजरना पड़ता है, जिससे उसकी कार्यक्षमता भी प्रभावित होती है।

संदर्भ

1. Stouffer S.A. et. Al. 'The American Soldier, I : Adjustment During Army Life' Priceton University press-1947, p. 125.
2. Hyman H.H, 'The Phychology of Status' Archives of Psychology, 1942, p. 169
3. Merton R.K., 'Social theory and social Structure', The free Press 1963, Enlarged Indian Edition, New Delhi. Amerind Publishing Co., 1969. pp. 40-41.
4. Chauhan Indira, 'The Dilemma of working women hostelers', B.R. Publishing Corporation, Delhi, 1986, p. 45.
5. Bhaduria Mirdula, 'Women In India' , A.P.H Publishing corporation. New Delhi-1997, p. 82.
6. Chakraborhy Krishna. 'The Conflicting World of working mother'. pp. 46-47.
7. Jha Shankar Uma and Premlata 'Indian Women Today Tradition, Modernity and Challenges', Col-3-Kanishka Publishers and Distributers, New Delhi, 1998 p. 150
8. Chowdhry Paul D. 'Women Welfare and Development', A Source Book Inter India Publication, New Delhi,1991, p. 59
9. Boulding Elise 'Women and Social Vialence', in 'Vioelence and its Causes' "Paris Unesco, 1981, pp. 239-51.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 20 अंक 1, जनवरी–जून 2018
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

मुद्रा एवं मुद्रा चिकित्सा

❑ डॉ० संजय प्रकाश

मानव शरीर अनन्त रहस्यों से भरा हुआ है। शरीर की अपनी एक मुद्रामयी भाषा है। मुद्रा एक प्रतीकात्मक भाव भंगिमा है। शरीर की किसी विशेष स्थिति का लगातार बने रहना या स्थिर रहना मुद्रा कहलाता है। कुछ मुद्राओं में पूरा शरीर सम्मिलित होता है लेकिन ज्यादातर मुद्रायें हाथों एवं उंगलियों से की जाती हैं। मानव शरीर पंचतत्वों से बना है जिनका प्रतिनिधित्व हाथों की पांचों उंगलियाँ करती हैं। मुद्रा का उद्देश्य व्यक्ति की प्राणशक्ति को ब्रह्माण्डीय प्राण शक्ति से जोड़ना है ताकि शरीर में ऊर्जा का निरंतर प्रवाह होता रहे। वर्तमान द्रुतगामी व्यस्तृतम समय में कुछ तो आलस्यवश और कुछ व्यस्ततावश नियमित योगाभ्यास या व्यायाम सबके द्वारा संभव नहीं है, परन्तु योग के कुछ अन्य ऐसे साधन जिसमें न अधिक श्रम की आवश्यकता है और न अतिरिक्त समय की, मुद्रा चिकित्सा इस उद्देश्य की पूर्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जिसमें कुछ देर के अभ्यासों से शरीर को रोगमुक्त रखा जा सकता है। प्रस्तुत शोध पत्र मुद्रा चिकित्सा का अर्थ, प्रकारों, उद्देश्यों तथा योगिक मुद्राओं द्वारा विभिन्न रोगों की चिकित्सा की जानकारी प्रदान करने की दिशा में एक प्रयास है।

मुद्रा एक संस्कृत शब्द है, जिसका अर्थ होता है प्रतीकात्मक या अनुष्ठानिक भाव या भावभंगिमा। कुछ मुद्राओं में पूरा शरीर सम्मिलित रहता है, लेकिन ज्यादातर मुद्रायें हाथों एवं उंगलियों से की जाती हैं। एक मुद्रा एक आध्यात्मिक भावभंगिमा है। ये मुद्रायें अतीन्द्रिय, भावनात्मक, भक्तिपूर्ण और सौन्दर्यबोधक हो सकती हैं। योगियों ने इन मुद्राओं की अनुभूति शक्ति प्रवाह की स्थितियों के रूप में की, जिनका उद्देश्य होता है व्यक्ति की प्राणशक्ति को ब्रह्माण्डीय प्राणशक्ति से जोड़ना।

प्राणीजगत में सर्वाधिक सामर्थ्यवान प्राणी मनुष्य ही है। यह सर्वविदित है परन्तु अपने संपूर्ण जीवनकाल में अपने सामर्थ्य के दसवां भाग का भी सदुपयोग बिरले ही कोई मनुष्य कर पाता है, यह दुर्भाग्यपूर्ण है। शरीर में अपार सामर्थ्य का भण्डार व्यर्थ ही नष्ट हो जाता है। हम सभी जानते हैं कि मनुष्य का शरीर, पंचतत्वों (पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश तथा वायु) से निर्मित है। साधारणतः आहार-विहार का असंतुलन इन पंचतत्वों के संतुलन को विखण्डित कर देता है और फलस्वरूप मनुष्य का शरीर भांति-भांति के रोगों से ग्रसित हो जाता है। रोग का प्रभाव बढ़ने पर हम चिकित्सकों के पास जाते हैं और वर्तमान में एलोपैथीय चिकित्सा में अभी तक किसी भी व्याधि के लिए ऐसी कोई भी औषधि उपलब्ध नहीं है जिसका सेवन पूर्णतः निर्दोष हो। इसके दुष्परिणाम अन्य रोगों की उत्पत्ति के रूप में प्रकट होते हैं।

मानव शरीर में रोग प्रतिरोधन की वह अपरिमित क्षमता है जिसे यदि प्रयोग में लाया जाय तो बिना औषधि के सेवन से रोगों से मुक्ति पा सकते हैं। नियमित व्यायाम तथा संतुलित आहार-विहार सहज स्वाभाविक रूप से काया को निरोग रखने में समर्थ है। वर्तमान के द्रुतगामी व्यस्तृतम समय में कुछ तो आलस्यवश और कुछ व्यस्तता के कारण नियमित योग सबके द्वारा संभव नहीं हो पाता है, परन्तु योग में कुछ ऐसे साधन भी हैं जिनमें न अधिक श्रम की आवश्यकता है और न अतिरिक्त समय की। मुद्रा चिकित्सा इस उद्देश्य की पूर्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है जिसमें कुछ देर के अभ्यासों से शरीर को रोगमुक्त रखा जा सकता है। अतः प्रस्तुत शोध पत्र में मुद्रा एवं मुद्रा चिकित्सा के स्वरूपों का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत शोध-पत्र में मुद्रा का अर्थ, प्रकार, मुद्रा के

❑ फैलो प्रवक्ता योग विभाग, साईं पैरामेडीकल एण्ड एलाइड साइंसेज, देहरादून (उत्तराखण्ड)

उद्देश्य एवं यौगिक मुद्राओं द्वारा विभिन्न रोगों की चिकित्सा आदि पृथक बिन्दुओं पर विमर्श करने का प्रयास करेंगे।

प्राचीन काल से आज तक विभिन्न ग्रन्थों में मुद्राओं का उल्लेख किया गया है ताकि आगे की पीढ़ी के लिए इन्हें सुरक्षित रखा जा सके। फिर भी इस विषय पर विस्तारपूर्वक प्रकाश नहीं डाला गया है या स्पष्टता से वर्णन नहीं किया गया है। क्योंकि इन विधियों को पुस्तकों से सीखना उचित नहीं माना गया था इसलिए इन अभ्यासों को प्रारम्भ करने से पहले गुरू से इन विधियों का व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक माना गया है। चूंकि मुद्रा उच्चकोटि के अभ्यास हैं जिनमें प्राणों, चक्रों एवं कुण्डलनी जागरण होता है और उच्च साधकों को महान सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। अतः मुद्राओं का अभ्यास गुरू के निर्देशन में लाभप्रद होता है। अन्यथा गलत अभ्यास से नाना प्रकार की व्याधियों का सामना करना पड़ सकता है।

योग के प्रामाणिक एवं पौराणिक ग्रन्थों पर यदि दृष्टिपात करें तो स्पष्ट होता है कि 'पांतजल योगसूत्र' जो कि योग का सबसे पौराणिक एवं प्रामाणिक ग्रन्थ है में मुद्राओं का स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता है वहीं दूसरी ओर हठ प्रदीपिका, गोरक्षशतक व घेरण्ड संहिता में मुद्रा का स्पष्ट वर्णन मिलता है। इन सभी मूलग्रन्थों में मुद्रा को उच्चकोटि का अभ्यास माना गया है जो मानसिक स्थिरता एवं एकाग्रता के लिए आवश्यक है।

मुद्रा का अर्थ – मुद्रा शब्द की व्युत्पत्ति 'मुद' धातु से हुई है, जिसका अर्थ प्रसन्नता या उल्लास होता है और 'द्र' के कारण रूप 'द्रव्य' का अर्थ होता है 'खींचना'। इस प्रकार मुद्रा शरीर की एक विशेष भाव-भंगिमा या स्थिति है जिसमें उस स्थिति को लम्बे समय तक बिना विचलित हुए बनाये रखना पड़ता है, जिससे प्राणशक्ति का ब्रह्माण्डीय शक्ति से एकीकरण हो सके।

मुद्रायें सूक्ष्म शारीरिक गतियों का संयोजन हैं, जो मनोवृत्ति, मनोदशा और सहजबोध में परिवर्तन लाती हैं और सजगता एवं एकाग्रता को गहरा बनाती हैं।[1]

किसी मुद्रा में आसन, प्राणायाम और मानस दर्शन के अभ्यासों के साथ संपूर्ण शरीर की सहभागिता हो सकती है। हठयोग प्रदीपिका एवं अन्य योगशास्त्रों में मुद्रा को योगांग कहा गया है जिसमें बहुत सूक्ष्म सजगता की आवश्यकता होती है। आसन, प्राणायाम और बन्ध में कुछ दक्षता प्राप्त हो जाने व अवरोधों को दूर करने के पश्चात मुद्रा के अभ्यास से परिचित कराया जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि मुद्रा एक उच्चकोटि का अभ्यास है जिसमें शारीरिक, मानसिक दक्षता प्राप्त करने के पश्चात् ही उचित लाभ संभव है।

प्राचीनकाल से आजतक योग के विभिन्न ग्रन्थों में मुद्राओं की अलग-अलग व्याख्या की गयी है। परन्तु सभी ग्रन्थों में मुद्राओं के विशेष महत्व को उल्लेखित किया गया है। चित को प्रकट करने वाले किसी विशेष भाव को मुद्रा कहते हैं।[2]

उच्च श्रेणी के भारतीय नृत्यों में मुद्रा हाथों की विशेष अवस्था है जो आन्तरिक भावों या संवेदनाओं का संकेत करती है। प्रतिदिन सामान्यतः घटने वाली बाह्य जगत की क्रियाओं के प्रति हम सचेत रहते हैं। कुछ मुद्राओं द्वारा इन अनैच्छिक शरीरगत प्रतिक्रियाओं पर नियंत्रण प्राप्त किया जाता है। मुद्राओं का अभ्यास साधक को सूक्ष्म शरीर स्थित प्राण-शक्ति की तरंगों के प्रति सजग बनाता है। अभ्यासी इन शक्तियों पर चेतन रूप से नियंत्रण प्राप्त करता है। फलतः व्यक्ति अपने शरीर के किसी अंग में उसका प्रवाह ले जाने या अन्य व्यक्ति के शरीर में उसे पहुँचाने की (अन्य व्यक्ति की प्राणिक या मानसिक चिकित्सा के लिए) क्षमता प्राप्त करता है।

योग के मूलग्रन्थों 'हठ प्रदीपिका' में मुद्रा का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा गया है शरीर की वह विभिन्न शारीरिक स्थितियाँ जिसमें साधक इड़ा-पिंगला के मिलने से प्राणवायु का सुषुम्ना में प्रतिष्ठित होने पर जब वह धीरे-धीरे चींटी जैसे ऊपर सरकती है तब उस अलौलिक आनन्द को पाकर संवेगात्मक अनुभव को बड़ी सफलतापूर्वक एकाग्रता के साथ अनुभव करना या देखना ही मुद्रा है।

साधक को सर्वप्रथम बाह्य विषयों की ओर उन्मुख इन्द्रियों को भीतर की ओर उन्मुख करना पड़ता है,

अर्थात् प्रत्याहार की स्थिति लानी पड़ती है (इन्द्रियों को वश में करना)। इसमें सभी इन्द्रियां अर्न्तमुख हो जाती हैं तब अपने मन को आन्तरिक संवेगात्मक अनुभव को देखने में ही लगाकर मुद्रा का अभ्यास किया जाता है।

मुद्रा शरीर से सम्बन्धित क्रिया है। इसका अभ्यास करने वाले को शरीर की विभिन्न स्थितियां या आकृतियां बनानी पड़ती हैं। इसलिए इस विशिष्ट क्रिया को मुद्रा की संज्ञा दी गयी है। हठ प्रदीपिका में स्वामी स्वात्माराम ने मुद्रा को तृतीय उपदेश के रूप में व्याख्यायित किया है। उन्होंने मुद्रा को एक उच्च कोटि का अभ्यास माना है।

घेरण्ड संहिता में मुद्रा का वर्णन तीसरे उपदेश के रूप में किया गया है। महर्षि घेरण्ड ने आसनों की सिद्धि के पश्चात् मुद्रा के अभ्यास का वर्णन किया है। मुद्राओं के अभ्यास द्वारा हमारे भीतर प्राणशक्ति के प्रवाह को नियंत्रित किया जा सकता है। महर्षि घेरण्ड के अनुसार प्राण हमारे शरीर के भीतर शक्ति और ताप उत्पन्न करते हैं। उच्च साधना में व्यक्ति जब लम्बे समय तक एक अवस्था में बैठता है तो उसके शरीर से गर्मी निकलती है, शरीर का तापमान कम हो जाता है क्योंकि हमारे भीतर प्राण शक्ति नियंत्रित नहीं है, लेकिन मुद्राओं के अभ्यास के द्वारा प्राणशक्ति या ऊर्जा को अपने शरीर के भीतर वापस खींच लेते हैं और उसे नष्ट नहीं होने देते। प्राण को शरीर के भीतर रोकने के लिए महर्षि घेरण्ड ने मुद्राओं के अभ्यास को आवश्यक माना है।

हठ प्रदीपिका के समान घेरण्ड संहिता में मुद्रा के अर्थ को व्याख्यायित किया गया तथा हठप्रदीपिका के समान कुण्डलनी जागरण के फलस्वरूप मुद्रा का अभ्यास उचित माना गया है।

शिव संहिता में भी मुद्रा के अभ्यास को आवश्यक माना गया है। मुद्रा व बन्ध को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि :-

नाडीजालाद्रसव्यूहो मूर्धांनं यन्ति योगिनः।
उभाभ्यां साधयेत्पदभ्यामेकैंक सुप्रयत्नतः।।(४:४०)[३]

योगी के नाड़ीजाल से रस-समूह शिरोभाग में प्रवाहित होता है। अर्थात् उर्ध्वभाग में गमनशील हो उठता है। अतः मुद्रा बन्ध इन दोनों को ही प्रत्येक अंग द्वारा भली प्रकार से करना आवश्यक है।

गोरक्ष संहिता में भी मुद्रा का अभ्यास प्राणशक्ति के एकीकरण के लिए आवश्यक माना गया है।

महामुद्रां नभोमुद्रामुडियानं जलन्धरम।
मूलबन्धं च यो वेत्ति स योगी सिद्धि भाजनम्।।(३२)[४]

जो योगी महामुद्रा, नभोमुद्रा, जालन्धर एवं मूलबन्ध को जानता है, वह चमत्कारी गुणों-शक्तियों का स्वामी बन जाता है।

गोरक्ष शतक में भी मुद्रा को एक उच्चकोटि का अभ्यास माना गया है। जब योगी तीनों बन्धों के अभ्यास में सिद्धि प्राप्त कर लेता है तो कुण्डलनी जागरण के पश्चात् मुद्राओं के अभ्यास से चमत्कारिक लाभ मिलते हैं, और इन मुद्राओं का अभ्यास प्राण शक्ति के एकीकरण करते हुए उसके बिखराव को रोकता है।

मुद्राओं के अभ्यास में जो भाव-भंगिमायें अपनायी जाती हैं वे अन्नमयकोश, मनोमय कोश और प्राणमय कोश के बीच सीधा सम्बन्ध स्थापित करती हैं। प्रारम्भ में इससे अभ्यासी के भीतर शरीर में प्राण-प्रवाह के प्रति सजगता विकसित होती है। अंततः यह कोशों में प्राणिक सन्तुलन स्थापित करता है और सूक्ष्म ऊर्जा को ऊपर के चक्रों में दिशान्तरित करता है जिससे चेतना की उच्च स्थिति प्राप्त होती है।

धीरे-धीरे निरन्तर और नियमित अभ्यास से मुद्राओं में सिद्धि प्राप्त होती है जो योग के उच्चतर अभ्यासों में सहायक होती है।

मुद्रा के प्रकार - योग के प्रामाणिक ग्रन्थों में मुद्रा के विभिन्न प्रकारों की विवेचना की गयी है। योग की अभीष्ट सिद्धियों की प्राप्ति के लिए विभिन्न मुद्राओं का उल्लेख किया गया है। हठप्रदीपिका में स्वामी स्वात्माराम ने १० मुद्राओं का वर्णन किया हैः-

महामुद्रा महाबन्धो महावेधश्च खेचरी।
उडियानं मूलबन्धस्ततो जालन्धरामिधः।।
करणी विपरीताख्या बज्रोली शक्ति चालनम्।।(३:६)[५]

अर्थात् महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, उडिडयान, मूलबन्ध, जालन्धर बन्ध, विपरीकरणी, बज्रोली शक्तिचालन, इन दस मुद्राओं के अभ्यास से प्राण सुषुम्ना में प्रविष्ठ होकर ऊपर की ओर गमन करता है तथा मूलाधार में सोती हुई कुण्डलनी को जगाने के लिए मुद्रा का अभ्यास उपयुक्त माना गया है।

इसी प्रकार घेरण्ड संहिता में महर्षि घेरण्ड द्वारा २५ मुद्राओं का वर्णन किया गया है। जिस प्रकार से एक विधि के माध्यम से हम अपने भीतर उत्पन्न संवेदनाओं को तीव्र बनाते हैं, उनका विस्तार करते हैं और विस्तार करने के बाद अपने आप को उसमें लीन कर देते हैं उसी प्रकार मुद्राओं और बन्धों के अभ्यास में हम इस प्रक्रिया को अपनाते हैं। महर्षि घेरण्ड के अनुसार हम अपने शरीर का प्रयोग करके अन्नमय कोश, प्राणमय कोश और मनोमय कोश की संवेदनाओं को तीव्र बनाकर अपने को उनके भीतर ले जाते हैं। इस पद्धति में दुनिया और शरीर को एक माध्यम मानकर अपने भीतर जाने के लिए इनका सहारा लेती हैं। इस पद्धति में मुद्रा और बन्ध की महत्वपूर्ण भूमिका है।

महामुद्रा नभोमुद्रा उड्डीयान जलन्धरम।
मूलबन्धो महाबन्धो महावेधश्च खेचरी।। (१)
विपरीतकारी योनिर्बज्रोणि शक्तिचालनी।
ताडागी माण्डुकी मुद्राशामभवी पंचधारणा
अश्वनी पाशनी काकी मातंगी भुंजगनी।। (२)
पंचविशं मुद्राश्च सिद्धिदा इह योगिनाम।। (३)(३:१,२,३)[६]

महर्षि घेरण्ड ने कहा - महामुद्रा, नभोमुद्रा, उडिडयान, बन्ध, जालन्धर बन्ध, मूलबन्ध, महाबन्ध, महावेध मुद्रा, खेचरी मुद्रा, विपरीतकरणी, मुद्रा योनि मुद्रा, बज्रोली मुद्रा, शक्तिचालनी मुद्रा, ताड़ागी मुद्रा, माण्डुकी मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा, पार्थवी धारणा, आम्भासी धारणा, आग्नेयी धारणा, वायुवीय धारणा, आकाशीय धारणा, अश्वनी, पाशिनी, काकी, मातंगी और भुजंगनी २५ मुद्रायें हैं। ये योगियों को सिद्धि प्रदान करने वाली हैं।

घेरण्ड संहिता में मुद्राओं को उच्चकोटि का अभ्यास माना गया है। उपरोक्त सूत्र में सोलह मुद्राओं, चार बन्धों ओर पांच धारणाओं का वर्णन किया गया है। आध्यात्मिक क्षेत्र की मान्यता है कि मुद्राओं की सिद्धि अष्टसिद्धि प्रदान करती है। प्राणोत्थान तथा कुण्डलनी जागरण के लिए भी मुद्राओं का अभ्यास किया जाता है। घेरण्ड ऋषि ने मुद्राओं का इतना विस्तृत वर्णन इसलिए किया है जिससे आगे के उच्चतर अभ्यासों में सिद्धि प्राप्त हो सके। शिव संहिता में भी मुद्राओं का स्पष्ट वर्णन मिलता है।

महामुद्रा महाबन्धौ निष्फलो वेधवर्जितो।
तस्माद्योगी प्रयत्नेन करोति त्रितयं क्रमात् (४:४७)[७]

वेध के अभाव में महामुद्रा और महाबन्ध में दोनों ही संभव नहीं हो सकते। अतएव योगाभ्यासी को चेष्टापूर्वक इन तीनों ही साधनों का अभ्यास प्रतिदिन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त शिव संहिता में खेचरी मुद्रा का भी विस्तृत वर्णन किया गया है। शिव संहिता में भी मुद्रा को उच्चकोटि का अभ्यास माना गया है। मुद्राओं के निरन्तर अभ्यास से उच्चतर अभ्यासों में अभीष्ट सिद्धि की प्राप्ति होती है।

इसी प्रकार गोरक्ष शतक (सूत्र ३२) में भी मुद्राओं के अभ्यास का वर्णन मिलता है। मुद्राओं के प्रकार की व्याख्या करते हुए गोरक्ष शतक में कहा गया है कि जो योगी महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डियान, जालन्धर एवं मूलबन्ध को जानता है वह चमत्कारी गुणों व शक्तियों का स्वामी बन जाता है।

यौगिक दृष्टि से मुद्राओं को लगभग पाँच समूहों में बांटा जा सकता है जिसमें मुद्राओं की विशिष्टता व ज्ञान भली भाँति हो सके। ये निम्नलिखित हैं -

१. हस्त मुद्रायें - वे मुद्रायें जो हाथों से की जाती हैं तथा ये ध्यान मुद्रायें होती हैं। वे हाथों द्वारा उत्सर्जित होने वाले प्राण को पुनः शरीर में वापस कर देती हैं। ऐसी मुद्रायें जिनमें अंगूठे व तर्जनी को मिलाकर रखा जाता है, बहुत सूक्ष्म स्तर पर मोटर कार्टेक्स को प्रेरित करती हैं, जिसमें ऊर्जा का एक परिपथ निर्मित होता है, जो मस्तिष्क से निकलकर हाथ तक आता है और फिर वापस मस्तिष्क में जाता है।

इस प्रक्रिया की सचेतन सजगता से बहुत शीघ्र अर्न्तमुखता की अवस्था प्राप्त होती है। इस समूह में

निम्नलिखित मुद्रायें आती हैं -
ज्ञान मुद्रा, चिहन मुद्रा, योनि मुद्रा, भैरव मुद्रा, हृदय मुद्रा

२. मन मुद्रायें - ये अभ्यास कुण्डलनी योग के अभिन्न अंग है और इनमें से कई अपने आप में ध्यान की विधियां हैं। इनमें आँख, कान, नाक, जिह्वा, एवं होठों का उपयोग किया जाता है। इस समूह में निम्नलिखित मुद्रायें आती हैं -

शाम्भवी मुद्रा	नासिकाग्र मुद्रा	खेचरी मुद्रा
काकी मुद्रा	भुंजगनी मुद्रा	भूचरी मुद्रा
आकाशी मुद्रा	षण्मुखी मुद्रा	उन्मनी मुद्रा

३. काया मुद्रायें - इन अभ्यासों में शारीरिक स्थितियों के साथ श्वसन और एकाग्रता को जोड़ा जाता है। इस समूह में निम्नलिखित मुद्रायें आती हैं -

प्राण मुद्रा	विपरीतकर्णी मुद्रा	योग मुद्रा
पाशिनी मुद्रा	माण्डुकी मुद्रा	तड़ागी मुद्रा

४. बन्ध मुद्रायें - इन अभ्यासों में मुद्रा एवं बन्ध का योग होता है। ये शरीर को प्राण से ऊर्जाश्रित करते हैं। इस समूह में निम्नलिखित मुद्रायें आती हैं।

महामुद्रा	महावेध मुद्रा	महाभेद मुद्रा

५. आधार मुद्रायें - ये अभ्यास प्राण को निम्न केन्द्रों से पुनः मस्तिष्क की ओर दिशान्तरित करते हैं। काम ऊर्जा के उर्ध्वगमन से सम्बन्धित मुद्रायें इस समूह में आती हैं।

अश्विनी मुद्रा   बज्रोली मुद्रा

इस समूहों की मुद्रायें प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्था (सेरेब्रल कार्टेक्स) के अधिकांश क्षेत्र को प्रभावित करती हैं। सिर तथा हाथों से सम्बन्धित मुद्राओं की अपेक्षाकृत अधिक संख्या में होना इस बात का संकेत है कि इन दो क्षेत्रों से आने वाली सूचनाओं का अर्थ समझने और तदनरूप कार्य करने में प्रमस्तिष्क का पचास प्रतिशत हिस्सा व्यस्त होता है।

मुद्रा के उद्देश्य - मुद्रा का मूल उद्देश्य मन व प्राण को स्थिर कर एकाग्रचित होना, तथा शरीर व प्राण के बीच समन्वय स्थापित करना होता है क्योंकि योग के उच्चतर अभ्यासों में मन की एकाग्रता तथा शरीर व मन का सन्तुलन होना आवश्यक है तभी उच्च कोटि के अभ्यासों में सफलता प्राप्त हो सकती है। मुद्राओं के अभ्यास में जो भाव और भंगिमायें अपनायी जाती हैं वे अन्नमयकोश, मनोमय कोश तथा प्राणमय कोश के बीच सीधा सम्बन्ध स्थापित करती हैं। प्रारम्भ में इससे अभ्यासी के भीतर प्राण-प्रवाह के प्रति सजगता विकसित होती है। अन्ततः यह कोशों में प्राणिक सन्तुलन स्थापित करती है और सूक्ष्म ऊर्जा को ऊपर के चक्रों में दिशान्तरित करती है जिससे चेतना की उच्च स्थिति प्राप्त होती है।

जिस प्रकार प्रकाश या ध्वनि के रूप में ऊर्जा तरंगें जब किसी दर्पण या खड़ी चट्टान से टकराती हैं तो वहाँ से परिवर्तित हो जाती हैं। उसी प्रकार मुद्रायें भी प्राण की दिशा को परिवर्तित करती हैं। नाड़ियों और चक्रों से निरन्तर प्राण का विकिरण होता रहता है जो सामान्य रूप से शरीर से बाहर निकलकर बाहृय जगत में बिखर जाता है, मुद्राओं के अभ्यास से शरीर में अवरोधक उत्पन्न किये जाते हैं जो ऊर्जा प्रवाह की दिशा को बदलकर उसे पुनः शरीर के भीतर वापस ले आते हैं।

उदाहरण के लिए षण्मुखी मुद्रा में उंगलियों से आँखों को बन्द करने से आँखों के द्वारा बाहर निकलने वाला प्राण परावर्तित होकर शरीर में वापस आ जाता है। इसी प्रकार बज्रनाड़ी द्वारा उत्सर्जित होने वाली काम ऊर्जा बज्रोली मुद्रा के अभ्यास से पुनः मस्तिष्क की ओर दिशान्तरित हो जाती है।

तन्त्रशास्त्रों में कहा गया है कि प्राण के बिखराव को यदि मुद्रा के अभ्यास से रोक दिया जाय तो मन अन्तर्मुखी हो जाता है जिससे स्वाभाविक रूप से प्रत्याहार और धारणा की स्थिति आ जाती है। प्राणों को वापस लाने की क्षमता प्राप्त होने के कारण कुण्डलनी के जागरण में मुद्राओं के अभ्यासों का महत्वपूर्ण स्थान है।

अधिकांश मुद्राओं का संगठन बन्ध, आसन एवं प्राणायाम के सम्मिलन से होता है जो कि एक ही अभ्यास कहलाता है। प्रत्येक अभ्यास के निश्चित लाभ हैं। अतः योग शक्तिशाली अभ्यास का निर्माण करता है। इनके अभ्यास से वाहृय जगत से सम्बन्ध टूट जाता

है। इन्द्रियां अर्न्तमुखी होकर प्रत्याहार की स्थिति निर्मित करती हैं। इसलिए ये अभ्यास आध्यात्मिक साधकों के लिए अत्यधिक उपयोगी हैं। चित्त को एकाग्र करने में भी ये अभ्यास समर्थ हैं। यद्यपि इनका प्राथमिक उद्देश्य आध्यात्मिक है परन्तु इनसे मानसिक व शारीरिक लाभ की प्राप्ति होती है।

हठ प्रदीपिका में मुद्रा के लाभों के विषय में कहा गया है –

इदं ही मुद्रादशंक जरामरण नाशनम् ।
आदिनाथोदितं दिव्यमष्टैश्वर्यप्रदायकम् ।
बल्लभं सर्वासिद्धानां दुर्लभमरूतामपि।। (३:७)[८]

आदिनाथ द्वारा बतायी गयी ये दस मुद्रायें – महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, उडिडयान, मूलबन्ध, जालन्धरबन्ध, विपरीतकर्णी, बज्रोली, शक्तिचालन हैं जो बुढ़ापा और मृत्यु को दूर करने वाली हैं और आठ प्रकार के दिव्य ऐश्वर्य को देने वाली हैं। सभी सिद्धों के लिए प्रिय ये मुद्रायें देवाताओं के लिए भी दुलर्भ हैं। अतः कहा जा सकता है कि मुद्रा हठयोग की वह स्थिति है जिसमें हठयोगी का चित्त व मन पूर्ण शान्त होकर मात्र आन्तरिक अनुभव को ही आसन्न ग्रहण करता है।

घेरण्ड संहिता में मुद्रा के लाभों के विषय में घेरण्ड ऋषि ने स्पष्ट व्याख्या की है:-

इदं तु मुद्रापटलं कथितं चण्डकपाले।
वल्लभं सर्वासिद्धिनां जरामरण नाशनम।। (३:६४)
नित्यमभ्यास शीलस्य जठराग्नि विविधनम्। (३:६७)[९]

महर्षि घेरण्ड कहते हैं – हे चण्डकपालि अभी तक मैंने जितनी मुद्राओं के बारे में तुम्हें बताया है वे सभी इच्छाओं की पूर्ति करती हैं। जरा मृत्यु से दूर रखती हैं। इनके नियमित अभ्यास से सब रोगों का निवारण होता है और जठराग्नि तीव्र होती है। घेरण्ड ऋषि ने मुद्राओं के शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक उद्देश्य को अधिक स्पष्ट रूप से व्याख्यायित करने का प्रयास किया है।

इसी प्रकार शिव संहिता में मुद्रा के लाभों के विषय में कहा गया है –

एतत्रयं प्रत्यनेन चतुर्वारं करोति च।
षण्मासाभ्यन्तर मृत्युं जयत्येव संशयः।। (४:४८)
एतत्रयस्य माहात्म्यं सिद्धो जानाति नेतरः
यज्ज्ञात्वा साधकाः सर्वे सिद्धिं सम्यक लभन्ति वै।(४:४६)[१०]

अर्थात् जो पुरूष मुद्रा, बन्ध और बेध इन तीनों का चार बार नित्य अभ्यास करता है वह छः महीने के अभ्यास द्वारा मृत्यु पर विजय पा लेता है।

अन्य श्लोक में इन तीनों (मुद्रा, बन्ध व वेध) की महत्ता से केवल सिद्ध पुरूष ही परिचित होते हैं। अन्य कोई भी इसे नहीं जान सकता। उक्त तीनों साधनों के ज्ञानोपरान्त साधक संपूर्ण सिद्धियों को प्राप्त करने में सफल हो जाता है।

उपर्युक्त सूत्रों से स्पष्ट होता है कि हठप्रदीपिका व घेरण्ड संहिता की भांति शिव संहिता में भी मुद्रा के अभ्यासों के लाभ समान ही हैं।

यौगिक मुद्राओं द्वारा विभिन्न रोगों की चिकित्साः वर्तमान जीवन शैली में मनोकायिक उपकरण (शारीरिक व मानसिक क्षमता) का अत्यधिक उपयोग व भौतिक जीवन शैली अपनाने के कारण मनुष्य को विभिन्न मनोकायिक रोगों का सामना करना पड़ रहा है। चिकित्सा अनुसंधानों ने जहाँ विभिन्न रोगों के उपचार हेतु विभिन्न प्रकार की औषधियों का निर्माण किया वहीं प्रतिस्पर्धात्मक जीवन शैली के कारण आदर्श स्वास्थ्य (मानसिक व शारीरिक) की प्राप्त के लिए विभिन्न चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। मनुष्य विभिन्न रोगों की चिकित्सा हेतु किसी भी प्रकार की औषधि के सेवन से ही अनेक रोगों से मुक्ति पा सकता है, वहीं दूसरी ओर नियमित व्यायाम तथा संतुलित आहार-विहार सहज स्वाभाविक रूप से काया को निरोग रखने में समर्थ है, पर वर्तमान द्रुतगामी व्यस्तूतम समय में कुछ तो आलस्यवश और कुछ व्यस्तता के कारण नियमित योग सबके द्वारा संभव नहीं हो पाता है, परन्तु योग में कुछ ऐसे साधन हैं जिनमें न अधिक श्रम की आवश्यकता है और न ही अधिक समय की, इसे मुद्रा चिकित्सा कहते हैं। विभिन्न हस्त मुद्राओं से अनेक व्याधियों से मुक्ति संभव है। हमारे हाथ की पाँचों उंगलियाँ वस्तुतः पंच तत्वों का प्रतिनिधित्व करती हैं –

१. अंगूठा - अग्नि
२. तर्जनी - वायु
३. मध्यमा - आकाश
४. अनामिका - पृथ्वी
५. कनिष्ठिका - जल

शरीर में पंचतत्व इस प्रकार से हैं, शरीर में जो ठोस है वही पृथ्वी तत्व है, जो तरल या द्रव है वह जल तत्व का प्रतिनिधित्व करता है। जो उष्मा है अग्नि तत्व, जो प्रवाहित होता है वह वायु तत्व और समस्त छिद्र आकाश तत्व हैं।

अंगुलियों को एक दूसरे से स्पर्श करते हुए स्थिति विशेष में जो इनकी आकृति बनती है उसे मुद्रा कहते हैं। मुद्रा चिकित्सा में विभिन्न मुद्राओं द्वारा असाध्य रोगों से भी मुक्ति संभव है। वस्तुतः विभिन्न तत्वों का प्रतिनिधित्व करती हुई हाथ की इन उँगलियों से विद्युत प्रवाह निकलते हैं, उंगलियां चक्र तथा सुसुप्त शक्तियां जागृत हो शरीर की स्वाभाविक रोग प्रतिरोधक क्षमता को आश्चर्यजनक रूप से उदीपन तथा परिपुष्ट करती हैं। पंच तत्वों का सन्तुलन सजह व स्वाभाविक रूप से शरीर को रोग मुक्त करता है। रोग विशेष के लिए निर्देशित मुद्राओं का तब तक अभ्यास करते रहना चाहिए जब तक कि उक्त रोग से मुक्ति न मिल जाए। मुद्राओं से केवल काया ही रोगमुक्त नहीं होती बल्कि आत्मोत्थान भी होता है, क्योंकि मुद्रायें सूक्ष्म शारीरिक स्तर पर कार्य करती हैं। मुद्राओं के अभ्यास का समय किसी भी रोग चिकित्सा के लिए चालीस मिनट का होता है।

योग के पौराणिक व प्रामाणिक ग्रन्थों में मुद्राओं के चिकित्सकीय लाभ बताये गये हैं। हठप्रदीपिका में कहा गया है कि महामुद्रा के अभ्यास से विभिन्न रोगों का उन्मूलन एवं अनेक दोष नष्ट हो जाते हैं।

क्षयकुष्ठगुदावर्तगुल्मार्जीण पुरोगमाः।
तस्थ दोषाः क्षयं यन्ति महामुद्रां तु योऽभ्यसते।।(३:१६)[11]

अर्थात् जो महामुद्रा का अभ्यास करता है उसके क्षय (तपेदिक), कुष्ठ रोग (चर्म रोग) कोष्ठबधता (कब्ज), वायु गोला (गैस), अजीर्ण (अपच), तथा संभावित अन्य अनेक दोष भी नष्ट हो जाते हैं।

इसी प्रकार घेरण्ड संहिता में भी मुद्राओं के विशेष चिकित्सीय व आध्यात्मिक लाभों की व्याख्या की गयी है। घेरण्ड संहिता में विपरीतकर्णी मुद्रा के प्रभावों के विषय में कहा गया हैः-

उर्ध्ववादः स्थिरोभूत्वा विपरीतकरीमता।
मुद्रां च साधयेनित्यं जरा मृत्युं च नाशयेत (३:४७)
स सिद्ध सर्वलोकेषु प्रलययेअपि न सीदति।।(३:४८)[12]

सिर को भूमि में लगाकर दोनों हाथ टेकें और दोनों पावों को ऊपर उठाकर कुम्भक के द्वारा वायु को रोकें, यही विपरीतकरणी मुद्रा है। इसका नित्य अभ्यास करने से वृद्धावस्था व मृत्यु नष्ट होती है। इसका अभ्यास करने वाला सब लोकों में सिद्धि सम्पन्न एवं प्रलयकाल में भी दुखित नहीं होता है।

यह मुद्रा अल्पक्रियाशील थाइराइड को संतुलित बनाता है तथा सर्दी, जुकाम व गले की सूजन व श्वसन सम्बन्धी रोगों का निरोधक है। यह भूख व पाचन क्रिया बढ़ाता है। यह मुद्रा कब्ज, गुदा भ्रंश, बवासीर, हार्निया का उपचार करता है। मस्तिष्क में विशेषकर सेरेब्रल कार्टेक्स, पिटयुटरी एवं पिनियल ग्रन्थि में रक्त संचार बढ़ जाता है, तथा मानसिक सतर्कता बढ़ती है।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य मुद्राओं के चिकित्सीय लाभ का संक्षिप्त विवरण यहाँ पर देना महतवपूर्ण हो जाता है।

१. ज्ञान मुद्रा - किसी भी सुखासन की स्थिति में बैठकर अंगूठे व तर्जनी के पोरों को आपस में सहज रूप से जोड़ने पर ज्ञान मुद्रा बनती है। इस मुद्रा के नित्य अभ्यास से चिड़चिड़ापन, क्रोध, चंचलता, अस्थिरता, चिंता, भय, घबराहट, व्याकुलता, अनिद्रा रोग, डिप्रेशन जैसी अनेक मन, मस्तिष्क सम्बन्धी व्याधियां नियमित अभ्यास से समाप्त हो जाती हैं।

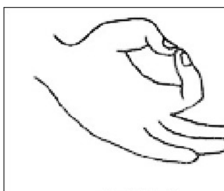

ज्ञान मुद्रा

२. अपान मुद्रा – अंगूठे से दूसरी उंगली (मध्यमा) व तीसरी उंगली (अनामिका) के पोरों को मोड़कर अंगूठे के पोर से स्पर्श करने से जो मुद्रा बनती है वह अपान मुद्रा कहलाती है।

इस मुद्रा के नियमित अभ्यास से कब्ज, मल-मूत्र की समस्या आदि दूर होती है। शरीर के विजातीय द्रव्यों व मल निष्कासित करने के लिए यह मुद्रा विशेष लाभकारी है।

अपान मुद्रा

३. सूर्य मुद्रा – अनामिका (तीसरी उंगली) के ऊपरी भाग नाखून वाले हिस्से को मोड़कर उंगली के जड़ पर स्पर्श करते हुए अंगूठे का दबाव अनामिका उंगली पर निरन्तर बनाये रखें तथा शेष उंगलियां सीधी रखें। इसे सूर्य मुद्रा कहते हैं। इस मुद्रा के अभ्यास से मोटापा दूर होता है तथा सर्दी जुकाम दूर होती है। साथ ही जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

सूर्य मुद्रा

४. वायु मुद्रा – तर्जनी को मोड़कर उसके नख भाग का दबाव (हल्का) अंगूठे के मूल भाग (जड़) में किया जाय तथा शेष उंगलियाँ अपनी सीध में सीधी रखी जाँय इसे वायु मुद्रा कहते हैं। इस मुद्रा के नियमित अभ्यास से वायु सम्बन्धी रोग - गठिया, जोड़ों का दर्द, वात, पक्षघात, हाथ-पैर या शरीर में कम्पन्न, लकवा, हिस्टीरिया, वायुशूल, गैस इत्यादि रोग ठीक हो जाते हैं।

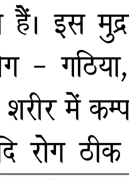

वायु मुद्रा

५. प्राण मुद्रा – अंगूठे से तीसरी उंगली अनामिका तथा चौथी उंगली कनिष्ठिका उंगलियों के पोरों को एक साथ अंगूठे के पोर से एक साथ मिलाकर शेष दोनों उंगलियों को अपनी सीध में रखने से जो मुद्रा बनती है वह वायु मुद्रा कहलाती है।

इस मुद्रा का लाभ हृदय रोग में रामबाण व नेत्र ज्योति बढ़ाने में परम सहायक है। यह मुद्रा प्राणशक्ति बढ़ाने वाली होती है। दृढ़ प्राणशकित जीवन को सुखद बनाती है। इस मुद्रा की विशेषता है कि इसमें अवधि की बाध्यता नहीं है।

प्राण मुद्रा

६. पृथ्वी मुद्रा – अनामिका उंगली के पोर को अंगूठे के पोर से स्पर्श करने से पृथ्वी मुद्रा बनती है। शेष तीनों उंगलियां अपनी सीध में खड़ी होनी चाहिए। इस मुद्रा का लाभ शारीरिक दुर्बलता को दूर करने में तथा स्फूर्ति व ताजगी देने के लिए किया जाता है। यह क्षीण काया व तनाव मुक्ति के लिए उत्कृष्ट मुद्रा है।

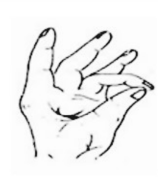

पृथ्वी मुद्रा

७. वरूण मुद्रा – कनिष्ठिका (सबसे छोटी उंगली) तथा अंगूठे के पोर को मिलाकर शेष उंगलियों को यदि अपनी सीध में रखा जाय तो वरूण मुद्रा बनती है।

इस मुद्रा के नियमित अभ्यास से रक्त संचार को संतुलित करने, चर्मरोग से मुक्ति दिलाने, रक्त अल्पतता (एनीमिया) को दूर करने में परम सहायक है। वरूण मुद्रा के अभ्यास से शरीर में जलतत्व की कमी को दूर किया जा सकता है। रक्त विकार आदि रोगों में यह मुद्रा रामबाण है।

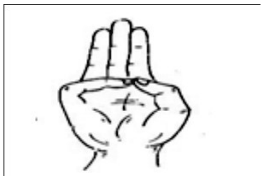

वरूण मुद्रा

८. अंगुष्ठ मुद्रा – बायें हाथ का अंगूठा सीधा खड़ा कर दाहिने हाथ से बायें हाथ की उंगलियों में परस्पर फंसाते हुए दोनों पंजों को ऐसे जोड़े कि दाहिना अँगूठा बायें अंगूठे को बाहर से आवृत कर ले। इस प्रकार जो मुद्रा बनेगी उसे अंगुष्ठ मुद्रा कहते हैं।

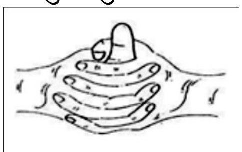

अंगुश्ठ मुद्रा

इस मुद्रा के अभ्यास से शरीर में उष्मा बढ़ती है चूंकि अंगूठे में अग्नितत्व होता है। अतः शरीर में जमा कफ सूखकर नष्ट हो जाता है। सर्दी, जुकाम, खांसी इत्यादि रोगों में यह अत्यन्त लाभकारी है। शीत प्रकोप व ठंड से कंपकंपाहट होने पर इस मुद्रा का प्रयोग त्वरित लाभ देता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि कुछ सामान्य सरल मुद्राओं का अभ्यास प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है। इन मुद्राओं का अभ्यास सभी अभ्यासी बच्चों से लेकर अशक्त वृद्ध तक कर सकते हैं।

इनके नियमित अभ्यास से प्रत्येक मनुष्य स्वयं को स्वस्थ व निरोगी रख सकता है। इन सामान्य मुद्राओं के अभ्यास से जहां व्यक्ति शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य अर्जित कर सकता है वहीं दूसरी ओर विभिन्न रोगोपचार में ये मुद्रायें अत्यन्त सहायक सिद्ध होती हैं।

निष्कर्ष – उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया है कि मुद्राओं के अभ्यास से व्यक्ति जहाँ शारीरिक स्थिरता को प्राप्त करता है वहीं दूसरी ओर मुद्रायें व्यक्ति के मन को एकाग्र करने व अन्य योग के उच्चतर अभ्यासों (धारणा, ध्यान व समाधि) के लिए शरीर व मन को तैयार करती हैं। हठप्रदीपिका व घेरण्ड संहिता में मुद्रा के महत्त्व को विशेष उल्लेखित किया गया है। मुद्रायें शरीर व मन पर नियंत्रण के लिए एक अनूठा साधन हैं। जो साधक योग के उच्चतर लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए दृढ़ संकल्प हैं उनके लिए मुद्रा एक उत्कृष्ट साधन है। मुद्राओं की सिद्धि के पश्चात् अन्य साधन स्वयं ही सिद्ध होने लगते हैं, क्योंकि मुद्राओं से मन स्थिर, एकाग्र व शान्त हो जाता है जो उच्चतर अभ्यासों के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त आज के इस आधुनिक परिप्रेक्ष्य में व्यस्त्तम जीवन शैली में मनुष्य स्वयं की देखभाल करने में लापरवाही करता है। समयाभाव के कारण व्यक्ति योग के अन्य अभ्यासों (आसन, प्राणायाम) के लिए समय नहीं निकाल पाता है। अतः इस दृष्टि से यदि व्यक्ति अपनी जीवन शैली में कुछ सामान्य मुद्राओं का अभ्यास करे तो वह शारीरिक व मानसिक व्याधियों से मुक्ति पा सकता है। इन अभ्यासों को करने के लिए किसी विशेष स्थान व समय की आवश्यकता नहीं है। इनका अभ्यास कहीं भी, कभी भी किया जा सकता है।

संदर्भ

१. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, 'आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध', योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर बिहार, १६६६, पृ. ४४७
२. वही, पृ. २६६
३. शिव संहिता ४:४०, पं० हरि प्रसाद त्रिपाठी, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी वाराणसी, २००६, पृ. ४८
४. गोरक्ष शतक सूत्र ३२ ओम प्रकाश तिवारी, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मंदिर समिति लोनावला पुणे, २०१३, पृ. ५०
५. हठ प्रदीपिका ३:६, स्वामी दिगम्बर जी, पीताम्बर झा, कैवल्यधाम श्री मन्माधव योग मंदिर समिति लोनावाला, पुणे १६८०, पृ. ७४-७५
६. घेरण्ड संहिता ३:१, ३:२, ३:३, स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, घेरण्ड संहिता, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, १६६७, पृ. २०५
७. शिव संहिता ४:४७, पूर्वोक्त, पृ. ४६
८. हठ प्रदीपिका, पूर्वोक्त, पृ. ३२
६. घेरण्ड संहिता – ३:६४, ३:६७, पूर्वोक्त, पृ. २७३
१०. शिव संहिता ४:४८, ४:४६, पूर्वोक्त, पृ. ४६
११. हठ प्रदीपिका ३:१६, पूर्वोक्त, पृ. ७०-७१
१२. घेरण्ड संहिता ३:४७, ३:४८, पूर्वोक्त, पृ. २४२

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

महिला सशक्तीकरण एवं स्वयं सहायता समूह : एक समाजशास्त्रीय विमर्श

❑ राकेश कुमार तिवारी

ग्रामीण विकास एक व्यापक कार्यक्रम है जिसमें कमजोर वर्गो पर विशेष जोर दिया गया है। जिसका उद्देश्य केवल आर्थिक विकास को ही प्रोत्साहित करना नहीं बल्कि आर्थिक सशक्तीकरण के माध्यम से व्यक्ति को सामाजिक व्यवस्था में सुनियोजित रूप से जोड़ना एवं सक्रिय बनाना भी है, जिससे वह एक सम्मानजनक प्रभावी जीवन जी सके। स्वयं सहायता समूहों के वर्तमान स्वरूप का प्रारंभ १९८० के प्रारम्भिक वर्षो में बांग्लादेश में एक प्रयोग के रूप में डॉ० मोहम्मद युनूस के द्वारा किया गया उन्होंने भूमिहीन तथा सीमान्त एवं मांगने वाली महिलाओं को इसमें सम्मिलित करते हुए लघु व्यापार को लघु ऋण पर आधारित करते हुए प्रारंभ किया, जिसनें बाद में सामाजिक, आर्थिक सशक्तीकरण के क्षेत्र में एक वृहद आन्दोलन का स्वरूप ग्रहण कर लिया। इस प्रकार विकास के क्षेत्र में एक नये दृष्टिकोण एवं उपागम का सूत्रपात हुआ। प्रस्तुत अध्ययन स्वयं सहायता समूह के संदर्भ में महिला सशक्तीकरण के मूल्यांकन का एक प्रयास रहा है।

विगत कुछ दशकों से स्त्री सशक्तीकरण प्रगति एवं विकास के क्षेत्र में किये जाने बाली सरकारी एवं गैर-सरकारी योजनाओं में केन्द्रीय तत्व है, जिसका परिणाम शिक्षा से लेकर ज्ञान विज्ञान, कृषि, प्रशासन एवं सेवा के अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्रों में महिलाओं की उल्लेखनीय उपस्थिति के रूप में अवलोकनीय है। स्त्रियाँ अपनी परम्परागत प्रस्थिति एवं भूमिका से इतर नये-नये क्षेत्रों में पदार्पण कर सफलता के मानदण्ड स्थापित कर रही हैं। उपलब्ध संसाधनों, जागरूकता एवं शिक्षा की सुलभता के कारण नगरीय भारत में महिलाओं की दशा में तीव्र सकारात्मक परिवर्तन आया है। लेकिन ग्रामीण भारत में परिवर्तन की प्रक्रिया धीमी रही है। विगत दशकों में संचार के साधनों एवं आवागमन की बेहतर व्यवस्था तथा शिक्षा की दशा में सुधार ने ग्रामीण भारत में बदलाव को एक आन्दोलन का स्वरूप दे दिया है जिसका प्रभाव ग्रामीण महिलाओं पर भी पड़ा है। भारत की कुल जनसंख्या का लगभग ७० प्रतिशत आज भी ग्रामीण भारत में निवास करता है, जिससे कृषि एवं उससे जुड़े व्यवसायों पर आजीविका एवं भरण-पोषण के लिए भारी दबाव है। अतः बहुआयामी विकास योजनाओं का सफल क्रियान्वयन एवं उसमें लोगों की समुचित सकारात्मक भागीदारी ही खुशहाल एवं सशक्त जीवन की ओर अग्रसर कर सकती है। ''विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जो ग्रामीण व्यक्तियों विशेषकर गरीबों के सतत उन्नयन की ओर प्रशस्त gksh gS[1]

ग्रामीण विकास एक व्यापक कार्यक्रम है जिसमें कमजोर वर्गो पर विशेष जोर दिया गया है। जिसका उद्देश्य केवल आर्थिक विकास को ही प्रोत्साहित करना नहीं बल्कि आर्थिक सशक्तीकरण के माध्यम से व्यक्ति को सामाजिक व्यवस्था में सुनियोजित रूप से जोड़ना एवं सक्रिय बनाना भी है,[2] जिससे वह एक सम्मान जनक प्रभावी जीवन जी सके। स्वयं सहायता समूहों के वर्तमान स्वरूप का प्रारंभ १९८० के प्रारम्भिक वर्षो में बांग्लादेश में एक प्रयोग के रूप में डॉ० मोहम्मद युनूस के द्वारा किया गया उन्होंने भूमिहीन तथा सीमान्त एवं मांगने वाली महिलाओं को इसमें सम्मिलित करते हुए लघु व्यापार को लघु ऋण पर आधारित करते हुए प्रारंभ किया, जिसनें बाद में सामाजिक, आर्थिक सशक्तीकरण के क्षेत्र में एक वृहद आन्दोलन का स्वरूप ग्रहण कर लिया। इस प्रकार विकास के क्षेत्र में एक नये दृष्टिकोण एवं उपागम का सूत्रपात हुआ।

भारत सरकार ने स्वयं सहायता समूह उपागम के

❑ शोध अध्येता, समाजशास्त्र, डी.डी.यू., गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर (उ.प्र.)

महत्व को स्वीकार करते हुए, इसे सन् १६६६ में स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में स्वरोजगार सृजन कर ग्रामीण निर्धनों को सशक्त बनाने के लिए अपनी ग्राम्य विकास योजना में सम्मिलित किया।

भारत में स्वयं सहायता समूहों का विकास एक प्रक्रिया है। सन् १६६२ के बाद स्वयं सहायता समूहों के विस्तार में उल्लेखनीय परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। भारत सरकार ने अपनी तत्कालीन योजनायें, जो एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत आती थीं, जैसे ट्राइसेम, ड्वाकरा, गंगा कल्याण योजना आदि को, पिछले अनुभवों में प्राप्त विसंगतियों को दूर करते हुए, स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना में सम्मिलित कर दिया और एकीकृत ग्राम्य विकास योजना के 'लाभार्थी' शब्द को 'स्वरोजगारी' नाम दिया।

स्वयं सहायता समूहों ने महिला प्रबलीकरण के क्षेत्र में दक्षिण भारतीय प्रान्तों में व्यापक असर दिखाया। नावार्ड[३] ने बताया कि स्वयं सहायता समूहों का विस्तार अधिकांशतः दक्षिण भारतीय राज्यों में फैला हुआ है उत्तर-पूर्व भारत में इसका विस्तार बहुत सीमित है। हार्डिमैन एवं मिडग्ली[४] के अनुसार व्यापक पैमाने पर स्वयं सहायता समूहों के निर्माण का तात्पर्य महिलाओं को भारत में सामाजिक विकास के आन्दोलन से जोड़ना है। महिलाओं के विकास में एक रणनीति के रूप में स्वयं सहायता समूह का अभ्युदय एक ऐसे समय में हुआ है जब महिलाओं की परिवार एवं ग्राम दोनों ही स्तरों पर संसाधनों एवं सुविधाओं तक पहुँच कम है। महिलाओं के विकास को आर्थिक विकास के सीमित दायरे से ऊपर उठकर देखना चाहिए। हमें उनसे संबंधित मुद्दों यथा समानता, स्वायत्तता, व्यवसायिक स्तर पर आत्म-निर्भरता एवं सामुदायिक दृढ़ता पर समूह के स्तर पर जोर देना चाहिए।

कार, चेन एवं झाबवाला[५] के अनुसार घर की चारदीवारी के भीतर महिलाएं अपने आपको कमजोर अनुभव करती हैं लेकिन समूह में भागीदारी एवं अन्य सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक संस्थाओं से अन्तःक्रिया के माध्यम से आत्मनिर्भरता का स्वयं सहायता समूह प्रारूप महिलाओं के व्यापक विकास एवं सशक्तीकरण पर जोर देता है।

फ्रैन्सिस सिन्हा एवं अन्य[६] ने अपने एक अध्ययन ''माइक्रो फाइनैन्स सेल्फ हेल्प ग्रुप्स इन इंडिया-लिविंग अपटू देयर प्रामिस'' में स्पष्ट किया है कि हमें स्वयं सहायता समूह से बहुत अधिक उम्मीदें नहीं करनी चाहिए। समूह के बहुत अधिक निर्माण पर जोर देने की बजाय हमारा प्रयास उनकी गुणवत्ता एवं प्रदर्शन पर अधिक केन्द्रित होना चाहिए। हमें समूहों एवं स्वरोजगारियों की और व्यवस्थित एवं रणनीतिक सहायता प्रदान करना चाहिए।

माइराडा[७] ने दक्षिण भारतीय प्रान्तों में अपने अध्ययन में पाया कि स्वयं सहायता समूहों ने स्वरोजगारियों की आर्थिक स्थिति बेहतर बनाने के अलावा परिवार में उनकी भूमिका का प्रसार किया है। इसके अतिरिक्त लोगों एवं संस्थाओं से संवाद करते समय उनके आत्मविश्वास में वृद्धि तथा सामाजिक राजनीतिक भागीदारी में भी विस्तार दिया है। हालांकि अशिक्षा के कारण जनसंचार एवं अन्य साधनों तक पहुँच कम है।

स्वयं सहायता समूह ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता रेखा के नीचे जीवन-यापन करने वाले, चिन्हित परिवारों के, लोगों का समूह है, जिनकी सामाजिक एवं आर्थिक दशा समान है। ये लोग अपनी आवश्यकता पूर्ति हेतु अपनी स्वतंत्र इच्छा से एक समूह में संगठित होकर नियमित रूप से १० या २० रू० या इससे अधिक बचत करके समूह के जरूरतमंद सदस्यों को ऋण का लेन-देन करते हैं।

यूनिसेफ[८] के अनुसार ''स्वयं सहायता समूह अपनी आवश्यकता पूर्ति तथा समस्या समाधान के लिए सामूहिक प्रयास करने का एक साधन है।''

अध्ययन क्षेत्र : प्रस्तुत अध्ययन में उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले के चरगांवा विकास खण्ड की कुल ४२ ग्राम पंचायतों में से उन ३४ ग्राम पंचायतों का चयन किया गया है जहां पर स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से स्वरोजगार की गतिविधियाँ चल रही हैं।

अध्ययन का उद्देश्य : प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य निर्धनता रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले लोगों पर स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से स्वरोजगार की गतिविधियों एवं जीवन के अन्य पक्षों पर पड़ने वाले प्रभावों की जानकारी प्राप्त करना है। हम जानते हैं कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था में जाति, धर्म एवं संस्कृति के अन्य तत्व व्यक्ति की सामाजिक प्रस्थिति एवं भूमिका के निर्धारण में प्रमुख कारक हैं। अतः यह जानने का प्रयास किया गया है कि इस योजना में सम्मिलित स्वरोजगारियों की सामाजिक, धार्मिक, जातीय, पारिवारिक एवं शैक्षिक पृष्ठभूमि समूह के सदस्य के रूप में उनके संबंधों को किस प्रकार प्रभावित करती है? स्वयं सहायता समूहों में उनकी भागीदारी उन्हें सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं मनोवैज्ञानिक रूप से सशक्त बनाने में किस प्रकार योगदान कर रही है?

शोध प्रारूप : प्रस्तुत अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों तथ्यों का प्रयोग किया गया है। जहाँ प्राथमिक तथ्यों के संकलन के लिए साक्षात्कार अनुसूची एवं अवलोकन पद्धति का उपयोग किया गया है वहीं द्वितीयक तथ्यों के लिए पुस्तकालय, शासकीय प्रतिवेदन, विभिन्न अधिनियम, इंटरनेट पर प्रकाशित शोध सामग्री एवं समाचार पत्र पत्रिकाओं का उपयोग किया गया है। चरगांवा विकास खण्ड में महिलाओं के कुल १८० समूह कार्यरत हैं जिनमें १०२ समूहों को निर्मित हुए पाँच वर्ष से अधिक हो गये हैं और उनको द्वितीय ग्रेड का बैंक से आर्थिक सहयोग भी प्राप्त हो चुका है। इनमें कुल ११३६ स्वरोजगारी सक्रिय हैं, जिसमें से कुल २८० स्वरोजगारियों का उद्देश्यपूर्ण निदर्शन पद्धति का उपयोग करते हुए चयन करके साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से सूचना संकलित की गयी है।

विश्लेषण : किसी भी व्यक्ति के विकास में उसकी सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमि की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सामाजिक, आर्थिक दशाएं व्यक्ति के प्रदत्त पद, जीवन शैली, वर्गस्थिति तथा आकांक्षाओं व स्वतंत्रताओं को ही नहीं निर्धारित करतीं अपितु जीवन के बीच आवश्यकता पूर्ति की संघर्षात्मक क्षमताओं को भी निर्धारित करती है। अतः उनकी परिचयात्मक सूचनाओं का विश्लेषण किया गया है। भारत में जाति किसी भी व्यक्ति के कार्य, परिस्थिति तथा उपलब्ध अवसरों के साथ ही साथ उसकी कठिनाइयों को भी निर्धारित करती है। जाति भेद ग्रामीण क्षेत्र में लोगों के पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन प्रणालियों, उनके निवास-संस्थानों तथा सांस्कृतिक प्रतिमानों में विभेद को निश्चित करती है।[६]

तालिका सं०-१

उत्तरदाताओं की जाति

जाति	संख्या	प्रतिशत
सामान्य	-	०
अन्य पिछड़ा वर्ग	२०८	७४.२८
अनु०जाति/जनजाति	५५	१९.६४
अल्पसंख्यक	१७	६.०७
योग	२८०	१००

तालिका सं०-१ के अनुसार वर्गवार वर्गीकरण में पाया गया कि सामान्य वर्ग की महिलाएं शून्य हैं। ज्यादातर महिलाएं अन्य पिछड़ा वर्ग (७४.२८ प्रतिशत) से तथा उसके बाद अनुसूचित जाति एवं जनजाति से (१९.६४ प्रतिशत) है। सबसे कम प्रतिनिधित्व अल्पसंख्यक वर्ग से है (६.०७ प्रतिशत) है। अध्ययन क्षेत्र में यह प्रतिनिधित्व कमजोर वर्ग में व्याप्त भारी निर्धनता से मुक्ति के रूप में किये जाने वाले प्रयास हेतु इस अवसर को देखा जा सकता है। व्यवसाय व्यक्ति की प्रतिष्ठा तथा जीवन शैली का निर्धारक होता है। परम्परागत समाज में जाति एवं व्यवसाय के बीच घनिष्ठ संबंध रहा है। मैकाइवर एवं पेज के अनुसार व्यक्ति की वर्ग स्थिति पूर्ण रूप से उसके व्यवसायिक स्थिति पर निर्भर है।[१०] **प्रस्तुत अध्ययन** में देखा गया कि पिछड़ावर्ग के लोग अच्छे व्यवसायों यथा दुग्धपालन, फल, सब्जी एवं किराना आदि व्यवसाय में लगे हैं। जबकि अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोग तुलनात्मक रूप से कम पूँजी वाले व्यवसायों जैसे बकरी पालन, दोना पत्ता आदि से जुड़े हैं जो उनकी कमजोर आर्थिक स्थिति को दर्शाता है। गल्ला व्यवसाय एवं मत्स्य पालन व्यवसाय में उनकी भागीदारी शून्य हैं जो बताता है कि उनके पास पूँजी एवं

भूमि दोनों की ही स्थिति अत्यन्त कमजोर है।

आधुनिकीकरण एवं लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं ने धार्मिक कट्टरता को कमजोर किया है किन्तु अभी अनेक धार्मिक परिवर्तनों के बाद भी धर्म का लोगों के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव है।

तालिका संख्या-२

उत्तरदाताओं का धर्म

धर्म	संख्या	प्रतिशत
हिन्दू	२६५	६४.६४
इस्लाम	१५	५.३६
योग	२८०	१००

तालिका संख्या २ के अनुसार अध्ययन के धार्मिक तथ्य इंगित करते हैं कि ६४.६४ प्रतिशत स्वरोजगारी हिन्दू है मात्र ५.३५ प्रतिशत स्वरोजगारी अल्पसंख्यक (मुसलमान) हैं। इस प्रकार मुस्लिम महिलाओं की भगीदारी उनकी आर्थिक सशक्तीकरण की योजनाओं में अल्प प्रभाव की ओर संकेत करती है।

आयु एक महत्वपूर्ण समाजशास्त्रीय परिवर्त्य है। आयु व्यक्ति की वह महत्वपूर्ण जैविकीय विशेषता है जिसके आधार पर कोई भी समाज व्यक्ति को सामाजिक प्रस्थिति प्रदान करता है।

तालिका संख्या-३

उत्तरदाताओं का आयु

आयु	संख्या	प्रतिशत
१८-२५	४०	१४.२८
२६-३५	८०	२८.५७
३६-४५	९७	३४.६७
४६-५५	६३	२२.५
५६ से ऊपर	०	०
योग	२८	१००

तालिका संख्या ३ के अनुसार १४.२८ प्रतिशत स्वरोजगारी १८-२५ वर्ष के बीच एवं ३४.६७ प्रतिशत स्वरोजगारी ३६-४५ वर्ष के बीच हैं। शेष ४६ से ५५ वर्ष के बीच हैं। इस प्रकार देखें तो सबसे अधिक मध्य आयु अर्थात ३६ से ४५ वर्ष के बीच की महिलाएं स्वरोजगार की ओर अग्रसर हैं। यह वह आयु है जब व्यक्ति पर पोषण एवं पारिवारिक दायित्वों के निर्वहन की जिम्मेदारी सबसे अधिक होती है।

नेहरू" जी ने कहा था "अज्ञान और निरक्षरता,परिहार्य दरिद्रता और व्याधियों तथा अवसरों में अनावश्यक विषमताओं का निराकरण करना अपने आप में मूल्यवान लक्ष्य है। इससे हमारे मनवांछित जीवन स्वातंत्र्य का विस्तार होता है। शिक्षा ज्ञान के अतिरिक्त जन सामान्य की योग्यता, क्षमता का सम्वर्द्धन कर उनके जीवन-यापन के स्तर को सुधारने में सहायक है।"

तालिका संख्या-४

उत्तरदाताओं की शिक्षा

शिक्षा	संख्या	प्रतिशत
निरक्षर	१०५	३७.५
साक्षर	८	२८.५७
प्राथमिक	५७	२०.३६
जू० हाईस्कूल	३३	११.७६
१०वीं०	५	१.७८
योग	२८०	१००

तालिका संख्या ४ के अनुसार प्राप्त तथ्य बताते हैं कि ३७.५ प्रतिशत स्वरोजगारी निरक्षर हैं, २८.५७ प्रतिशत साक्षर, २०.३६ प्रतिशत जूनियर हाईस्कूल पास एवं मात्र १.७८ प्रतिशत दसवीं पास हैं।

वैवाहिक स्थिति - प्रत्येक सामाजिक संस्था का विकास परम्परागत समाजों में धार्मिक विश्वासों तथा नियमों के अनुसार होता रहा है। यही कारण है कि जब कभी धार्मिक मान्यताओं में परिवर्तन होता है, तब उससे संबंधित संस्थाओं के रूप में भी परिवर्तन होने लगता है। भारतीय समाज में विवाह अतिशय महत्वपूर्ण है। हिन्दू जीवन में विवाह एक धार्मिक संस्कार है जिसका एकमात्र उद्देश्य व्यक्ति को अपने धार्मिक एवं सामाजिक कर्तव्यों को पूरा करने का अवसर प्रदान करना है। इस संबंध में कपाड़िया ने लिखा है, "हिन्दू विचारकों ने जब धर्म को विवाह का सर्वोच्च उद्देश्य तथा सन्तानोत्तपत्ति को इसका दूसरा उद्देश्य माना तो स्वभाविक रूप से इस पर धर्म का अधिपत्य हो गया।"[12]

तालिका संख्या-५

उत्तरदाताओं की वैवाहिक स्थिति

वैवाहिक स्थिति	संख्या	प्रतिशत
विवाहित	२४८	८८.५७
अविवाहित	०	०
विधवा	३२	११.४३
परित्यक्त/तलाक शुदा	०	०
योग	२८०	१००

तालिका सं०-५ के अनुसार समूह में सम्मिलित ८८.५७ प्रतिशत महिलाएं विवाहित हैं तथा ११.४२ प्रतिशत विधवा, अविवाहित/परिव्यक्त, तलाकशुदा महिलाए शून्य हैं। वैवाहिक स्थिति का व्यक्ति की सामाजिक, आर्थिक गतिविधियों पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। निर्धनता एवं वैवाहिक संबंधों के बीच महत्वपूर्ण संबंध पाया जाता है। वैवाहिक संबंध स्थापित करने समय आर्थिक स्थितियाँ संबंधों के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वहन करती हैं। **व्यक्ति आर्थिक** जरूरतों को पूरा करने के लिए अपनी योग्यता ,क्षमता एवं रूचि के अनुसार व्यवसाय का चयन करता है, जिसमें उसकी परम्परागत सामाजिक स्थिति भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

तालिका संख्या-६

उत्तरदाताओं की आर्थिक स्थिति

आय (मासिक)	संख्या	प्रतिशत
१५०० से कम	३०	१०.७१
१५०० से ३०००	१७३	६१.७६
३००० से ५०००	५६	२०.००
५००१-१०,०००	१६	५.७१
१०००० से अधिक	५	१.७६
योग	२८०	१००

तालिका संख्या ६ के अनुसार अपने चयनित व्यवसायों से १०.७ प्रतिशत स्वरोजगारी १५०० प्रतिमाह से कम आमदनी करते हैं, जबकि ६१.७६ प्रतिशत स्वरोजगारी १५००-३००० तथा २० प्रतिशत स्वरोजगारी ३०००-५००० मासिक आय प्राप्त कर लेते हैं। मात्र ५.७१ प्रतिशत स्वरोजगारी ५०००-१०००० के बीच कमाते हैं। १०००० से उपर आय प्राप्त करने वाले स्वरोजगारियों (१.७६ प्रतिशत) नगण्य है। ऐसा पाया गया कि अनुसूचित जाति एवं जनजाति के स्वरोजगारियों की आमदनी निर्धनता रेखा के नीचे है जबकि निर्धनता रेखा से उपर की आमदनी वाली ज्यादातर महिलाएं पिछड़ी वर्ग से आती हैं तथा तुलनात्मक रूप से बेहतर रोजगार दुग्ध व्यवसाय, गल्ला, मत्स्य पालन आदि में लगी हैं।

परिवार समाज की आधारभूत इकाई है। परिवार किसी भी समाज में सामाजिक नियंत्रण और समाजीकरण का प्राथमिक माध्यम है। हिन्दू परिवार मुख्य रूप से संयुक्त परिवार होते हैं।

तालिका संख्या ७

उत्तरदाताओं की पारिवारिक स्थिति

परिवार का स्वरूप	संख्या	प्रतिशत
एकाकी	१८५	६६.०७
संयुक्त	९५	३३.९३
योग	२८०	१००

यदि हम परिवार के स्वरूप पर चर्चा करें तो ६६.०७ प्रतिशत महिलाएं एकाकी परिवार से तथा ३३.९३ प्रतिशत महिलाएं ही संयुक्त परिवार से आती हैं। परिवार का प्रकार व्यक्ति को सामाजिक एवं आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने तथा सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संयुक्त परिवार जहाँ अधिक सहयोगात्मक होता है वहीं एकल परिवार में आर्थिक एवं अन्य दायित्वों के निर्वाह की आवश्यकता अधिक महसूस होती हे। इसलिए स्वयं सहायता समूहों में एकल परिवार के स्वरोजगारियों की सदस्यता एवं सक्रियता अधिक पायी गयी।

स्वच्छता के प्रति उनके जागरूकता

तालिका संख्या ८

शौचालय की स्थिति

शौचालय की उपलब्धता	संख्या	प्रतिशत
हाँ	९५	३३.९३
नहीं है	१८५	६६.०७
योग	२८०	१००

स्वच्छता के प्रति उनकी जागरूकता को लेकर जब

प्रश्न पूछा गया तो पता चला कि मात्र ३३.६३ प्रतिशत महिलाएं ऐसी थीं जिनके छोटे से कच्चे/पक्के या टीन के आवास में शौचालय है। उसमें भी ज्यादातार उसका उपयोग गोबर के उपले रखने या भोजन बनाने के लिए सूखी लकड़ियाँ रखने हेतु करती हैं। पर्यावरणीय स्वच्छता के प्रति चेतना का घोर अभाव पाया गया।

आज सरकारी योजनाओं के बारे में सूचना के अनेक स्रोत है। अपने अधिकार एवं दायित्व को लेकर सजग हो रही महिलाएं शासन द्वारा संचालित योजनाओं की जानकारी भी रखती हैं। अध्ययन क्षेत्र में सुविधादाता एक ऐसा व्यक्ति है जिसको जिला ग्राम्य विकास अभिकरण एवं विकास खण्ड ने गांवों में स्वयं-सहायता समूहों के निर्माण के लिए चुना है। यह विकास खण्ड में रहने वाला ही एक व्यक्ति होता है।

तालिका संख्या-९

स्वयं सहायता समूह की गतिविधियों के चार बड़े स्रोत

गतिविधियों के स्रोत	आवृत्ति	प्रतिशत
आस-पास के समकक्ष लोगों से	२१	७.५०
परिवार के अन्य सदस्य	१८	६.४३
सरकारी संगठन (विकास-खण्ड)	२४	८.५७
सुविधादाता के कहने पर	२०५	७३.२२
स्वयं सुविधादाता से सम्पर्क कर	१२	४.२८
योग	२८०	१००

तालिका संख्या ९ के अनुसार ७३.३२ प्रतिशत स्वरोजगारियों का मानना था कि वो सुविधादाता के कहने पर ही समूह निर्माण की प्रक्रिया में सम्मिलित हुई जबकि ८.५७ प्रतिशत महिलाएं विकास खण्ड या बैंक कर्मचारियों के प्रयास से। ७.५० प्रतिशत स्वरोजगारियों को आस-पास के समूहों से तथा ६.४३ प्रतिशत को उनके परिवार के सदस्यों ने समूहों के प्रति जागरूक किया।

तालिका संख्या-१०

स्वयं सहायता समूह के गठन का उद्देश्य

समूह गठन का उद्देश्य	आवृत्ति	प्रतिशत
आर्थिक स्थिति का उन्नयन	१८	६.४३
बचत प्रवृत्ति को प्रोत्साहन	५८	२०.७१
सामाजिक स्थिति का उन्नयन	०	०
वित्तीय सहायता प्राप्त करना	२७	९.६४
आन्तरिक लेन देन करना या उसमें भागीदारी	१४६	५२.१५
सामूहिक गतिविधियों में भागीदारी	१८	६.४३
नियमित मुलाकात के लिए	१३	४.६४
योग	२८०	१००

तालिका सं०-१० के अनुसार एक प्रश्न के उत्तर में ५२.१५ प्रतिशत महिलाओं ने आन्तरिक लेन देन कर अपने आर्थिक रोजगारपरक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समूह में स्वयं को सम्मिलित किया तथा ९.६४ प्रतिशत ने वित्तीय लेन-देन के लिए । २०.७१ प्रतिशत महिलाएं अपने बचत की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करने के लिए, ४.६४ प्रतिशत नियमित मुलाकात के लिए तथा शेष अन्य सामाजिक कारणों के लिए।

भ्रष्टाचार के मुद्दे पर उनका पक्ष जानने के लिए जब प्रश्न पूछा गया तो शत प्रतिशत स्वरोजगारियों ने माना कि विकास खण्ड एवं सुविधादाता को समूह बनाने के लिए उनको कोई धनराशि नहीं देनी पड़ी। लेकिन बैंक की कार्य प्रणाली से वे वेहद नाराज थीं।

उन्होंने बताया कि खाता-खोलने से लेकर ऋण प्रदान करने तक बैंक ने उन्हें बार-बार दौड़ाया और वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए अनैतिक धन की मांग की। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री एवं नोवल पुरस्कार विजेता अर्मत्य सेन[13] ने अपनी पुस्तक ''भारतीय राज्यों के विकास'' में उत्तर प्रदेश के विकास और उसके संकेतकों की व्यापक समीक्षा की है। सेन ने सरकारी कार्यक्रमों विशेषकर सार्वजनिक वितरण व्यवस्था, एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम आदि के बारे में क्षेत्र आधारित अन्वेषण के आधार पर बताया कि विकास योनजाओं में संगठित रूप से लूट एवं भ्रष्टाचार व्याप्त है। इन्होंने

कहा कि इन कार्यक्रमों में बड़े पैमाने पर उन लोगों को लाभ पहुँचाया गया जो इसके पात्र नहीं थे, विकास की रूपरेखा बनाने में ग्रामीणों की उपेक्षा की गयी, बैंक प्रबन्धकों ग्राम सेवकों एवं अन्य अधिकारियों द्वारा घूस की वसूली की गयी। प्रस्तुत अध्ययन भी सेन की बातों को पुष्ट करता है।

प्रशिक्षण कार्यक्रम योग्यता क्षमता के निर्माण एवं सही व्यवसाय के चयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

तालिका संख्या-११

प्रशिक्षण कार्यक्रमों का अनुभव

प्रशिक्षण कार्यक्रम का अनुभव	संख्या	प्रतिशत
अनुपयोगी	०	०
कुछ विशेष हद तक उपयोगी	२५	१५.८२
उपयोगी	४०	२५.३२
अत्यन्त उपयोगी	९३	५८.८६
योग	१५८	१००.००

तालिका संख्या ११ के अनुसार ५८.८६ प्रतिशत स्वरोजगारियों का मानना था कि प्रशिक्षण कार्यक्रम अत्यन्त उपयोगी, २५.३२ प्रतिशत उपयोगी एवं १५.८२ प्रतिशत ने कुछ हद तक उपयोगी बताया।

निर्णय लेने की प्रक्रिया में भागीदारी समूह के सदस्यों में परस्पर अन्तः क्रियात्मक संबंधों को अभिव्यक्त करती है। प्रायः शिक्षित लोग अशिक्षित एवं कम पढ़े लिखे लोगों को महत्व नहीं देते हैं।

तालिका संख्या-१२

निर्णय लेने की प्रक्रिया में भागीदारी

लिए गये निर्णयों की प्रकृति	संख्या	प्रतिशत
सामूहिक रूप से	२२६	८०.७१
कुछ प्रभावी सदस्यों द्वारा	१७	६.०८
समूह के नेतृत्व द्वारा तथा बाद में सदस्यों द्वारा अनुमोदन	२८	१०.००
केवल समूह के नेतृत्व द्वारा	९	३.२१
योग	२८०	१००.००

निर्णय लेने की प्रक्रिया स्वयं के सशक्तीकरण का भी एक महत्वपूर्ण पक्ष है। तालिका संख्या १२ के अनुसार ८०.७१ प्रतिशत स्वरोजगारी मानते हैं कि निर्णय सामूहिक रूप से सभी सदस्य लेते हैं एवं १० प्रतिशत लोग समूह के नेतृत्व द्वारा लिये गये निर्णयों का सम्मान करते हैं मात्र ३.२१ प्रतिशत मानते थे कि समूह के नेतृत्व का बर्चस्व है और ६.०८ प्रतिशत का कहना था कि कुछ प्रभावी सदस्यों के निर्णय को समूह के अन्य सदस्यों के निर्णय से उपर रखा जाता है।

महिला सशक्तीकरण के अनेक आयाम यथा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं मनोवैज्ञानिक महत्वपूर्ण हैं। किसी स्त्री को सामाजिक रूप से सशक्त तब कहा जायेगा जब वह सामाजिक गतिविधियों में मुक्त रूप से बिना किसी संस्थागत बाधा के भागीदार हो सके। किसी महिला का स्वतंत्र रूप से अपनी आवश्यकता पूर्ण करने के लिए आवागमन का निर्णय उसकी स्वतंत्रता एवं प्रबलता का संकेत करता है। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों का घर से बाहर निकलना कठिन था।

तालिका संख्या-१३

अपने गांव से दूसरे गांव तक की यात्रा

पास के गांव तक की यात्रा	संख्या	प्रतिशत
प्रायः अकेले	११९	४२.५०
प्रायः समूह के सदस्यों के साथ	६३	२२.५०
हर बार समूह के सदस्यों के साथ	९८	३५.००
योग	२८०	१००.००

जब समूह में सदस्यों से इस सन्दर्भ में प्रश्न पूछा गया तो ४२.५० प्रतिशत स्वरोजगारियों ने कहा कि वे अपने गांव से दूसरे गांव तक प्रायः अकेले यात्रा कर सकती हैं, २२.५० प्रतिशत प्रायः अपने समूह के सदस्यों के साथ ही जाती हैं, ३५.०० प्रतिशत हर बार समूह के सदस्यों के साथ यात्रा करती हैं।

तालिका संख्या-१४

अपनें गांव से पास के कस्बे तक की यात्रा

गाँव से शहर तक की यात्रा	संख्या	प्रतिशत
प्रायः अकेले	८७	३१.०७
प्रायः समूह के सदस्यों के साथ	७६	२७.१४
हर बार समूह के सदस्यों के साथ	११७	४१.७९
योग	२८०	१००

अगर बात कस्बे तक यात्रा करने की हो तो ३१.०७

प्रतिशत स्वरोजगारियों ने माना कि वे अकेले कस्बे तक जा सकती हैं, २७.१४ प्रतिशत प्रायः समूह के सदस्यों के साथ तथा ४१.७६ प्रतिशत हर बार समूह के सदस्यों के साथ यात्रा करती हैं।

व्यक्ति की गतिशीलता उसके व्यवसाय के स्वरूप, पारिवारिक परिवेश एवं आयु पर भी निर्भर करती हैं। अध्ययन में देखा गया कि ६२ प्रतिशत लोग दोना पत्ता, अंडा, फेरी, चाय-मिठाई, कबाड़ी, श्रृंगार एवं सैलून तथा सब्जी के व्यवसाय में लगे हैं अतः इनका आवागमन अनिवार्य है। दोना पत्ता का काम या फेरी का काम करने वाले महिलाएं पहले से भी जंगल में एवं गांव-गांव आती जाती थीं अतः उनकी गतिशीलता समूह में आने से नहीं बढ़ी पर शेष पर समूह का प्रभाव अवश्य पड़ा है।

स्वरोजगारियों के आवागमन पर परिवार के सदस्यों की अनुक्रिया उनके परिवार के सहयोग एवं गरिमापूर्ण जीवन के महत्वपूर्ण पक्ष की ओर संकेत करती है। इस संबंध में प्रश्न पूछने पर ३५ प्रतिशत महिलाओं ने बताया कि वे अपने गाँव से पास के गाँव तक बिना पूछे आ जा सकती है पर अगर कस्बे तक जाना हो तो मात्र २७.१४ प्रतिशत ही बिना पूछे जा सकती हैं। पास के गाँव एवं कस्बे तक कभी-कभी पूछ कर जाने वालों का प्रतिशत क्रमशः २६.२७ एवं ३१.०७ प्रतिशत है, इस क्रम में हमेशा पूछ कर जाने वाली महिलाओं का प्रतिशत क्रमशः ३८.६३ एवं ४१.७६ प्रतिशत है। बिना पूछे आने-जाने वाले महिलाओं में ज्यादातर वे महिलाएं हैं जो या तो विधवा हैं या जिनकी आयु अधिक है।

इस समूह वर्ग की अधिकतर महिलाएँ अपने घर की स्वामी है अथवा पति के किसी व्यवसाय में न होने के कारण परिवार के भरण-पोषण के लिए एक मात्र जिम्मेदार व्यक्ति हैं। घर के संचालन में उनकी वित्तीय भागीदारी अधिक है। वे महिलाएँ भी इसी वर्ग में सम्मिलित है जिनका पति बाहर नौकरी करता है और परिवार में कोई जिम्मेदार पुरूष सदस्य नहीं है। वे महिलाएँ जो कभी-कभी पूछकर जाती है उनमें अधिकांशतः का कहना है कि बताकर जाती हैं ताकि घर वालों को परेशानी न हो कि कहाँ गयी है।

सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि समूह में सक्रिय होने के पाँच वर्ष बाद भी तब जब वह आर्थिक रूप से पहले से अधिक स्वावलम्बी हैं, पास के गाँव तक जाना हो तो ३८.६३ प्रतिशत महिलाओं को हमेशा पूछना पड़ता है। यह आंकड़ा पास के कस्बे तक पहुँचकर ४१.७६ हो जाता है। बिना पूछे शहर तक अकेले जाना हो तो यह आँकड़ा और बढ़ सकता है। आर्थिक सशक्तीकरण की प्रक्रिया से जुड़ने के बाद भी महिलाएँ पितृसत्तात्मक सामाजिक ढाँचे के पुरूष बर्चस्व की शिकार हैं फिर भी धीमा प्रारंभ ही सही इस योजना से जुड़ने के बाद उनके जीवन में उल्लेखिनीय बदलाव आया है।

आत्मविश्वास व्यक्ति की सफलता का मूलमंत्र है। स्वरोजगारियों से जब पूछा गया कि क्या उनमें परिवार में आयी किसी समस्या का सामना करने का आत्मविश्वास है।

तालिका संख्या-१५

स्वयं सहायता समूह में सम्मिलित होने से पूर्व एवं पश्चात आत्मविश्वास की स्थिति

सामाजिक पक्ष	समूह में शामिल होने से पूर्व (हॉं/नहीं)				समूह में शामिल होने से पश्चात(हॉं/नहीं)			
	सं०	प्रति०	सं०	प्रति०	सं०	प्रति०	सं०	प्रति०
किसी समस्या का सामना करने के लिए आत्मविश्वास	५०	२०.७१	२२०	७६.२६	२१८	७७.८६	६२	२२.१४
किसी आर्थिक संकट का सामना करने का विश्वास	६८	२४.२६	२१२	७५.७१	२३१	८२.८५	४६	१७.५०
परिवार में भवन निर्माण, बच्चों की शिक्षा एवं घरेलू वस्तुएं खरीदनें में भागीदारी	१०३	३६.७६	१७७	६३.२१	१८३	६५.३६	६७	३४.६४
परिवार के लोगों का आपके प्रति सम्मानजनक व्यवहार	१४८	५२.८५	१३२	४७.१४	१७३	६१.७६	१७	३८.२१

समूह में सम्मिलित होने के पूर्व २०.७१ प्रतिशत स्वरोजगारी ऐसी थीं जिनमें किसी संकट का सामना करने का साहस नहीं था लेकिन सामूहिक गतिविधियों में भागीदारी के बाद ७७.८३ प्रतिशत महिलाओं ने कहा कि उनमें परिवार में आये किसी संकट का सामना कर पाने का आत्मविश्वास है। शेष जिनमें अब भी आत्मविश्वास नहीं था कि वे परिवार में आये किसी संकट का सामना कर सकती हैं इसका कारण उनमें व्यवसायिक असफलता अथवा परिवार का असहयोगात्मक रवैया प्रतीत होता है। आर्थिक सशक्तीकरण एवं सामूहिक गतिविधियों में भागीदारी व्यक्ति में आत्मविश्वास उत्पन्न करती है और इसका प्रभाव व्यक्तित्व के अन्य पक्षों पर भी दिखायी देता है। एक प्रश्न के उत्तर में ६५.३६ प्रतिशत महिलाओं ने कहा कि वे भवन निर्माण, बच्चों की शिक्षा या घरेलू वस्तुओं की खरीदारी में स्वयं निर्णय लेती हैं या निर्णय लेने की प्रक्रिया में भागीदारी करती हैं जबकि समूह में सम्मिलित होने के पूर्व यह स्थिति मात्र ३६.७६ प्रतिशत महिलाओं की थी। यह वृद्धि समूह के महिला सशक्तीकरण में योगदान को स्पष्ट करती है। यद्यपि ३४.६४ प्रतिशत स्वरोजगारियों के पास अब भी पुरूष वर्चस्व के कारण निर्णय लेने का अधिकार या निर्णय लेने की प्रक्रिया में भागीदारी नहीं है वे पैसे तो कमाती हैं पर निर्णय परिवार के पुरूषों या बच्चों के हिसाब से करना पड़ता है।

राजनीतिक सशक्तीकरण के बिना महिलाएँ वर्तमान समाज व्यवस्था में सफल नहीं हो सकतीं। १९९३ में संविधान का ७३वां संशोधन, जो पंचायतों में महिलाओं को ३३ प्रतिशत की अनिवार्य भागीदारी प्रदान करता है, इस दिशा में उल्लेखनीय कदम था। परन्तु परिवर्तन के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति स्वयं सक्रिय प्रयास करें। व्यक्ति के भीतर राजनीतिक चेतना का विकास हो और वह राजनीतिक भागीदारी में महत्व को समझे। राजनीतिक चेतना के मापन के कुछ संकेतक यथा, निकाय चुनावों, ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत, ब्लाक पंचायतों तथा प्रान्तीय एवं राष्ट्रीय पंचायतों में मतदान करना, प्रचार करना, राजनीतिक दल की सक्रिय सदस्यता लेना या स्वयं प्रत्याशी होना आदि हमें महत्वपूर्ण जानकारी देते हैं। **प्रस्तुत अध्ययन** में दो संकेतकों एक उनके मतदान करने संबंधी व्यवहार और दूसरे स्वयं प्रत्याशिता करने संबंधी व्यवहार के आधार पर राजनीतिक जागरूकता एवं सक्रियता जानने की कोशिश की गयी।

मतदान करनें के प्रति जागरूकता

तालिका संख्या-१६

ग्राम पंचायत चुनाव में

पिछले बार वोट दिया था	संख्या	प्रतिशत
हॉं	२३४	८३.५७
नहीं	४६	१६.४३
योग	२८०	१००.००

८३.७३ प्रतिशत महिलाओं ने ग्राम पंचायत में मतदान किया जबकि १६.४३ प्रतिशत महिलाओं ने या तो रूचि नहीं दिखायी या उनका नाम मतदाता सूची में नहीं था। मतदान करने वाली महिलाओं में ६.४३ प्रतिशत ऐसी थीं जिन्होने मतदान करने के अलावा राजनीतिक सक्रियता दिखाते हुए चुनाव प्रक्रिया में प्रत्याशी के रूप में भाग भी लिया। घर से बाहर अनेक व्यक्तियों एवं संस्थाओं के सम्पर्क में आने से राजनीति के बारे में उनकी जानकारी एवं रूचि में वृद्धि हुई है। समूह में परस्पर अन्तःक्रिया, विकास खण्ड एवं बैंक कर्मियों से बात-चीत तथा बाजार के सम्पर्क में आने से उनके आत्मविश्वास एवं ज्ञान में वृद्धि हुई है।

प्रस्तुत अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष यह संकेत करते हैं कि स्वयं सहायता समूह का ग्रामीण महिलाओं के जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। यह योजना स्थानीय स्तर पर आर्थिक गतिविधियों का सृजन कर महिलाओं के स्वावलम्बन एवं आत्मविश्वास में वृद्धि करती है। परिवार एवं समाज में निर्णय लेने की प्रक्रिया में उनकी भागीदारी बढ़ रही है। हांलाँकि पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण में परिवर्तन की दिशा में अभी व्यापक प्रयास किये जाने की आवश्यकता है। पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति की तुलना में अल्पसंख्यक वर्ग की कम भागीदारी अल्पसंख्यक महिलाओं के परम्परागत सामाजिक जकड़न की ओर सीधा संकेत करती है। समूह में प्रायः एक ही जाति एवं एक ही टोले की महिलाओं की अधिकता जातीय निकटता एवं भौतिक समीपता सिद्धान्त को पुष्ट करता है। गाँव के भीतर या आस-पास के गाँवों में आवागमन में वृद्धि से सामूहिक भागीदारी का बहुजातीय एवं बहुधार्मिक स्वरूप प्रकट हो सकता है। बैंकों की भूमिका सकारात्मक बनाये जाने की आवश्यकता है।

अन्त में यह कह सकते है कि स्वयं सहायता समूह ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं मनोवैज्ञानिक पक्ष को दृढ़ करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं।

संदर्भ

१. सिंह, कटार, 'ग्रामीण विकास, सिद्धान्त, नीतियां एवं प्रबन्ध;, रावत पब्लिकेशन्स, २०११, पृ. ०३
२. वर्ल्ड बैंक सेन्टर पालिसी (१६७५) पृ०-३, मिल्क एण्ड रावर्ट, 'रूरल सोशिओलॉजी'१६८१, पृ. ६८६-७०२
३. नाबार्ड, वार्षिक प्रतिवेदन २००४-२००५, नेशनल एग्रिकल्चर बैंक फार रूरल डेवलपमेंट, मुंम्बई, भारत, २००५
४. एम० हार्डिमैन और जे० मिडग्ले, 'द स्कूल डाईमेंशन आफ डेवलपमेंट - सोशल पालिसी एण्ड प्लानिंग इन थर्ड वर्ड', जे व्हीले, न्यूयार्क, १६८२
५. एम०कार, एम० चेन और आर० झाबवाला, 'स्पिकिंग आउटः वोमेन्स इकोनमी इम्पावरमेंट इन साउथ एशिया', इण्टरमिडिएट टेक्नोलॉजी पब्लिकेशन, लंदन, १६६६
६. फ्रांसिस सिन्हा एवं अन्य, 'माइक्रोफाइनेंस, सेल्फ हेल्प ग्रुप्स इन इण्डिया-लिविंग अप टू देयर प्रोमिस', पृ. ८६-१३२
७. मायराडा, 'द मायराडा इक्सपिरियंसः ए मैनुअल फार कैपेसिटी बिल्डिंग, ऑफ सेल्फ हेल्प एफिनिटी ग्रुप', बैंगलोर, भारत, २००१
८. उद्धतः मल्होत्रा राकेश, 'विभिन्न योजनाओं में स्वयं सहायता समूह', एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली-२००७, पृ. ४
६. देसाई ,ए० आर०, 'भारतीय ग्रामीण समाज शास्त्र', अनुदित, हरिकृष्णरावत, रावत पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, १६५६ पृ. १४३
१०. मैकाइवर आर०एम० और सी०एच० पेज, 'सोसाइटी : ऐन इन्ट्रोडक्टरी एनालिसिस', मैकमिलन एण्ड कंपनी, लंदन, १६६२ पृ. ३६०
११. सेन अमर्त्य, ज्याद्रिज, 'भारतीय राज्यों का विकास : कुछ प्रादेशिक अध्ययन', राजपाल एवं सन्स, दिल्ली, २०१०, पृ. ८८-८६।
१२. कपाडिया के.एम., 'मैरिज एण्ड फैमिली इन इण्डिया', ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, १६७२, पृ. १६६
१३. सेन अमर्त्य, पूर्वोक्त, पृ. ८८-८६

उदारवादी समाज में शिक्षक : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण (सेवानिवृत्त शिक्षकों के विशेष संदर्भ में)

❑ अनिल कुमार
❖ डॉ० उदय भान सिंह

समाज में लम्बे समय से जड़ पकड़े सामाजिक मूल्य भौतिकता की भेंट चढ़ रहे हैं और नयी पीढ़ी गणितीय जोड़-घटाने में सही मार्ग को लेकर किंचित भ्रमित सी है। पश्चिमी जीवन शैली का आकर्षण और अन्य भौतिकतापरक प्रक्रियाओं ने न केवल जीवन को जटिल बनाया है बल्कि इसने नई पीढ़ी को परोक्ष/अपरोक्ष रूप से बुजुर्गों के प्रति संवेदनहीन भी बनाया है। शिक्षक अपने पूरे जीवन काल में समाज की बदलती धमनियों का गवाह होता है इसलिए अचानक वक्ररेखीय परिवर्तन उसे नई पीढ़ी के प्रति सशंकित करते हुए उसके अंतिम चरण को समस्याओं और तनाव से भर देता है। प्रस्तुत अध्ययन इसी नव उदारवादी संस्कृति से उत्पन्न जटिलताओं और सेवानिवृत्त शिक्षकों के समंजन को समझने का एक प्रयास है।

भूमिका :- उदारवादी समाज में बुजुर्गों में बढ़ती उम्र के साथ-साथ तनाव की स्थिति भी बढ़ रही है। वृद्धावस्था में स्वयं व्यक्ति में जीविकोपार्जन की शक्ति नहीं रहती है, और अधिक आयु होने पर उनके लिए चलना-फिरना या नित्यकर्म करना भी कठिन हो जाता है। अतएव वृद्धों को न केवल अपनी उदरपूर्ति के लिए अपितु अपने अस्तित्व तक के लिए दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। समाज के सामने यह प्रश्न सदा से रहा है कि किस प्रकार वृद्धों को समाज पर भार न बनने दिया जाय, उनको समाज का एक उपयोगी अंग बनाया जाय तथा उनकी देखभाल, उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति तथा अन्य सभी प्रकार की सुविधाओं का प्रबन्ध किया जाये।

समाज जिन अन्तःक्रिया करने वाले लोगों से बनता है, वृद्ध उसके एक अंग हैं। समय के साथ उम्र बढ़ती है और व्यक्ति वृद्ध होने लगता है। सामान्य तौर पर व्यक्ति ६० वर्ष के बाद वृद्ध माना जाता है। आधुनिक समय में व्यक्ति की औसत आयु में वृद्धि हुई है। वर्तमान समय में व्यक्ति की औसत आयु लगभग ६८ वर्ष है। चिकित्सा विज्ञान में बेहतरी, गरीबी एवं कुपोषण से निदान तथा मृत्यु-दर में कमी होने के कारण वर्ष २०५० तक वृद्धों की संख्या बच्चों से भी अधिक होगी। सेवानिवृत्ति की उम्र ६० वर्ष मानी गई है, क्योंकि ६० वर्ष के बाद व्यक्ति की शारीरिक क्षमता का ह्रास होने लगता है। सेवानिवृत्ति के बाद मनुष्य के लिए जीवन बहुत आसान नहीं होता क्योंकि वह सेवानिवृत्ति के बाद अपनी घटती आय के साथ एकाएक जीवन यापन के लिए तैयार नही हो पाता है।

पूर्व अध्ययन :

उमेश चन्द्र अग्रवाल के अनुसार जीवन-प्रत्याशा में वृद्धि विगत शताब्दी की प्रमुख जनांकिकीय उपलब्धि है। विश्व के अधिकांश भागों में एक ओर पोषण की सुधरती स्थिति, स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार तथा सभी क्षेत्रों में शिक्षा और संचार माध्यमों की पहुँच और दूसरी ओर स्वास्थ्य के प्रति लोगों की बढ़ती जानकारी और चेतना के चलते मृत्युदर मे कमी आयी है और जीवन-प्रत्याशा मे वृद्धि हुई है।[१]

प्रियंवदा पाण्डेय ने उत्तर प्रदेश के कुशीनगर जनपद के कसया विकास खण्ड से २०० वृद्ध महिलाओं का चयन करके साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से तथ्यों का संकलन किया। उनके अनुसार पारम्परिक भारत में

❑ शोध अध्येता, समाजशास्त्र विभाग, फिरोज गाँधी कालेज, रायबरेली (उ.प्र.)
❖ एसोशिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष समाजशास्त्र विभाग, फिरोज गाँधी कालेज, रायबरेली (उ.प्र.)

वृद्धों को परिवार एवं समाज में ऊँचा स्थान व सम्मान प्राप्त था किन्तु वर्तमान में तेजी से बदलती सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों एवं भौतिकता की बढ़ती दुष्प्रवृत्ति ने वृद्धों के प्रति उपेक्षा का वातावरण पैदा कर दिया है और उन्हें सामान्य जीवन जीने हेतु जरूरी आवश्यकताओं तक को पूरा करने के लिए बेबस बना दिया है।[२]

राजीव कुमार ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय तथा डीजल रेल इंजन कारखाना वाराणसी के अवकाश प्राप्त २८० कर्मियों का साक्षात्कार अनुसूची की सहायता से अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि संयुक्त परिवार व्यवस्था अब परिवर्तन के दौर मे है तथा वृद्धों की समस्त आवश्यकताओं को पूरा करने में अक्षम साबित हो रही हैं। परिवार, पड़ोस तथा नातेदारी द्वारा आपस में बांधकर रखने वाले सामाजिक बन्धनों में शिथिलता आयी है, जिसके कारण परिवार में वृद्धों की स्थिति सन्तोषजनक नही रह गयी है।[३]

उदयभान सिंह के अध्ययन में ग्रामीण भारत के वृद्धजनों द्वारा सामना की जा रही सामंजस्य की चुनौतियों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन इस बात की ओर भी इशारा करता है कि अब तक वृद्धावस्था की समस्या को शहर तक ही सीमित मानते हुए अधिकांश अध्ययन उसी परिधि में किए गये हैं, जबकि ग्रामीण भारत भी समस्या की गहनता से उसी तरह प्रभावित है।[४]

डी.पी. सक्सेना का अध्ययन सेवानिवृत्ति शिक्षकों, नौकरशाहों, वकीलों और चिकित्सकों की वृद्धावस्था में होने वाली सामाजिक, आर्थिक और जैव मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर प्रकाश डालता है। अध्ययन केवल इस बात की समीक्षा नही करता कि कैसे उम्र वृद्धावस्था की प्रक्रिया को प्रभावित करती है अपितु यह सामाजिक कारकों के वृद्धावस्था की प्रक्रिया में प्रभाव तथा अन्य आयामों का भी विश्लेषण करता है।[५]

संयुक्त राष्ट्र संघ जनसंख्या कोष द्वारा कराये गये एक वृहत सर्वेक्षण (BKPAI) जिसकी रिपोर्ट २०१२ में प्रकाशित हुई है, में भारत में जनसंख्या वृद्धकरण का ज्ञानाधार बनाने की कोशिश की गई है। इस अति विस्तृत सर्वेक्षण में भारत के ०७ राज्यों से प्राप्त आंकड़े तुलनात्मक रूप से प्रस्तुत किए गये हैं तथा उसके आधार पर एतद् सम्बन्धी भविष्य प्रक्षेपण भी किया गया है।[६]

नेशनल सैम्पल सर्वेक्षण (NSSO) २००४ की रिपोर्ट के अनुसार सर्वेक्षण के दौरान यह पाया गया कि ३७ प्रतिशत वृद्ध अपने परिवार के साथ रहते हैं। लेकिन २०१४ में हुए ऐसे ही दूसरे सर्वेक्षण में इस प्रतिशत में ४ प्रतिशत की कमी आ गई है। अब ३३ प्रतिशत वृद्ध ही परिवार में रह रहें हैं। यह प्रतिशत शहरी आबादी का है। ग्रामीण क्षेत्रों में परिवार के साथ रहने वाले बुजुर्गों का प्रतिशत ३६ से घटकर ३४ पर आ गया है जबकि इसी सर्वेक्षण का एक भाग यह भी बताता है कि ६६ प्रतिशत वृद्ध ऐसे थे जिनकी कम से कम एक संतान जीवित थी।[७]

चौधरी के अध्ययन में विश्व की वृद्ध जनसंख्या और उसकी वर्तमान प्रघटना तथा दुर्भाग्यपूर्ण अनियोजित देखभाल पर विचार किया गया है। इस बात पर भी ध्यान दिया गया है कि वृद्धों का संविधान क्या है जबकि यह एक कालक्रमिक अवस्था,शारीरिक ह्रास ,कार्य की अक्षमता का विचार मस्तिष्क में उभरने लगता है और वृद्धों का मानसिक तथा शारीरिक स्तर एक समाज से दूसरे समाज में अन्तर स्पष्ट करने लगता है। इन्होंने अपने अध्ययन में बताया कि व्यक्ति को अपने बुजुर्गों को हेय दृष्टि से नहीं देखना चाहिए जो कुछ साल पहले उनका सम्मान करते थे लेकिन अब बूढ़े व्यक्ति अपने को उपेक्षित और अपमानित महसूस करते हैं। अकेलापन अवसाद को जन्म दे सकता है।[८]

पी०के० मुत्तगी ने अपने अध्ययन में दो सामान्य प्रश्नों को उठाया है जिसमें प्रथम यह कि उनकी कितनी विस्तृत नीतियां तथा कार्यक्रम विकसित देशों के लिए किये जा रहें हैं और विभिन्न प्रतिरूपों के रूप में किन समस्याओं का सामना विकासशील तथा विकसित देशों में किया जा रहा है। दूसरा प्रश्न यह है कि पूर्ववत कार्यों में वृद्धों की देखभाल भारत में तथा अन्य विकासशील

राष्ट्रों की जनांकिकीय संरचना में सामाजिक,आर्थिक विकास में प्रथाओं और परम्पराओं के अन्तर्गत निश्चित रूप से औपचारिक तथा अनौपचारिक रूप से देखभाल की प्रणालियों को विभिन्न संगठनों,संस्थाओं के कार्य को कल्याणकारी दृष्टि से उत्तरदायी माना जा सकता है।[९]

जे०एन०पी० सिन्हा ने वृद्धों की समस्याओं के शोध अध्ययन में भारतीय संस्कृति और लोकतांत्रिक व्यवस्था में वृद्धों की मांग के अनुरूप एक विशेष उपचार जो एक प्रमुख मुद्दे के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अन्य देशों में इस प्रकार के कई अध्ययन किये गये हैं। किन्तु सिन्हा द्वारा किया गया यह कार्य सापेक्षिक रूप से मनोवैज्ञानिक स्तर पर वृद्धों की समस्याओं को उजागर करता है। मुख्य रूप से यह अध्ययन वृद्धों के सन्तुष्टिपूर्ण जीवन तथा अधेड़ आयु के व्यक्तियों के सम्बंधों को निश्चित रूप से सामाजिक मनोवैज्ञानिक कारकों एवं समायोजन की रणनीतियों को वृद्ध जनसंख्या के विषय में सम्मिलित किया गया है।[१०]

आर०सी० श्रीवास्तव ने अपने अध्ययन में समाजशास्त्र की एक विशेष शाखा 'जरायुशास्त्र' में वृद्धों की समस्या पर प्रकाश डाला। इन्होंने पश्चिमी देशों की भांति भारत के कुछ सरकारी तथा गैर-सरकारी संगठन वृद्धों को सेवायें प्रदान कर रहें हैं का अध्ययन किया। इनके अध्ययन में पाया गया कि भारत की घटती मृत्यु दर तथा असहाय वृद्ध जनसंख्या और परित्यक्त एवं तनावग्रस्त जीवन यापन कर अधिक आयु की जनसंख्या हमारे देश की बड़ी समस्या है।[११]

अध्ययन का औचित्य - समाज के साथ सार्थक अन्तःक्रिया की प्रक्रिया में शिक्षक सर्वाधिक महत्वपूर्ण कड़ी का निर्माण करता है। अपने निर्देशन से देश और समाज के लिए उपयोगी मानव संसाधन तैयार करने की प्रक्रिया में ही उसकी अपनी आवश्यकतायें भी समाविष्ट हो जाती हैं तथा वह भावनात्मक रूप से शिष्यों से तथा उनके द्वारा समाज से जुड़ जाता है। नित्य अपने शिष्यों की प्रगति में खुश रहने वाला शिक्षक अपनी भूमिका की समाप्ति की कल्पना भी नही करता है। ऐसे में नियम की औपचारिकतावश जब उसे सेवानिवृत्त किया जाता है तो न केवल उसकी आवश्यकताएँ बल्कि उसकी सतत् मार्गदर्शन अन्तःक्रिया भी प्रभावित होती है तथा वह समाज द्वारा अपने को अर्थहीन समझे जाने को बाध्य हो जाता है। अपनी पारी में जीवन व समाज से सामन्जस्य बैठाता है। यह एक प्रासंगिक शोध का विषय है। यद्यपि सेवानिवृत्त समुदाय एवं समाज की अन्तः क्रिया पर पूर्व में भी बहुत से अध्ययन हुए हैं जिनमें समंजन के विविध पहलुओं का विश्लेषण किया गया है किन्तु वैश्वीकरण और उदारीकरण की प्रक्रिया के जोर पकड़ने के बाद समाज की तस्वीर पूर्व की अपेक्षा अनुमान से अधिक है।

समाज में लम्बे समय से जड़ पकड़े सामाजिक मूल्य भौतिकता की भेंट चढ़ रहे हैं और नयी पीढ़ी गणितीय जोड़-घटाने में सही मार्ग को लेकर किंचित भ्रमित सी है। पश्चिमी जीवन शैली का आकर्षण और अन्य भौतिकता परक प्रक्रियाओं ने न केवल जीवन को जटिल बनाया है बल्कि इसने नई पीढ़ी को परोक्ष/अपरोक्ष रूप से बुजुर्गों के प्रति संवेदनहीन भी बनाया है। शिक्षक अपने पूरे जीवन काल में समाज की बदलती धमनियों का गवाह होता है इसलिए अचानक वक्ररेखीय परिवर्तन उसे नई पीढ़ी के प्रति सशंकित करते हुए उसके अंतिम चरण को समस्याओं और तनाव से भर देता है। प्रस्तुत अध्ययन इसी नव उदारवादी संस्कृति से उत्पन्न जटिलताओं और सेवानिवृत्त शिक्षकों के समंजन को समझने का एक प्रयास है।

प्राक्कल्पना :

१. आय कम होने से सेवानिवृत्त शिक्षकों की आर्थिक स्थिति निम्न हो जाती है।
२. वृद्धजनों की देखभाल में परिवारों की उदासीनता बढ़ रही है।
३. सेवानिवृत्ति के बाद शिक्षकों को सामाजिक समायोजन में बाधा आती है।

शोध के उद्देश्य :

१. सेवानिवृत्त शिक्षकों की सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण करना।
२. सेवानिवृत्त शिक्षकों के सामाजिक समंजन का

अध्ययन करना।

३. सेवानिवृत्त शिक्षकों की आर्थिक समस्याओं का अध्ययन करना।

अध्ययन पद्धति :- प्रस्तुत अध्ययन अन्वेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक शोध अभिकल्प पर आधारित है। इस अध्ययन का क्षेत्र उत्तर प्रदेश के रायबरेली जनपद में स्थित सरेनी विकास खण्ड के इण्टर कालेजों से सेवानिवृत्त शिक्षकों का चयन दैव निदर्शन विधि से किया गया है, जिसका समग्र ८० है, जिसमे से ५० प्रतिशत सेवानिवृत्त शिक्षकों का चयन किया गया है। इस तरह ४० शिक्षकों का अध्ययन वैयक्तिक साक्षात्कार के आधार पर किया गया है। इस हेतु एक साक्षात्कार अनुसूची का निर्माण किया गया है जिसमें जीवन के विविध पहलुओं पर उत्तरदाताओं से सूचना संकलित की गयी है।

विश्लेषण

परिस्थितिजन्य कारक एवं शिक्षक - सेवानिवृत्त शिक्षक एक निश्चित आयु तक शिक्षण कार्य करने के उपरान्त जब सेवा मुक्त कर दिया जाता है तो उसके समक्ष विभिन्न प्रकार की सामाजिक परिस्थितियाँ और समस्याएं जन्म लेती हैं। सामाजिक भावनात्मक संकटों के समक्ष एक सेवानिवृत्त शिक्षक विभिन्न स्थितियों से गुजरता है। परिवार के लोगों की उसके प्रति जिम्मेदारियों में सिर्फ भरण-पोषण में ही उनकी इतिश्री हो जाती है। उनके साथ पहले जैसा बर्ताव नही होता है। परिवार के लोग धीरे-धीरे उनसे दूरी बनाने लगते हैं और कहीं न कहीं उनके प्रति उदासीनता की भावना लोगों में आने लगती है।

आर्थिक स्थिति - एक सेवानिवृत्त शिक्षक के सामने सेवानिवृत्ति के बाद विभिन्न प्रकार की आर्थिक समस्याएँ जन्म लेती हैं क्योंकि एकदम से आय वेतन से कम हो जाती है और पेंशन से प्राप्त आय के अतिरिक्त क्या उनके पास आय का कोई अन्य स्त्रोत है या नही। यदि है तो उसे कुछ मदद मिल जाती है अन्यथा की स्थिति में यदि उसके ऊपर परिवार की कोई बची हुई आर्थिक जिम्मेदारी है तो उसके सामने जो समस्याएं आती हैं उन्हें विभिन्न तालिकाओं में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

शिक्षक को सेवानिवृत्ति के बाद पेंशन मिलती है जो उनकी पूर्व आय से बहुत कम होती है किन्तु कुछ शिक्षकों के पास आय के अन्य स्त्रोत भी होते हैं। जैसे कृषि, परिवार के किसी अन्य सदस्य की आय, अन्य कोई व्यवसाय आदि। उनसे आय से सम्बन्धित प्रश्न पूछे गये जिनका विवरण तालिका में देखा जा सकता है।

तालिका संख्या - ०१

सूचनादाताओं की आय

मासिक आय	आवृत्ति	प्रतिशत
२०,०००- ३०,०००	११	२७.५
३०,०००- ४०,०००	१३	३२.५
४०,०००- ५०,०००	१०	२५
५०,००० से अधिक	०६	१५
योग	४०	१००

प्रस्तुत तालिका संख्या - ०१ का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि सेवानिवृत्ति के बाद शिक्षकों की पेंशन एवं अन्य स्त्रोतों से आय की स्थिति के अन्तर्गत यह पाया गया कि २७.५ प्रतिशत ऐसे लोग हैं जिनकी आय ३० हजार से कम है तथा ३० से ४० हजार के बीच आय वाले लोगों की संख्या ३२.५ प्रतिशत है और ४० से ५० हजार तक आय वाले शिक्षकों का प्रतिशत २५ है जबकि केवल १५ प्रतिशत शिक्षक ही ऐसे हैं जिनकी आय ५० हजार रूपये से अधिक है। तालिका से स्पष्ट है कि लगभग ६० प्रतिशत उत्तरदाता ४० हजार से कम मासिक आय पर जीवन जीते हैं। तालिका से स्पष्ट होता है कि सूचनादाताअें की माध्य मासिक आय रू. ३७७५०/- है जो पर्याप्त नहीं कही जा सकती।

आश्रितों की संख्या - किसी भी सदस्य की आय की पर्याप्तता पैसे की मात्रा के साथ साथ उस पर आश्रित व्यक्तियों और बची हुई जिम्मेदारियों से तय होती है जिसका विश्लेषण नीचे की तालिकाओं में किया गया है। सेवानिवृत्ति के बाद एक शिक्षक के ऊपर कई सदस्य आर्थिक रूप से निर्भर होते हैं, जिनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करना उनकी जिम्मेदारी हो सकती है।

सूचनादाताओं के आश्रितों की संख्या निम्न तालिका मे देखी जा सकती है।

तालिका संख्या - ०२

सूचनादाताओं पर आश्रित सदस्य

संख्या	आवृत्ति	प्रतिशत
१-३	०६	५५
३-५	१५	३७.५
५-८	११	३२.५
८ से अधिक	०८	२०
योग	४०	१००

तालिका संख्या ०२ के अध्ययन से यह पता चलता है कि १५ प्रतिशत सेवानिवृत्त शिक्षक ऐसे हैं जिनके ऊपर आर्थिक रूप निर्भर व्यक्तियों की संख्या १ से ३ है और ३७.५ प्रतिशत ऐसे लोग हैं जिनके ऊपर ३ से ५ व्यक्ति निर्भर होते हैं तथा ३२.५ प्रतिशत लोगों पर निर्भर व्यक्तियों की संख्या ५ से ८ है जबकि २० प्रतिशत ऐसे भी लोग हैं जिनके ऊपर निर्भर व्यक्तियों की संख्या ८ से अधिक है।

बची हुई आर्थिक जिम्मेदारी - सेवानिवृत्ति के बाद भी कुछ लोगों पर कोई न कोई आर्थिक जिम्मेदारी होती है। बच्चों की शिक्षा, उनका विवाह, स्वास्थ्य सम्बन्धी, भूमि खरीदना तथा घर बनाने आदि की जिम्मेदारी शिक्षकों पर बची हुई है जिसका विवरण निम्न है।

तालिका संख्या - ०३

सूचनादाताओं पर बची जिम्मेदारियां

जिम्मेदारी	आवृत्ति	प्रतिशत
बच्चों की शिक्षा	०६	१५
बच्चों का विवाह	०८	२०
स्वास्थ्य सम्बन्धी	१०	२५
घर बनाना	०६	२२.५
भूमि खरीदना	०५	१२.५
कोई नही	०२	०५
योग	४०	१००

तालिका संख्या - ०३ के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि सेवानिवृत्ति के बाद भी शिक्षकों के ऊपर विभिन्न प्रकार की आर्थिक जिम्मेदारियाँ बची हुई होती हैं जिनमें से बच्चों की शिक्षा की जिम्मेदारी १५ प्रतिशत की है और बच्चों का विवाह करने की आर्थिक जिम्मेदारी २० प्रतिशत है। सर्वाधिक जिम्मेदारी खुद उनके स्वास्थ्य सम्बन्धी होती है जिसका प्रतिशत २५ है। घर बनाने की आर्थिक जिम्मेदारी २२.५ प्रतिशत लोगों की है तथा भूमि खरीदने वाले लोगों का प्रतिशत १२.५ है। केवल ५ प्रतिशत लोग ही ऐसे हैं जिनकी कोई भी आर्थिक जिम्मेदारी नही है।

आर्थिक स्थिति का स्व मूल्यांकन - सेवानिवृत्त शिक्षक विभिन्न आर्थिक जिम्मेदारियों को निभाते हुए जिन परिस्थितियों से गुजरता है उस स्थिति में एक सेवानिवृत्त शिक्षक अपनी आय और व्यय का संन्तुलन बनाता है तथा उससे कितना संतुष्ट हो पाता है। वह स्वयं अपनी आर्थिक स्थिति का क्या मूल्यांकन करता है। उसकी संतुष्टि का स्तर इस तालिका में देखा जा सकता है।

तालिका संख्या - ०४

आर्थिक स्थिति के स्वमूल्यांकन का स्तर

मूल्यांकन	आवृत्ति	प्रतिशत
उच्च्य स्तर	१२	३०
निम्न स्तर	२१	५२.५
कह नही सकते	०७	१७.५
योग	४०	१००

तालिका संख्या - ०४ से पता चलता है कि सेवानिवृत्त शिक्षकों का आर्थिक स्थिति का स्व मूल्यांकन और उससे संतुष्टि का स्तर क्या है जिनमें से ३० प्रतिशत ऐसे लोग हैं जो अपनी आर्थिक स्थिति से संतुष्ट हैं जबकि असंतुष्ट लोगों की संख्या ५२.५ प्रतिशत है। वहीं १७.५ प्रतिशत लोगों का उत्तर है कि कुछ कह नही सकते।

तालिका १ से ४ तक के तथ्यों से यह स्पष्टतः प्रमाणित होता है कि सेवानिवृति के बाद शिक्षकों की आर्थिक स्थिति निम्न हो जाती है। इससे अध्ययन की उपकल्पना 'आय कम होने से सेवानिवृत शिक्षकों की आर्थिक स्थिति निम्न हो जाती है' की पुष्टि होती है।

स्वास्थ्य संतुलन एवं बीमारी की स्थिति - वृद्धावस्था में होने वाली बीमारियों का प्रभाव भी सेवानिवृत्त शिक्षकों

में दिखायी देने लगता है। इस अवस्था में बीमारियों के चलते एक शिक्षक अपने स्वास्थ्य का संतुलन रख पाता है या नही। इस सम्बन्ध में उनकी स्थिति जानने का प्रयत्न किया गया जिसका वर्णन निम्न तालिका में देखा जा सकता है।

तालिका संख्या - ०५

सूचनादाताओं में बीमारियों की स्थिति

कारक	आवृत्ति	प्रतिशत
उच्च रक्त चाप	०७	१७.५
मधुमेह	१०	१५
हृदय रोग	०४	१०
चलने-फिरने की समस्या	०९	२२.५
देखने-सुनने की समस्या	०८	२०
अन्य	०२	०५
योग	४०	१००

तालिका संख्या - ०५ का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है की सेवानिवृत्त शिक्षकों में शारीरिक समस्याओं की स्थिति के अर्न्तगत १७.५ प्रतिशत लोग उच्च रक्तताप की समस्या से पीड़ित तथा १५ प्रतिशत मधुमेह की समस्या से ग्रषित हैं और हृदय रोग से पीड़ित लोगों का प्रतिशत १० है और जिसमें चलने-फिरने में समस्या वालों का प्रतिशत २२.५ है। २० प्रतिशत लोग देखने-सुनने की समस्या से पीड़ित हैं तथा अन्य समस्याओं से पीड़ित लोगों की संख्या ०५ प्रतिशत है।

स्वास्थ्य के विषय में जानकारी हेतु सेवानिवृत्त शिक्षकों से यह पूछा गया कि वह पिछले एक वर्ष में कितनी बार अस्पताल गये जिससे उनके स्वास्थ्य संतुलन की जानकारी प्राप्त की गयी जो निम्न तालिका मे वर्णित है।

तालिका संख्या - ०६

पिछले एक वर्ष में अस्पताल जाने की स्थिति

स्थिति	आवृत्ति	प्रतिशत
१ से २ बार	०३	०७.५
२ से ४ बार	०९	२२.५
४ से ६ बार	१२	३०
६ से अधिक बार	१६	४०
योग	४०	१००

तालिका संख्या - ६ के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वृद्धावस्था में होने वाली बीमारियों के कारण पिछले एक वर्ष में अस्पताल जाने वाले ऐसे लोगों की संख्या ०७.५ प्रतिशत है जो १ से २ बार अस्पताल गये और २ से ४ बार जाने वाले लोगों की संख्या २२.५ प्रतिशत है। ३० प्रतिशत लोग ४ ये ६ बार अस्पताल जाते हैं, जबकि ४० प्रतिशत ऐसे भी शिक्षक हैं जिनको ६ से अधिक बार अस्पताल जाना पड़ा।

स्वास्थ्य का स्व मूल्यांकन - वृद्धावस्था में होने वाली बीमारियों की स्थिति एवं स्वास्थ्य संतुलन बनाने में एक सेवानिवृत्त शिक्षक कितना सफल हो पाता है। इस सम्बन्ध मे उनका स्व मूल्यांकन जानने का प्रयास किया गया जिसका वर्णन इस प्रकार है।

तालिका संख्या - ०७

स्वास्थ्य का स्वमूल्यांकन

स्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
उच्च स्तर	०६	१५
निम्न स्तर	२६	६५
कह नही सकते	०८	२०
योग	४०	१००

तालिका संख्या - ०७ से ज्ञात होता है कि सेवानिवृत्ति के बाद एक शिक्षक अपने स्वास्थ्य संतुलन और बीमारियों की स्थिति तथा उन्हे पिछले एक वर्ष मे कितनी बार अस्पताल जाना पड़ा ऐसी स्थिति मे वह स्वयं स्वास्थ्य का मूल्यांकन कर कितना संतुष्ट है। उनकी संतुष्टि का उच्च स्तर केवल १५ प्रतिशत है जबकि ६५ प्रतिशत ऐसे शिक्षक हैं जो अपने स्वास्थ्य की स्थिति से संतुष्ट नहीं हैं २० प्रतिशत ऐसे लोग हैं जो कुछ कह नही सकते वाली स्थिति के अन्तर्गत आते हैं।

परिवार में भूमिका - एक शिक्षक जो अपनी पूरी जिन्दगी परिवार के भरण-पोषण और एक मुखिया की जिम्मेदारी में बिताता है। हमेशा परिवार के लोग उसका निर्णय मानते हैं किन्तु सेवानिवृत्ति के बाद परिवार में उसका महत्व धीरे-धीरे घटने लगता है। परिवार में उसकी भूमिका में कमी आती है कहीं न कहीं परिवार के महत्वपूर्ण निर्णयों में उन्हें नजर-अन्दाज किया जाता

है। परिवार के निर्णयों में उनकी भूमिका का विश्लेषण निम्नांकित तालिका में किया गया है।

तालिका संख्या - ०८

पारिवारिक निर्णयों में सूचनादाता की भूमिका

भूमिका	आवृत्ति	प्रतिशत
सूचना मात्र	१०	२५
निर्णयात्मक भूमिका	१८	४५
उपेक्षा	०८	२०
कोई भूमिका नही	०४	१०
योग	४०	१००

तालिका संख्या - ०८ का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि २५ प्रतिशत ऐसे लोग जिन्हें पारिवारिक निर्णयों की सूचना मात्र दी जाती है तथा ४५ प्रतिशत लोगों की भूमिका निर्णयात्मक होती है तो वहीं २० प्रतिशत लोग ऐसे हैं जिनकी परिवार में निर्णय लेने में उपेक्षा की जाती है। १० प्रतिशत ऐसे भी हैं जिनकी परिवार में निर्णय लेने में कोई भूमिका नही होती है। इस सन्दर्भ में देखा जाए तो ५० प्रतिशत से अधिक ऐसे लोग हैं जिनकी भूमिका परिवार के निर्णयों मे नही या कम होती है।

व्यावहारिक कारकों का विश्लेषण - उदारवादी समाज में लोगों के मूल्यों एवं व्यवहार में बदलाव हो रहा है जिसके कारण सेवानिवृत्त शिक्षक जिन्होनें छात्रों के माध्यम से समाज और राष्ट्र को बनाने में अपनी पूरी जिंदगी खपा दी आज उनके समक्ष समाज में बदलते मूल्य एवं नयी पीढ़ी का व्यवहार कहीं न कहीं उनमें तनाव की स्थिति को जन्म दे रहा है जो विभिन्न प्रकार की व्यावहारिक और सामंजस्य की समस्याओं का कारण हो रहा है।

मूल्यों का संक्रमण - वर्तमान उदारवादी समाज में विभिन्न प्रकार के परिवर्तन हो रहे हैं जिसके कारण नई पीढ़ी के व्यवहार और मूल्यों में भी परिवर्तन हुआ है तथा मूल्यों का संक्रमण हो रहा है। इस सन्दर्भ में उनके विचार निम्न तालिका में देखे जा सकते हैं।

तालिका संख्या - ०९

सूचनादाताओं के मूल्य

कारक	सहमत	असहमत	योग
समाज में होने वाले परिवर्तन	११ (२७.५)	२९ (७२.५)	४० (१००)
अन्तर-पीढ़ी संघर्ष	२७ (६७.५)	१३ (३२.५)	४० (१००)
शिक्षा का व्यवसायीकरण	३४ (८४)	०६ (१६)	४० (१००)
एकाकी परिवार व्यवस्था	१५ (३७.५)	२५ (६२.५)	४० (१००)
अन्तर्धार्मिक और अन्तर्जातीय विवाह	०५ (१५)	३५ (८५)	४० (१००)
स्त्रियों को समान अधिकार	३० (७५)	१० (२५)	४० (१००)
पाप-पुण्य, कर्म तथा पुनर्जन्म की अवधारणा	२६ (६५)	१४ (३५)	४० (१००)
परिवार और नातेदारी संबंधों में परिवर्तन	०८ (२०)	३२ (८०)	४० (१००)

तालिका संख्या - ०९ का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि समाज में मूल्यों का संक्रमण हो रहा है। लोगों के व्यवहार में भी परिवर्तन हुआ है। वर्तमान व्यवस्था और होने वाले परिवर्तनों से एक सेवानिवृत्त शिक्षक कहां तक सहमत है। इस सम्बन्ध में यह पाया गया कि समाज में होने वाले परिर्वतनों से २७.५ प्रतिशत लोग ही सहमत है जबकि ७२.५ प्रतिशत लोग इन परिवर्तनों से असहमत हैं। ६७.५ प्रतिशत लोगों को अन्तर पीढ़ी संघर्ष का सामना करना पड़ता है और ३२.५ प्रतिशत ऐसे शिक्षक हैं जो इस बात से असहमत हैं। उनसे यह जानने का प्रयास किया गया कि क्या शिक्षा का व्यवसायीकरण हो रहा है तो ८४ प्रतिशत लोग इससे सहमत हैं जबकि १६ प्रतिशत लोग असहमत हैं। एकाकी परिवार व्यवस्था से सहमत लोगों का प्रतिशत ३७.५ है और ६२.५ प्रतिशत लोग एकाकी परिवार व्यवस्था से असहमत हैं।

तालिका ८ और ९ द्वारा प्राप्त तथ्यों से ज्ञात होता है

कि परिवारों में वृद्धों को अनदेखा किया जाता है, उन्हें पारिवारिक निर्णयों में भागीदार नहीं बनाया जाता तथा उनकी देखभाल में उदासीनता प्रदर्शित की जाती है। इससे अध्ययन की दूसरी उपकल्पना 'वृद्धजनों की देखभाल में परिवारों की उदासीनता बढ़ रही है' की पुष्टि होती है।

अन्तर्धार्मिक और अन्तर्जातीय विवाह के सन्दर्भ में यह पाया गया कि १५ प्रतिशत लोग मानते हैं कि ऐसा होना चाहिए जबकि ८५ प्रतिशत लोग आज भी इसे उचित नही मानते हैं। शिक्षकों से यह जानने का प्रयत्न किया गया कि क्या स्त्रियों को समान अधिकार मिलना चाहिए तो ७५ प्रतिशत लोग इस बात से सहमत हैं जबकि २५ लोग असहमत हैं। पाप-पुण्य, कर्म तथा पुनर्जन्म की अवधारणा के बारे मे उनसे पूछा गया तो यह पता चला कि ६५ प्रतिशत लोग इसमे विश्वास करते हैं जबकि ३५ प्रतिशत लोग इन अवधारणाओं में विश्वास नही करते हैं। शिक्षकों से यह पूछा गया कि क्या परिवार और नातेदारी सम्बन्धी परम्पराओं में परिवर्तन होना चाहिए तो इससे सहमत लोगों का प्रतिशत २० है जबकि ८० प्रतिशत लोग इससे असहमत हैं।

सामाजिक समंजन - समाज की सेवा में अपनी उम्र के ६० वर्ष गुजारने वाला शिक्षक जो समाज को एक दिशा प्रदान करता है और उन्हें समाज से सामन्जस्य करना सिखाता है। उनके समक्ष आज समाज मे होने वाले परिवर्तनों के कारण स्वयं उसे समाज के साथ समायोजन करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। वह अपने खाली समय का प्रयोग किन कार्यों को करने में व्यतीत करता है और उसके सामाजिक समायोजन में कौन से कारक बाधक हैं तथा वह स्वयं अपने सामाजिक समंजन से कितना संतुष्ट है। इस संबंध में में उनके विचार निम्नांकित तालिकाओं में देखे जा सकते है।

तालिका संख्या - १०

सूचनादाताओं द्वारा खाली समय का प्रयोग

खाली समय का प्रयोग	आवृत्ति	प्रतिशत
धार्मिक पुस्तकें पढ़ना एवं पूजा-पाठ करना	०६	१५
रिश्तेदारों के यहाँ जाना	०२	०५
परिवार के सदस्यों के साथ मनोरंजन	०५	१२.५
सामाजिक सेवा कार्य करना	०८	२०
घूमना-टहलना	०४	१०
घरेलू कार्य करना	१५	३७.५
योग	४०	१००

तालिका संख्या - १० का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि सेवानिवृत्त शिक्षक अपने खाली समय का प्रयोग किस प्रकार से करते हैं। धार्मिक पुस्तकें पढ़ने और पूजा-पाठ करने में १५ प्रतिशत लोग समय व्यतीत करते हैं। ऐसे लोगों की संख्या ०५ प्रतिशत है जो खाली समय में अपने रिश्तेदारों के यहाँ जाते हैं। १२.५ प्रतिशत ऐसे लोग हैं जो खाली समय अपने परिवार के सदस्यों के साथ मनोरंजन करने में बिताते हैं। अपने खाली समय का प्रयोग सामाजिक सेवा कार्य करने में बिताने वाले लोगों की संख्या २० प्रतिशत है। १० प्रतिशत ऐसे लोग हैं जो अपना खाली समय घूमने-टहलने में व्यतीत करते हैं। सर्वाधिक ३७.५ प्रतिशत लोगों की संख्या है जो अपने खाली समय में घरेलू कार्यों को करने में प्रयोग करते हैं।

सामाजिक समायोजन में बाधक तत्व - समाज में समायोजन करने में शिक्षक के सामने सेवानिवृत्ति के बाद विभिन्न प्रकार के तत्व बाधा पहुंचाते हैं। एक शिक्षक खराब स्वास्थ्य, सामाजिक व्यवस्था, समाज के बदलते मूल्य और नई पीढ़ी का व्यवहार तथा अन्य कई ऐसे कारक हैं जो उनके समायोजन में बाधक बनते हैं। जिसका वर्णन तालिका संख्या ११ में देखा जा सकता है।

तालिका संख्या - ११

सामाजिक समायोजन में बाधक तत्व

बाधक तत्व	आवृत्ति	प्रतिशत
नई पीढ़ी का व्यवहार	०७	१७.५
बदलते मूल्य	०५	१२.५
निजी खराब स्वास्थ्य	१६	४०
सामाजिक व्यवस्था	०८	२०
अन्य	०४	१०
योग	४०	१००

तालिका संख्या - ११ मे वर्णित तथ्यों का अध्ययन करने से ज्ञात होता कि शिक्षक के समायोजन में नई पीढी का व्यवहार १७.५ प्रतिशत बाधक है तथा १२.५ प्रतिशत बदलते मूल्यों से उनका समायोजन बाधित होता है। समायोजन में सर्वाधिक बाधक तत्व उनका निजी खराब स्वास्थ्य है जिसका प्रतिशत ४० है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था उनके समायोजन में २० प्रतिशत बाधा पहुँचाती है। सामाजिक समायोजन में अन्य प्रकार के भी बाधक तत्व होते हैं जिनकी संख्या १० प्रतिशत है। स्पष्ट है कि सेवानिवृति के बाद शिक्षकों को सामाजिक समायोजन में बाधा आती है। नई पीढ़ी का व्यवहार सामाजिक व्यवस्था, बदलते मूल्य तथा स्वयं के खराब स्वास्थ्य के कारण उनको सामाजिक समायोजन में कठिनाई आती है। इस प्रकार अध्ययन की तीसरी उपकल्पना 'सेवा निवृति के बाद शिक्षकों को सामाजिक समायोजन में बाधा आती है' संपुष्ट होती है।

उत्तरदाताओं का स्व मूल्यांकन - सेवानिवृत्त शिक्षक सदैव परिवार और समाज के साथ सामन्जस्य बनाये रखने हेतु प्रयासरत रहता है। क्योंकि एक शिक्षक अपनी पूरी जिन्दगी छात्रों के द्वारा परिवार समाज और राष्ट्र के निर्माण में ही लगा रहता है एक शिक्षक छात्रों को समय और परिस्थितियों से अनुकूलन करना सिखाता है वह स्वयं भी समाज से समंजन स्थापित करने का प्रयत्न करता है किन्तु फिर भी कहीं न कहीं समस्याएं आती रहती हैं। सेवानिवृत्त शिक्षकों के सामने सामाजिक संमजन की समस्याएं आती है इस सन्दर्भ में उत्तरदाता शिक्षकों के स्व मूल्यांकन का स्तर जानने का प्रयास किया गया जो निम्नांकित तालिका में देखा जा सकता है।

तालिका संख्या - १२

समाज के साथ स्वय से समंजन का स्तर

समंजन का स्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
उच्च स्तर	२३	५७.५
निम्न स्तर	१३	३२.५
कह नही सकते	०४	१०
योग	४०	१००

तालिका संख्या - १२ का विश्लेषण करने पर हमें यह ज्ञात होता है कि समाज में शिक्षक किस प्रकार वर्तमान परिस्थितियों से सामन्जस्य बिठाता है और अपने खाली समय का प्रयोग किस प्रकार करता है तथा उसके समायोजन में बाधक तत्वों से कैसे समंजन स्थापित करता है। एक शिक्षक अपने समंजन से किस स्तर तक संतुष्ट है तो ऐसी स्थितिं में शिक्षकों मे समंजन का उच्च स्तर ५७.५ प्रतिशत है जबकि समंजन का निम्न स्तर ३२.५ प्रतिशत का है और वहीं १० प्रतिशत ऐसे भी लोग हैं जिनका उत्तर है कि इस सम्बन्ध में कुछ कह नही सकते।

निष्कर्ष - प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत सेवानिवृत्त शिक्षकों की समस्याओं से सम्बन्धित समस्त पहलुओं को समाहित किया गया है। जैसा कि अध्ययन में पाया गया कि उत्तरदाताओं द्वारा उनकी सभी समस्याओं जैसे परिस्थितिजन्य, आर्थिक, स्वास्थ्य सम्बन्धी, व्यावहारिक, सामाजिक समंजन तथा तनाव सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि शिक्षकों को सेवानिवृत्ति के उपरान्त विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

वर्तमान उदारवादी समाज में एक शिक्षक अपनी आर्थिक स्थिति, उसके ऊपर आर्थिक रूप से निर्भर व्यक्तियों, परिवार एवं सदस्यों के प्रति बची हुई जिम्मेदारी, उसके स्वास्थ्य की स्थिति तथा परिवार में भूमिका आदि विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों का सामना करता हुआ जीवन के अन्तिम पड़ाव से गुजर रहा है। समाज में विभिन्न प्रकार के परिवर्तनों, मूल्यों

का संक्रमण नई पीढ़ी का व्यवहार और समायोजन में बाधक तत्वों के कारण भी बुजुर्गों में तनाव की स्थिति भी बढ़ रही है। नई पीढ़ी में बुजुर्गों के प्रति संवेदना एवं संजीदगी पैदा करना तथा साथ ही वरिष्ठ पीढ़ी को बदलावों के अनुसार अपने को ढालना ही प्रस्तुत समस्या का समाजोपयोगी हल हो सकता है।

सन्दर्भ

१. अग्रवाल, उमेश चन्द्र, 'बढते बुजुर्ग, घटती सुरक्षा' कुरूक्षेत्र, वर्ष ५५ अंक -१२, अक्टूबर २००६ पृ०- ५४

२. पाण्डेय, प्रियंवदा, 'वृद्ध ग्रामीण महिलाओं की समाजार्थिक स्थिति', राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष १७, अंक १,जनवरी-जून, २०१५, पृ०-८३-८६

३. कुमार राजीव, 'अवकाश प्राप्ति के बाद पारिवारिक समायोजन', राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष १६ अंक २, जुलाई-दिसम्बर २०१७ पृ०- ६६-७१

४. सिंह, यू.बी., 'प्राब्लम्स ऑफ एजिंग इन रूरल इण्डिया- ट्रेडीसन एण्ड चेन्ज', क्लासिकल पब्लिसिंग कम्पनी, नई दिल्ली २०१२

५. सक्सेना, डी.पी., 'सोशियोलॉजी ऑफ एजिंग', कांसेप्ट पब्लिसिंग कम्पनी, नई दिल्ली २००६

६. संयुक्त राष्ट्रसंघ जनसंख्या कोष सर्वेक्षण (BKPAI)- २०१२

७. नेशनल सैम्पल सर्वेक्षण रिपोर्ट (NSSO) २००४ एवं २०१४

८. चौधरी, डी. पॉल, 'एजिंग एण्ड द एज्ड', इण्डिया पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली १९९२

९. मुत्तागी, पी.के., 'एजिंग इस्यूज एण्ड ओल्ड एज', क्लासिकल पब्लिसिंग कम्पनी नई दिल्ली १९९४

१०. सिन्हा, जे.एन. पी., 'प्राब्लम्स ऑफ एजिंग', क्लासिकल पब्लिसिंग कम्पनी, नई दिल्ली १९८९

११. श्रीवास्तव, आर. सी., 'द प्राब्लम्स ऑफ द ओल्ड एज', क्लासिकल पब्लिसिंग कम्पनी, नई दिल्ली १९९४

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 20 अंक 1, जनवरी-जून 2018**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की स्थिति-समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ **कु० बीना**

महिलायें प्रत्येक समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग होती हैं तथा समाज के विकास की महिला अस्तित्व के बिना कल्पना भी नहीं की जा सकती है। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही महिला वर्ग में नई वैचारिक चेतना का विकास हुआ है जिसके परिणामस्वरूप श्रमिक वर्ग और असंगठित क्षेत्रों में महिलाओं की सहभागिता तीव्र गति से बढ़ी है। यद्यपि असंगठित क्षेत्र में कार्य करने की कोई सीमा नहीं होती तथा पारिश्रमिक का कोई नियम नहीं होता किन्तु आज के मंहगाई के दौर में अपने परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु निर्धन परिवारों की महिलाएं घरेलू कार्य, कार्यरत महिलाओं के बच्चों की देखरेख, कृषि कार्य करना, दुकान कार्य आदि करती हैं। प्रस्तुत अध्ययन इन्हीं असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की स्थिति के समाजशास्त्रीय विश्लेषण पर आधारित है।

प्रकृति प्रदत्त पुरूष प्रधान समाज में महिलाओं ने अपने बल पर अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाया है। परिवार की आर्थिक सुदृढ़ता हेतु प्राचीन काल से ही महिलायें किसी-न-किसी रूप में समाज में विभिन्न कार्यों को अपनाकर अपनी भागीदारी सुनिश्चित करती रही हैं। इनमें महिलाओं के आरक्षित कार्यों में सेविका, भेदिया, महरी आदि प्रमुख थे। इसके अतिरिक्त घरेलू उद्योगों के चलाने में भी महिलाओं का प्रमुख हाथ रहा है। पुरूषों के विपरीत अधिकांश कार्य उनकी शारीरिक संरचना एवं सामाजिक दायित्वों को ध्यान में रखकर उनके द्वारा अपनाये जाते थे, क्योंकि परिवार का केन्द्र बिन्दु होने के कारण परिवार के अन्य कार्य भी उन्हीं की जिम्मेदारी होते थे तथा वे दोनों का निर्वहन पूर्ण निष्ठा एवं लगन से करती थीं। महिलाओं की सबसे बड़ी समस्या उनके स्वास्थ्य को लेकर देखने को मिलती है, जो कि एक गम्भीर समस्या है। बाहर नौकरी के अतिरिक्त समस्त घरेलू कार्य एवं बच्चों की देखभाल भी परिवार में महिलाओं की ही जिम्मेदारी होती है, अतः वे दोहरी जिम्मेदारी का निर्वहन करती हैं। ऐसे में उनके स्वास्थ्य के लिए आराम न मिलना, पोषण में कमी, सन्तान प्रसव, इलाज की उपेक्षा आदि ऐसे कई कारण होते हैं, जिनका सीधा असर महिलाओं के स्वास्थ्य पर पड़ता है, जिसके परिणामस्वरूप उनकी कार्यकुशलता में कमी आती है।[1] महिलायें प्रत्येक समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग होती हैं तथा समाज के विकास की महिला अस्तित्व के बिना कल्पना भी नहीं की जा सकती है। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही महिला वर्ग में नई वैचारिक चेतना का विकास हुआ है जिसके परिणामस्वरूप श्रमिक वर्ग और असंगठित क्षेत्रों में महिलाओं की सहभागिता तीव्र गति से बढ़ी है। समकालीन भारत में नारी के स्थान और भूमिका के बारे में प्रचलित परम्परागत मान्यतायें धीरे-धीरे बदल रही हैं। आधुनिक शिक्षा प्राप्ति के सुअवसर, बढ़ती भौगोलिक व व्यावसायिक गतिशीलता तथा नए आर्थिक ढांचे का उदय ही इस प्रवृत्ति के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी है।[2]

असंगठित क्षेत्र का तात्पर्य बिना किसी संगठन के अनियमित कार्यों एवं उद्योग-धन्धों से है। कहने का तात्पर्य यह है कि ऐसे कार्य संगठित न होकर असंगठित होते हैं। प्रायः असंगठित क्षेत्रों में कार्य करने की कोई निश्चित सीमा नहीं होती है और परिश्रम का कोई निश्चित नियम नहीं होता। इस तरह के असंगठित क्षेत्रों में कार्य करने वाली महिलाओं का मुख्य उद्देश्य केवल धन कमाना होता है। गरीबी एवं निम्न जीवनयापन करने वाले अधिकांश परिवारों की महिलाएं जिनके पति की आय कम है तथा जो दैनिक वेतनभोगी या दिहाड़ी मजदूरी पर कार्य करते हैं उनकी महिलाऐं परिवार की आय बढ़ाने के लिए

❑ शोध अध्येत्री, समाजशास्त्र, एम०बी०, पी०जी० कॉलेज, हल्द्वानी (उत्तराखण्ड)

उच्च या मध्यम वर्गीय परिवारों में जाकर कार्य करना, कार्यरत महिलाओं के छोटे बच्चों की देखभाल करना, कृषि कार्य करना, दुकान चलाना आदि कार्य भी करती हैं। असंगठित क्षेत्र की अवधारणा घाना में कार्यरत् ब्रिटिश मानव वैज्ञानिक कीथ हार्ट के अध्ययन से निकली है। इसके बाद १६७० के दशक में आई०एल०ओ० ने इस अवधारणा में सम्मानीय कार्य का अवयव समाहित किया और फिर काम के अधिकार, काम करने वालों के अधिकार, श्रम संगठनों के अधिकार और सामाजिक सुरक्षा के अधिकार भी इस अवधारणा के साथ संलग्न होते गये। लेकिन कुछ विद्वानों ने स्पष्ट किया है कि ''असंगठित या अनौपचारिक क्षेत्र की अवधारणा को आर्थिक क्षेत्र तक ही सीमित रखना ठीक नहीं है। सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर यह अवधारणा अपने निहितार्थ में अत्यन्त व्यापक है। इसका केवल आर्थिक विश्लेषण समाज के अंतर्गत व्याप्त अनौपचारिक वास्तविकता के एक महत्वपूर्ण दायरे की अनदेखी करता है।''[३] असंगठित क्षेत्र अनौपचारिक भी हैं। हालांकि आंकड़ों और अधिकारिक दस्तावेजों में यह असंगठित ही है (असंगठित उद्यमों पर राष्ट्रीय आयोग, २००५-०६)। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि यह अर्थव्यवस्था कुसंगठित है। वास्वत में जिस रूप में यह संगठित है, उससे इसमें किसी भी भावी उत्पादन सुधार दशा के लिए बड़ी सम्भावना बन जाती है। असंगठित बाजार का नियमन सरकार द्वारा नहीं लेकिन समाज द्वारा जरूर होता है।[३] अनौपचारिक या असंगठित क्षेत्र से जुड़े रोजगारों का एक विशाल वर्ग भारतीय अर्थव्यवस्था की एक विशेषता है। भारत सरकार के श्रम मंत्रालय को असंगठित श्रम बल के अनुसार-व्यवसाय, रोजगार की प्रकृति, विशेष रूप से व्यवस्थित श्रेणियों और सेवा श्रेणियों के मामले में चार समूहों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।[४]

१. व्यवसाय के संदर्भ में: छोटे और सीमांत किसान, भूमिहीन खेतीहर मजदूर, हिस्सा साझा करने वाले मछुआरे, पशुपालक, बीड़ी रोलिंग करने वाले, ईंट भट्टों और पत्थर खदानों में लेबलिंग और पैकिंग करने वाले, निर्माण और आधारभूत संरचनाओं में कार्यरत श्रमिक, चमड़े के कारीगर, बुनकर, कारीगर, नमक मजदूर, तेल मिलों आदि में कार्यरत श्रमिकों को इस श्रेणी के अर्न्तगत माना गया है।

२. रोजगार की प्रकृति के संदर्भ में : संलग्न खेतिहर मजदूर, बंधुआ मजदूर, प्रवासी मजदूर, अनुबंधी और दैनिक मजदूर इस श्रेणी के अर्न्तगत आते हैं।[५]

३. विशेष व्यवस्थित श्रेणियों के संदर्भ में : ताड़ी बनाने वाले, सफाईकर्मी, सिर पर भार ढोने वाले, पशु चालित वाहन वाले श्रमिक इस श्रेणी के अर्न्तगत आते हैं।

४. सेवा श्रेणियों के संदर्भ में : घरेलू कामगार, मछुआरे और महिलाएं, नाई, सब्जी और फल विक्रेता, न्यूज पेपर विक्रेता आदि इस श्रेणी के अर्न्तगत आते हैं। **असंगठित श्रमिकों** के लिए सोशल सिक्यूरिटी एक्ट २००८ के अंतर्गत कर्मचारियों को व्यापक सामाजिक सुरक्षा में सम्मिलित किये जाने का पहला कदम उठाया गया था। इस अधिनियम में यह क्षमता है कि सारे कर्मचारियों जिसमें स्वयं के रोजगार भी सम्मिलित हैं उन्हें भी मूलभूत सामाजिक सुरक्षा के अंदर लाया गया है। हालांकि काम का समय, सुरक्षा और रोजगाार के सम्बन्ध, ये सब इन कर्मचारियों के लिये नियमों के बगैर ही चलते रहें।''[६] जन्म के कुछ समय बाद से ही लड़कियाँ श्रमशील बनाई जाती हैं। अपने घर के अन्दर शुरू से कार्यरत आबादी महिलाओं की रही है। शायद आज के दौर में महिलायें १८ घण्टे काम कर रही हैं। उनके श्रम को पूरी दुनिया ने नकारा है। पूरे भारत में महिला कामगार हर मोहल्ले हर कस्बे, खेत, बस्ती और न जाने कहाँ-कहाँ श्रम कर रही हैं और करती रहेंगीं। पूंजी के बदलते दौर में किया गया श्रम ही श्रम माना गया है महिलाओं द्वारा किया गया श्रम सेवाभाव है। जबकि २१ वीं सदी के भारत में महिलायें अपने श्रम के बल पर अपना जीवन चला रही हैं। बेटी पैदा होने पर पाँच साल की उम्र के बाद उनके श्रम शुरू हो जाते हैं। इस श्रम को परिवार, समाज, राज्य, राष्ट्र ने कभी स्वीकारा ही नहीं। परिवार की नींव रखने वाली परिवार चलाने वाली महिलायें होती हैं। निचले तबकों के

परिवारों में महिलाओं का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। असंगठित क्षेत्र की महिला श्रमिकों को उनके कार्य के अनुरूप अच्छी सेवा शर्तों के अनुसार बराबर (न्यायपूर्ण मजदूरी) मजदूरी नहीं मिलती है, न ही वहाँ उन्हें उत्पादकता बढ़ाने के अवसर मिलते हैं। काम करने वाले स्थानों में पानी ईंधन, स्वास्थ्य से सम्बन्धित सुविधाओं का अभाव रहता है। यौन उत्पीड़न इस क्षेत्र में व्याप्त है ठेकेदार कुली, मिस्त्री एवं अन्य पुरूष श्रमिक लड़कियों, महिलाओं का यौन शोषण करते हैं। गरीबी, जानकारी का अभाव, लोकलाज के कारण बात सामने नहीं आ पाती है। असंगठित श्रमिक सामाजिक सुरक्षा विधेयक २००७ में महिला श्रमिक को श्रमिक नहीं माना है। आज भी अधिकतर महिलायें अशिक्षा की शिकार हैं। सबसे ज्यादा गरीब महिला वर्ग है, जो लम्बे समय से मुफ्त में श्रम दान देती आ रही है। आज भी महिला श्रमिक सामाजिक सुरक्षा, मानवाधिकार, समान पारिश्रमिक, कामगार व्यवस्था, अवकाश, मातृत्व लाभ, विधवा, गुजारा भत्ता, कानूनी सहायता से वंचित है।[७]

घरेलू कामगारों की स्थिति और भी भयानक है, क्योंकि समाज में घरेलू काम को काम माना ही नहीं जाता है, चाहे वो अपने घर पर हो या दूसरे के घर पर। श्रम विभाजन के अंतर्गत घरेलू महिला कामगारों को हेय की दृष्टि से देखा जाता है जिनके लिए सामाजिक सुरक्षा का कोई उचित प्रावधान नहीं है। घरेलू महिला कामगारों और असंगठित क्षेत्र में महिलाओं के साथ हिंसा और यौन शोषण के मामलों में लगातार बढ़ोत्तरी हो रही है। एक श्रमिक के रूप में महिला श्रमिक की पुरूष श्रमिक से अलग समस्याएं होती हैं जिनकी श्रम कानूनों में कोई चर्चा नहीं है। अगर एक महिला निर्माण कार्य में अपने पति के साथ काम करती हैं तो उसका वेतन भी पति को ही मिल जाता है, हो सकता है कि वो पति उन पैसों को शराब में बर्बाद भी कर दे तो भी महिला कुछ नहीं कर सकती। इसी कारण महिलाएं खुद को सशक्त नहीं बना पाती हैं।[८] महिला श्रमिकों की दयनीय स्थिति पर प्रकाश डालते हुए अंजू रानी लिखती हैं 'भारतीय परिवार की पितृसत्तामक परम्परा के आधार ग्रामीण समुदायों में कृषि व्यवसाय के अंतर्गत स्त्रियों की महत्वपूर्ण भूमिका के बावजूद उन्हें कमाऊ सदस्य की संज्ञा न देकर उनकी गणना आश्रितों के अंतर्गत ही की जाती है; जीवन की समस्त गतिविधियों में पुरूष के समान ही कई बार अधिक भूमिका निर्वाह करने के पश्चात भी पुरूष की तुलना में समाज उन्हें गौण स्थान प्रदान करता है, कृषि कार्यों में पुरूषों के समान ही सहभागिता के बाद भी उनकी गणना कृषि श्रम शक्ति के अंतर्गत नहीं की जाती। शासन द्वारा समान कार्य हेतु स्त्री पुरूष को समान मजदूरी का अधिनियम पारित कर देने के बावजूद पुरूष की तुलना में उन्हें कम वेतन दिया जाता है, आदि काल से अब तक कृषि में महिलाओं द्वारा महत्वपूर्ण कहीं-कहीं पुरूष से भी अधिक योगदान देने के बाद भी कृषि को पुरूष-प्रधान व्यवसाय कहा जाता है, परिवार की आजीविका एवं आर्थिक आवश्यकताओं की संपूर्ति में सक्रिय भूमिका का निर्वहन करने के बाद भी उन्हें परिवार में पुरूष के समकक्ष स्थान प्राप्त नहीं होता अपितु पति का अधिपत्य स्वीकार करना पड़ता है, पुरूष के साथ समस्त गतिविधियों में कंधे से कंधा मिलकार कार्य करने के बाद भी पारिवारिक निर्णयों का अधिकार पुरूष के पास ही सुरक्षित रहता है।[९] नेशनल कमीशन ऑफ इम्पाइड वुमैन के अनुसार, भारत का असंगठित क्षेत्र महिलाओं का है जिसमें रोजगार के अवसरों की कमी नहीं है। इस क्षेत्र में महिलाओं की अधिकता इसलिए भी है कि वे गरीब, अशिक्षित एवं अप्रशिक्षित हैं। अपने परिवार, बच्चों के पालन एवं परिवार के आर्थिक स्तर को बेहतर बनाने के लिए ये आसानी से प्राप्त होने वाले कार्य को स्वीकार कर लेती हैं किन्तु उन्हें कार्य के दौरान आर्थिक, मनोवैज्ञानिक तथा अन्य कई प्रकार की समस्याओं का सामना भी करना पड़ता है।[१०]

असंगठित क्षेत्रों में महिलाएं मुख्य रूप से आर्थिक स्वतंत्रता के लिए काम करती हैं, परिवार की आर्थिक मजबूती और परिवार में अपनी स्थिति अच्छी करने के लिए स्वयं को काम के योग्य बनाती हैं। आमतौर पर अधिकांश महिलायें घरों तक ही सीमित होती हैं। शहरी

महिलाओं (१० प्रतिशत) की तुलना में ग्रामीण महिलाओं (२७ प्रतिशत) के बीच कार्य की भागीदारी दर अधिक हैं। असंगठित क्षेत्रों की अपेक्षा नियमित नौकरियों में महिलाओं को अच्छी परिस्थितियों में रोजगार प्राप्त होता है। अधिकांश महिलाओं को कृषि गतिविधियों और असंगठित क्षेत्रों में नियोजित किया जाता है। असंगठित क्षेत्रों में महिलाओं का रोजगार उच्च है जैसे घरों, निर्माण केन्द्र, टैनरीज (सेटिंग, विभाजन और सुखाने) मैच और बीड़ी उद्योग आदि में अंशकालिक सहायक के रूप में काम करती हैं। ''न केवल महिलाएं अधिक कार्य करती हैं, उनके काम पुरूषों द्वारा किये जाने वाले कार्य से भी अधिक कठिन हैं। ढाबों और ठेलों पर काम करने वाली महिलाओं को पूरे दिन गन्दे पानी और गन्दे मिट्टी में और दूषित वातावरण में काम करना पड़ता है जिससे उनके स्वास्थ्य पर खराब प्रभाव पड़ता है। इसके अलावा, वे पूरे दिन एक प्रदूषित वातावरण में काम करती हैं दूसरों के घरों में काम के दौरान उनका अधिकांध स्थानों पर शोषण किया जाता है।[११]

साहित्य सर्वेक्षण

जितेन्द्र कुमार लोहनी[१२] ने ''उत्तराखण्ड राज्य में आर्थिक क्रियाओं में संलग्न महिलाओं की समस्यायें-एक अध्ययन'' में संगठित और असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत् महिलाओं का अध्ययन किया है। अध्ययन में पाया कि राज्य की शैक्षिक स्तरानुसार आयुवर्ग ७ या उससे अधिक, कुल महिला जनसंख्या ४१.६३ लाख है, जिसमें से २०.९६ लाख (५०.३६ प्रतिशत) महिलायें साक्षर हैं, प्राइमरी से कम शैक्षिक महिलायें १२.७५ प्रतिशत, प्राइमरी से उत्तीर्ण महिलाओं का प्रतिशत १३.९१ है। वहीं राज्य में टेक्निकल एवं नॉनटेक्निकल डिप्लोमा (डिग्री के समकक्ष नहीं) उत्तीर्ण महिलाओं की संख्या कम है या नगण्य कही जा सकती है। हालांकि महिलाओं ने पुरूष समाज में अपने कर्मठ व्यक्तित्व के आधार पर अपना विशिष्ट स्थान बनाया है परन्तु फिर भी उनकी प्रगति का स्तर अपेक्षाकृत इतना अधिक नहीं बढ़ पाया, जितना कि होना चाहिये था। दोहरी जिम्मेदारी का निर्वहन करते हुए कई समस्याओं जैसे उचित स्वास्थ्य के लिए आराम न मिलना, पोषण की कमी, सन्तान प्रसव, इलाज की उपेक्षा इत्यादि।

निर्मला बनर्जी[१३] 'वुमेन वर्कर्स इन दि आर्गेनाइजड सेक्टर', द्वारा कलकत्ता नगर की महिला कर्मचारियों पर किये गए अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि महिलाओं के परिवार की आर्थिक स्थिति दयनीय है। असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत महिलाओं की व्यवसायिक स्थिति ने उनके परिवार एवं सामाजिक जीवन में कुछ परिवर्तन उत्पन्न किये हैं तथापि यह परिवर्तन अत्यन्त सीमित हैं। यद्यपि महिलाएं आज प्रत्येक क्षेत्र में अपनी कुशलता एवं योग्यता के आधार पर कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य कर रही हैं किन्तु उन्हें कई समस्याओं का सामना भी करना पड़ता है। उनकी कार्यगत परिस्थितियाँ उनके भूमिका संघर्ष को बढ़ावा देती हैं।

निम्मी पंत[१४] ने ''उत्तराखण्ड में महिलाओं की स्थिति'' अध्ययन में पाया कि पर्वतीय क्षेत्रों में महिलाओं को पुरूषों की अपेक्षा अधिक काम करना पड़ता है। पर्वतीय महिलाओं का जीवन संघर्षों से घिरा है तथा उनका जीवन अत्यन्त श्रम साध्य है। उन्हें भौगोलिक परिस्थितियों, सामाजिक रूढ़ियों, रीतिरिवाजों, और पुरूष प्रधान समाज में विषम परिस्थितियों, में अपने परिवार के अस्तित्व को बचाने के लिए कठिन संघर्ष करना पड़ता है। यद्यपि समग्र प्रदेश में साक्षरता प्रतिशत राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में अधिक ऊँचा है किन्तु कुल साक्षरता में महिलाओं का प्रतिशत अपेक्षाकृत कम है। शिक्षा की इस दयनीय स्थिति का मुख्य कारण स्त्री शिक्षा को अनुपयोगी समझा जाना व यातायात के समुचित साधनों का सर्वथा अभाव है।

सरस्वती जोशी एवं रेनू प्रकाश[१५] ने 'जनजातीय महिलाएँ और असंगठित क्षेत्रः कार्यगत परिस्थितियाँ' अल्मोड़ा नगर के असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत ३० भोटिया जनजातीय महिलाओं का चयन कर उनकी कार्यरत परिस्थितियों एवं उसमें उत्पन्न प्रमुख समस्याओं के बारे में अध्ययन में पाया कि असंगठित क्षेत्रों में महिलाओं में अधिकसंख्यक (४६.६७ प्रतिशत) सामाजिक तौर पर जागरूकता की कमी का निम्न स्थिति का कारण मानते हैं। कार्य के दौरान (७३.३ प्रतिशत)

दोहरी जिम्मेदारी से महिलायें त्रस्त हो जाती हैंतथा असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत महिलाओं में (८० प्रतिशत) कार्य के प्रति असुरक्षा की भावना उत्पन्न होती है जिससे उनमें अनावश्यक रूप से तनाव उत्पन्न होता है और असंगठित क्षेत्र में सरकारी योजनाओं का लाभ कोई विशेष लाभ नहीं होता।

सोनिया देवी[१६] ने 'कार्यशील हिन्दू महिलाओं की पारिवारिक स्थिति का समाजशास्त्रीय अध्ययन' के लिए जपनद बिजनौर का चुनाव किया है। जपनद बिजनौर में रहने वाली ४५० कार्यशील हिन्दू महिलायें हैं जिनमें से २२५ विवाहित तथा २२५ अविवाहित का चयन किया है। अध्ययन के अर्न्तगत अधिकांशतः (८४.४ प्रतिशत) महिलायें एकाकी परिवारों से संबद्ध हैं, उनमें अधिकांश (८३.१ प्रतिशत) नारी की अपेक्षा पुरूष की उच्चता को स्वीकार नहीं करती हैं। भारतीय नारी ने जीवन के उन्मुक्त आकाश की खोज तो की है किन्तु विचरण करने का साहस उनमें आज भी नहीं आया। अधिकांश कार्यशील महिलाएं (७८ प्रतिशत) पुत्र के महत्व को स्वीकार करती हैं तथा बहुसंख्यक (६६.७ प्रतिशत) महिलायें बच्चों को धार्मिक शिक्षा देने की पक्षधर हैं।

अध्ययन के उद्देश्य

१. असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत महिला श्रमिकों की सामाजिक, आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना है।
२. रूद्रपुर असंगठित क्षेत्र (जिनमें मुख्य रूप से घरेलू एवं दुकानों, कृषि तथा निर्माण कार्यों को करना आदि) में महिला श्रमिकों की कार्यगत परिस्थितियों एवं उनसे उत्पन्न प्रमुख समस्याओं का अध्ययन करना है।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत अध्ययन हेतु उत्तराखण्ड राज्य के जनपद ऊधम सिंह नगर का चयन किया गया है। यह उत्तराखण्ड राज्य का सातवां सबसे अधिक आबादी वाला शहर है। सिडकुल की स्थापना के बाद बहुत अधिक रोजगार, साक्षरता के साथ-साथ रूद्रपुर नगर का भी तेजी से विकास हुआ। जनगणना २०११ में रूद्रपुर की जनसंख्या १५४५५४ थी जो कि रूद्रपुर जो कि वर्तमान में दो लाख से अधिक है। इस अध्ययन के लिए ब्लॉक रूद्रपुरके ग्राम रम्पुरा का चुनाव किया है।[१७] २०११ की जनगणना के अनुसार ब्लॉक रूद्रपुर के ग्राम रम्पुरा में कुल ५६० महिलाएं हैं।[१८] प्राथमिक सर्वेक्षण के आधार पर असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत लगभग २५०श्रमिक महिलाएं हैं जिनमें से ५० श्रमिक महिलाओं का चयन सरल दैव निदर्शन पद्धति की लॉटरी विधि द्वारा किया गया है। अध्ययन मुख्य रूप से प्राथमिक आंकड़ों पर आधारित है तथा आंकड़ें एकत्रित करने के लिए मुख्य रूप से साक्षात्कार अनुसूची तथा आवश्यकतानुसार असहभागी अवलोकन पद्धति का उपयोग किया गया है।

विश्लेषण

सारणी संख्या-०१

सामाजिक स्थिति

सामाजिक स्थिति	संख्या	प्रतिशत
अच्छी	०८	१६
सामान्य	३६	७४
निम्न	०५	१०
योग	५०	१००

सारणी संख्या ०१ के आधार पर स्पष्ट होता है कि अधिकतम (७४ प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने महिलाओं की सामाजिक स्थिति को सामान्य स्वीकार किया है, १६ प्रतिशत उत्तरदाताओं की सामाजिक स्थिति अच्छी तथा १० प्रतिशत उत्तरदाता महिलाओं की स्थिति निम्न है। इस प्रकार अध्ययन से ज्ञात होता है कि असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत महिलाओं की स्थिति उनके सामाजिक जीवन को आर्थिक रूप से प्रभावित करती है।

सारणी संख्या-०२

मासिक आय

मासिक आय	संख्या	प्रतिशत
४००० रू. तक	१०	२०
४०००-५००० रू.	२८	५६
६००० रू. या अधिक	१२	२४
योग	५०	१००

सारणी संख्या ०२ के आधार पर स्पष्ट होता है कि अधिकतम (५६ प्रतिशत) उत्तरदाताओं का मानना है कि वे मासिक आय के रूप में ५००० रू० तक कमाती हैं, २४ प्रतिशत महिलायें मासिक आय के रूप में

६००० रू० या उससे अधिक कमा लेती हैं तथा निम्नतम २० प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करती हैं कि महिलायें मासिक आय के रूप में ४००० रू० तक कमाती हैं। सारणी से स्पष्ट होता है कि महिलाओं की माध्य आय ५०४० रू. है जो बहुत कम है। इस प्रकार अध्ययन से ज्ञात होता है कि असंगठित क्षेत्रों में महिलाओं को उनके काम के बदले जो मजदूरी प्राप्त होती है वह बहुत कम है दूसरे पुरूषों की अपेक्षा कम होती है। अधिक काम के बदले कम मजदूरी तथा स्वयं पर हो रहे शोषण को भी संकोचवश दूसरों को नहीं बता पाना महिलाओं पर हो रहे अत्याचार को दर्शाता है।

सारणी संख्या-०३

महिलाओं की निम्न स्थिति के कारण

निम्न स्थिति के कारण	संख्या	प्रतिशत
अशिक्षा	१५	३०
अप्रशिक्षित	१०	२०
जागरूकता की कमी	२०	४०
परम्परागत व्यवस्था	५	१०
योग	५०	१००

सारणी संख्या ०३ के आधार पर स्पष्ट होता है कि अधिकतम ४० प्रतिशत उत्तरदाता सामाजिक तौर पर जागरूकता की कमी, ३० प्रतिशत उत्तरदाता अशिक्षा, २० प्रतिशत उत्तरदाता अप्रशिक्षित तथा १० प्रतिशत उत्तरदाता परम्परागत व्यवस्था को महिलाओं की निम्न स्थिति के संदर्भ में स्वीकार करते हैं। इस प्रकार अध्ययन से ज्ञात होता है कि महिलाओं की स्थिति उच्च न होने पीछे, अशिक्षा, अप्रशिक्षित होना एवं जागरूकता की कमी तथा परम्परागत व्यवस्था आदि कारक उत्तरदायी रहे हैं।

सारणी संख्या-०४

कार्यरत महिलाओं के कार्य की प्रकृति

	संख्या	प्रतिशत
घरेलू कार्य	२०	४०
दुकानों में कार्य	०६	१२
कृषि कार्य	१३	२६
निर्माण स्थलों में कार्य	११	२२
योग	५०	१००

सारणी संख्या ०४ के आधार पर स्पष्ट होता है कि अधिकतम ४० प्रतिशत उत्तरदाता घरेलू कार्य, २६ प्रतिशत कृषि कार्य, २२ प्रतिशत उत्तरदाता निर्माण कार्य तथा १२ प्रतिशत उत्तरदाता दुकानों में कार्य करते हैं। आज महिलायें प्रत्येक क्षेत्र में कार्य कर रहीं हैं। महगांई के इस दौर में महिलायें अपने असंगठित क्षेत्र में किये कार्यों द्वारा चाहे वह कार्य थोड़े समय के लिए ही क्यों न हो, से अपने परिवार की मदद कर रही हैं।

सारणी संख्या-०५

उच्चता-निम्नता के भेदभाव के प्रति विचार

ऊँच-नीच का भेदभाव	संख्या	प्रतिशत
हाँ	१२	२४
नहीं	३८	७६
योग	५०	१००

सारणी संख्या ०५ के आधार पर स्पष्ट होता है कि अधिकांश (७६ प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने समाज में किसी प्रकार की उच्चता एवं निम्नता के भेदभाव को स्वीकार नहीं किया है जबकि २४ प्रतिशत उत्तरदाता सामाजिक जीवन में इस प्रकार के भेदभाव को मानते हैं। वास्तविकता तो यह है कि उच्चता एवं निम्नता का भेदभाव उनके कार्य के दौरान भी महिलाओं को देखने को मिलता है, परन्तु अब यह भेदभाव काफी कम हुआ है। अब भेदभाव के स्थान पर महिलाओं की कार्यनिष्ठा को पसन्द किया जाता है।

सारणी संख्या-०६

आर्थिक सुदृढ़ता के अभाव के संदर्भ में मत

आर्थिक सुदृढ़ता का अभाव	संख्या	प्रतिशत
हाँ	३५	७०
नहीं	१५	३०
योग	५०	१००

सारणी संख्या ०६ के आधार पर स्पष्ट होता है कि अधिकतम (७० प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया है कि असंगठित क्षेत्र में आर्थिक सुदृढ़ता नहीं होती जबकि ३० प्रतिशत उत्तरदाता असंगठित क्षेत्र में आर्थिक सुदृढ़ता न होने के पक्ष में नहीं हैं। वर्तमान समय में महिलाओं को आर्थिक रूप से मदद उनके द्वारा

किये गये कार्यों से प्राप्त होती है। किन्तु काम के बदले कम मजदूरी उनके लिए आज भी सोचने का विषय बनी हुई है तथा काम के दौरान काम से निकाल देने का भय उन्हें मानसिक रूप से परेशान भी करता रहता है और ऐसे क्षेत्रों में काम का कोई निश्चित मूल्य भी निर्धारित नहीं होता है। मालिकों द्वारा प्रायः मनचाहे रूप से भी मजदूरी दी जाती है।

सारणी संख्या-०७

कार्यस्थल पर होने वाली समस्यायें

कार्यस्थल पर समस्यायें	संख्या	प्रतिशत
दूषित वातावरण एवं अस्वच्छता	१५	३०
मौसम में उचित जलवायु का अभाव	२०	४०
असमय भोजन करना	१०	२०
दुर्घटनाओं का होना	०५	१०
योग	५०	१००

सारणी संख्या ०७ के आधार पर स्पष्ट होता है कि अधिकतम ४० प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि कार्यस्थल पर मौसम में उचित जलवायु का अभाव, ३० प्रतिशत उत्तरदाताओं को दूषित वातावरण एवं अस्वच्छता, २० प्रतिशत उत्तरदाताओं को असमय भोजन करने तथा निम्नतम १० प्रतिशत उत्तरदाताओं को दुर्घटनाओं का शिकार जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कई बार खुली जगह काम के दौरान महिलाओं की स्थिति खराब हो जाती है पर मालिकों द्वारा उन्हें किसी भी प्रकार का कोई अवकाश या पैसा नहीं दिया जाता है अगर दिया भी जाता है तो उसे उनकी आय में से काट दिया जाता है। इस प्रकार कार्यस्थल पर महिलाओं को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

सारणी संख्या-०८

कार्यस्थल में अवांछनीय व्यवहार

अवांछनीय व्यवहार	संख्या	प्रतिशत
हाँ	२२	४४
नहीं	२८	५६
योग	५०	१००

सारणी संख्या ०८ के आधार पर स्पष्ट होता है कि अधिकांश (५६ प्रतिशत) उत्तरदाताओं को कार्यस्थल में किसी प्रकार के अवांछनीय व्यवहार का सामना नहीं करना पड़ता जबकि ४४ प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जो कार्यस्थल में अवांछनीय व्यवहार का सामना करती हैं। बदलते समय में जितना अधिक लोगों की सोच में बदलाव आया है उतने ही अपराधों को भी बढ़ावा मिल रहा है। कार्यस्थल पर काम के दौरान महिलाओं से कई बार गाली-गलौज, मारपीट तथा गन्दी भाषा का प्रयोग या उनका शोषण किया जाता है और उन्हें दबाव में लेकर काम करवाया जाता है।

सारणी संख्या-०९

पुरूष मानसिकता में परिवर्तन

मानसिकता में परिवर्तन	संख्या	प्रतिषत
हाँ	३५	७०
नहीं	१०	२०
कह नहीं सकते	०५	१०
योग	५०	१००

सारणी संख्या ०९ के आधार पर स्पष्ट होता है कि अधिकतम ७० प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि स्त्रियों की कार्यशीलता के प्रति पुरूष मानसिकता में परिवर्तन आया है, २० प्रतिशत उत्तरदाता इस परिवर्तन को नहीं स्वीकारते जबकि १० प्रतिशत उत्तरदाता इस विषय में कुछ कह नहीं सकते हैं। बदलते समय की बढ़ती आवश्यकताओं ने महिला एवं पुरूष दोनों की सोच में परिवर्तन किया है। आवश्यकताओं के इस दौर में आज अधिकतर पुरूष चाहते हैं कि घर-परिवार में आर्थिक रूप से महिलायें भी सहयोग करें। ऐसी सोच के साथ पुरूष वर्ग के विचारों में परिवर्तन हुए हैं परन्तु कुछ पुरूष आज भी महिलाओं को काम कराने के पक्ष में नहीं हैं। उनका मानना है कि महिलायें घर-परिवार के कार्यों को अधिक सरलता से कर सकती हैं और बच्चों के पालन-पोषण का ध्यान भी अच्छे से रख सकती हैं।

सारणी संख्या-१०

असुरक्षा की भावना होने से उत्पन्न तनाव

असुरक्षा से उत्पन्न तनाव	संख्या	प्रतिशत
हाँ	४५	९०
नहीं	०५	१०
योग	५०	१००

सारणी संख्या १० के आधार पर स्पष्ट होता है कि अधिकतम ९० प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि असंगठित क्षेत्र होने के कारण कार्य के प्रति असुरक्षा की भावना उत्पन्न होती है जो तनाव उत्पन्न करती है जबकि १० प्रतिशत ने इस प्रकार की असुरक्षा एवं तनाव को महसूस नहीं किया है। काम के दौरान महिलायें असंगठित क्षेत्रों में असमय कार्य छूटने के डर की भावना से काम करती हैं उन्हें हर समय यह चिन्ता लगी रहती है कि कब मालिकों द्वारा उन्हें काम से निकाल दिया जायेगा। ऐसे मानसिक तनाव के साथ महिलाओं को दिन-प्रतिदिन काम करना पड़ता है।

सारणी संख्या-११

दोहरी जिम्मेदारी के कारण तनाव

उत्तर	संख्या	प्रतिशत
हाँ	४०	८०
नहीं	१०	२०
योग	५०	१००

सारणी संख्या ११ के आधार पर स्पष्ट होता है कि अधिकतम ८० प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि दोहरी जिम्मेदारियों के कारण महिलाएं त्रस्त हो जाती हैं जिससे अनावश्यक तनाव उत्पन्न होता है इसके विपरीत २० प्रतिशत उत्तरदाता इस प्रकार के तनाव को स्वीकार नहीं करते हैं। दोहरी जिम्मेदारी अर्थात् घर व बाहर काम दोनों को साथ-साथ करना महिलाओं के लिए किसी चुनौती से कम नहीं होता है।

निष्कर्ष : सम्पूर्ण विवेचना के आधार पर स्पष्ट होता है कि असंगठित क्षेत्रों में अधिकतम ७४ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने महिलाओं की सामाजिक स्थिति को सामान्य स्वीकार किया है, १६ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सामाजिक स्थिति को अच्छी तथा निम्नतम १० प्रतिशत उत्तरदाता महिलाओं की स्थिति निम्न मानते हैं। बदलते समय ने आज जातिवाद को कम किया है आज कार्यकुशलता एवं योग्यता को बढ़ावा दिया जा रहा है जिससे महिलाओं की स्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ है। असंगठित क्षेत्रों में महिलाओं को उनके काम के बदले जो मजदूरी प्राप्त होती है वह न केवल पुरूषों की अपेक्षा कम होती है अपितु बहुत कम होती है उन्हें प्राप्त होने वाली मासिक माध्यम आय मात्र ५०४० रू. है जो बहुत कम है। महिलाओं की स्थिति उच्च न होने पीछे अशिक्षा, अप्रशिक्षित होना, जागरूकता की कमी तथा परम्परागत व्यवस्था आदि कारक सम्मिलित रहे हैं। उत्तरदाता महिलाएं घरेलू कार्य, कृषि कार्य, निर्माण कार्य तथा दुकानों में कार्य करती हैं। महंगाई के इस दौर में महिलायें अपने असंगठित क्षेत्र में किये कार्यों द्वारा चाहे वह कार्य थोड़े समय के लिए ही क्यों न हो, से अपने परिवार की मदद कर रही हैं। अधिकांश (७६ प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने समाज में किसी प्रकार के उच्चता एवं निम्नता के भेदभाव को स्वीकार नहीं किया है किन्तु अनेक महिलाओं को भेदभाव उनके कार्य के दौरान देखने को मिलता है। अध्ययन की महिलाओं ने अधिकांशतः (७० प्रतिशत) स्वीकार किया है कि असंगठित क्षेत्र में आर्थिक सुदृढ़ता नहीं होती है। काम से निकाल देने का भय उन्हें मानसिक रूप से परेशान भी करता रहता है और ऐसे क्षेत्रों में काम का कोई निश्चित मूल्य भी निर्धारित नहीं होता है। मालिकों द्वारा प्रायः मनचाहे रूप से भी मजदूरी दी जाती है। काम के दौन उत्तरादाताओं को मौसम में उचित जलवायु का अभाव, दूषित वातावरण एवं अस्वच्छता, असमय भोजन करने तथा दुर्घटनाओं का शिकार होने जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। यद्यपि अधिकांश उत्तरदाताओं को कार्यस्थल में किसी प्रकार के अवांछनीय व्यवहार का सामना नहीं करना पड़ता तथापि इनकी यथेष्ठ संख्या जो कार्यस्थल में अवांछनीय व्यवहार का सामना करती हैं। कार्यस्थल पर काम के दौरान महिलाओं से कई बार गाली-गलौज, मारपीट तथा गन्दी भाषा का प्रयोग या उनका शोषण किया जाता है और उन्हें दबाव में लेकर काम करवाया

जाता है। अधिकांश उत्तरदाताओं का मानना है कि स्त्रियों की कार्यशीलता के प्रति पुरूष मानसिकता में परिवर्तन आया है। बदलते समय की बढ़ती आवश्यकताओं ने महिला एवं पुरूष दोनों की सोच में परिवर्तन किया है। आवश्यकताओं के इस दौर में आज अधिकतर पुरूष चाहते हैं कि घर-परिवार में आर्थिक रूप से महिलायें भी सहयोग करें। ऐसी सोच के साथ पुरूष वर्ग के विचारों में परिवर्तन हुए हैं। अधिकांश उत्तरदाताओं का मानना है कि असंगठित क्षेत्र होने के कारण कार्य के प्रति असुरक्षा की भावना उत्पन्न होती है जो तनाव उत्पन्न करती है। महिलायें असमय कार्य छूटने के डर की भावना से काम करती हैं। अध्ययन की विपुलांश उत्तरदाता मानती हैं कि घर और बाहर की दोहरी जिम्मेदारियों के कारण महिलाएं त्रस्त हो जाती हैं जिससे अनावश्यक तनाव उत्पन्न होता है। दोहरी जिम्मेदारी महिलाओं के लिए किसी चुनौती से कम नहीं होता है।

संदर्भ

१. लोहनी जितेन्द्र कुमार, 'उत्तराखण्ड में आर्थिक क्रियाओं में संलग्न महिलाओं की समस्यायें- एक अध्ययन' 'Empowerment of Rural Women Status, Challenges and Solutions'. Contemporary Research Papers of Social Sciences: Vol. III, p. 337.

२. Dube, S.C., 'Men's and Women's Role in India' Women in the New Asia (Eid), Barbara E. Ward 1963. p. 202.

३. झा, राजेश कुमार (सम्पादकीय) योजना अक्टूबर २०१४, पृ. ४-५

४. Banerjee, Nirmala, 'Women Workers in the Organized Sector', Sewagram Book Hyderabad 1985.

५. hi.vikaspedia.in

६. http//blog.just.jobs

७. nmap.nfi.org.in

८. www.im4change.org

९. रानी अंजू, 'कृषि में महिला श्रमिक-योगदान और स्थिति, राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष १ अंक १, जनवरी-जून, १९९९, पृ. ५६

१०. बारबरा हैरिस व्हाइट, 'भारतीय असंगठित अर्थव्यवस्था की भूमिका', योजना, अक्टूबर २०१४, पृ. ६

११. http://www.legalserviceindia.com

१२. लोहनी जितेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. ३३७

१३. Banerjee, Nirmala., op.cit:

१४. पंत निम्मी, उत्तराखण्ड में महिलाओं का स्थिति, Empowerment of Rural Women, Status, Challenges and Solutions. Contemporary Research Papers of Social Sciences: Vol. III p. 386.

१५. जोशी, सरस्वती एवं रेनू प्रकाश 'जनजातीय महिलाएँ और असंगठित क्षेत्रः कार्यगत परिस्थितियाँ' राधा कमल मुखर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष १८ अंक २, जुलाई-दिसम्बर २०१६ पृ. १३५-१३८।

१६. देवी सोनिया 'कार्यशील हिन्दू महिलाओं की पारिवारिक स्थिति का समाजशास्त्रीय अध्ययन' राधा कमल मुखर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष १८ अंक २, जुलाई-दिसम्बर २०१६ पृ. १२३-१२५।

१७. nagarnigamrudrapur.com

१८. www.wikivillage.in

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

साइबर अपराध : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

❑ निशा बरैया

अपराध एक सार्वभौमिक सामाजिक घटना हैं जिससे कोई भी देश या समाज अछूता नहीं हैं। समाज आदिम हो अथवा आधुनिक, शिक्षित हो या अशिक्षित पर प्रत्येक समाज में अपराध और अपराधी पाये जाते रहे हैं। किन्तु सार्वभौमिक होते हुये भी अपराध की व्याख्या में सार्वभौमिकता का अभाव पाया जाता हैं। एक ही कार्य एक स्थान पर अपराध माना जाता हैं किन्तु दूसरे स्थान पर उसी कार्य के लिये पुरस्कृत किया जाता है। चाहे प्राचीन काल रहा हो या वर्तमान परिवेश, अपराध सदैव ही घटित होते रहे हैं। यह बात और है कि समय, काल व परिस्थिति के अनुसार अपराध के स्वरूपों में भी परिवर्तन आया है। ''अपराध मानव के वे समाज विरोधी आचरण हैं जो सामाजिक या वैधानिक नियमों के विपरीत होते हैं। वैधानिक दृष्टि कोण से कानून द्वारा निषिद्ध किसी भी कार्य को करना अपराध है। अपराध कानूनी तौर पर वर्जित और साभिप्राय कार्य है, जिसका सामाजिक हितों पर हानिकारक प्रभाव पड़ता हैं, जिसके लिये कानूनी तौर से दण्ड निर्धारित हैं।''[1] जैसे जैसे मानव समाज विकास की ओर अग्रसर हो रहा है वैसे वैसे अपराधी भी नई-नई तकनीक व अत्याधुनिक उपकरणों से लैस हो रहे हैं। पिछले एक दशक से अपराध की संरचना में एक और अपराध जुड़ गया है, जिसे साइबर अपराध कहा जाता है। कम्प्यूटर व इन्टरनेट द्वारा की गई किसी भी तरह की आपराधिक गतिविधियाँ साइबर अपराध की श्रेणी में आती हैं। प्रस्तुत शोध पत्र समाज में बढ़ते साइबर अपराध की वस्तुस्थिति को प्रकाशित करने का एक प्रयास हैं।

वर्तमान सूचना प्रौद्योगिकी के दौर में कम्प्यूटर एवं इन्टरनेट मानव जीवन के लिए वरदान है। इस तकनीक ने हमारे जीवन को गतिशील बनाने के साथ-साथ ज्ञान के अथाह संसार से जोड़ने तथा सूचनाओं का असीमित भण्डार उपलब्ध कराने का कार्य किया हैं। जैसे-जैसे विज्ञान उन्नति कर रहा है उसके आविष्कारों का लाभ मानव समुदाय को प्राप्त हो रहा हैं। विज्ञान का ऐसा ही आविष्कार सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी है। इसके प्रयोग से लोगों के मध्य निकटता तो बढ़ी ही हैं साथ ही सूचना के आदान-प्रदान ने भी गति पकड़ी हैं। इसका लाभ उच्च शिक्षा में भी मिल रहा हैं।

''**सूचना संचार** प्रौद्योगिकी ने अपने पाँव इस कदर पसार लिए हैं कि सात समुन्दर पार बैठा व्यक्ति कुछ ही क्षणों में वह जानकारी जुटा लेता हैं जो उसे मिलना असम्भव हैं।''[2] कम्प्यूटर व इन्टरनेट ने हमारे जीवन को सरल एवं सुखमय बनाया है, सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी विकास ने दुनिया को बहुत छोटा कर दिया हैं। आज इन्टरनेट के माध्यम से किसी भी विषय की जानकारी जुटाना सहज हो गया है। यही कारण हैं कि सूचना प्रौद्योगिकी इस सदीं की क्रांतिकारी खोज हैं। मानव समाज जैसे जैसे डिजिटल इंडिया, स्मार्ट सिटी इत्यादि तरक्की को ओर बढ़ता जा रहा है उतने ही अपराधों में भी वृद्धि हो रही हैं। प्रस्तुत शोध पत्र द्वितीयक स्त्रोतों पर आधारित है जिसमें साइबर अपराधों से जुड़े शोध विषय का वस्तुपरक अध्ययन एवं विश्लेषण करने का एक लघु प्रयत्न किया गया है। आभा गोयल[3] ने अपने शोधपत्र में उल्लेख किया है कि ''साइबर क्राइम समाज की संस्कृति के विपरीत कार्य का परिणाम है, जो सूचना तकनीकी के माध्यम से किया जाता है।'' साथ ही नाजिया बानो[4] ने अपने शोध पत्र मे स्पष्ट किया है कि ''साइबर अपराध समाज के लिए भी एक अभिशाप बन गया है, जिसके परिणाम हमें भविष्य में भोगने होगें।''

आधुनिक युग आर्थिक युग भी है तथा मानव को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए काफी धन की आवश्यकता होती हैं लेकिन निर्धनता एक ऐसा अभिशाप हैं जो मानव को कहीं से कहीं ले जाता हैं। ''दरिद्रता के कारण राज्य में विप्लव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिससे अपराधों की संख्या में वृद्धि होती है। अधिकांश अपराधी कृत्य केवल आवश्यकताओं की पूर्ति

❑ एम.फिल. समाजशास्त्र, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.).

मात्र के लिए न किए जाकर, अतिरिक्त धन या वस्तुऐें प्राप्त करने की दृष्टि से किए जाते हैं।''[५]

एक प्राचीन कहावत हैं कि भूख कौन सा पाप नहीं करा सकती है। जब व्यक्ति समाज द्वारा स्वीकृत पद्धतियों के द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असफल हो जाता हैं तब व्यक्ति के मस्तिष्क में प्रतिक्रिया स्वरूप आपराधिक मनोवृत्ति जन्म लेती हैं तथा वह अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए उचित, अनुचित का विचार त्याग कर साधन जुटाने हेतु अपराधी व्यवहार अपना लेता हैं यही मनोवृत्ति अनेक अपराधों को जन्म देती हैं।[६] किन्तु समाजशास्त्रीय व्याख्या में अपराध की परिस्थितियों पर अधिक जोर दिया जाता है। ''सामाजिक दृष्टिकोण से समाज के नियमों का उल्लंघन अपराध माना जाता हैं इसे एक असामाजिक कार्य कहा गया हैं।''[७] ''सामाजिक दृष्टिकोण से अपराध व्यक्ति का एक ऐसा व्यवहार हैं जो उन मानव सम्बन्धों की व्यवस्था में बाधा डालता हैं जिन्हें समाज अपने अस्तित्व के लिए मौलिक शर्त के रूप में मानता हैं।''[८]

२१वीं सदीं में अस्तित्व में आए इन्टरनेट ने जीवन को गतिशील व सुलभ बना कर, वैश्वीकरण के युग में ग्लोबल विलेज की अवधारणा को सार्थक किया हैं। इन्टरनेट के उपयोग से समाज में जहां एक ओर गतिशीलता का संचार हुआ है, वहीं दूसरी ओर इसके उपयोग से कई अन्य सामाजिक बुराइयों एवं समस्याओं ने जन्म ले लिया है।

मानव जीवन को यदि आज किसी वैज्ञानिक खोज ने सर्वाधिक प्रभावित किया है तो वह इन्टरनेट है। महानगरों, कस्बों, बाजारों से होकर इन्टरनेट सम्पूर्ण विश्व तक पहुंच गया है। आज यह मनोरंजन का सबसे सस्ता और सरल साधन है, वहीं यह राष्ट्रीय सीमाओं के पार व्यक्ति से व्यक्ति, संगठन से संगठन और व्यक्ति से संगठन तक, जोड़ने वाला एक माध्यम है। इसकी सहायता से जटिल वैज्ञानिक कार्यो को हल किया जाता है। इन्टरनेट का बढ़ता दिन प्रतिदिन उपयोग हमारे लिये घातक भी सिद्ध हो रहा हैं।

यह तो किसी ने कल्पना में भी नहीं सोचा था कि यह इन्टरनेट सुरक्षा की दृष्टि से एक चुनौतीपूर्ण विषय बन जाएगा। चिंतनीय विषय यह है कि ''साइबर तकनीकी का प्रयोग आतंकवादी गतिविधियों में सहायक उपकरण की भॉति प्रयुक्त हो रहा है। आतंकवादियों द्वारा कट्टरपंथी व समाज में विषवमन करने वाली विचारधारा को प्रसारित करने हेतु इन्टरनेट का इस्तेमाल बहुत अधिक किया जा रहा है।''[९] आतंकवादी गुप्त संदेशों के आदान प्रदान के नए नए तरीके निकालकर सुरक्षा एजेन्सियों के समक्ष लगातार चुनौती पेश कर रहे हैं जिस पर शीघ्रता से नियंत्रण लगाने की आवश्यकता हैं। साथ ही कम्प्यूटर व इन्टरनेट के माध्यम से ऑनलाइन ठगी, हैंकिग, वेबसाइट हैक करना, सिस्टम डेटा चोरी, साइबर स्टौकिंग, पोर्नोग्राफी को बढ़ावा देना, लॉजिक वम्ब, वायरस द्वारा डाटा को नष्ट करना, नकली ई-मेल भेज कर जानकारी प्राप्त कर डाटा चोरी करना इत्यादि अपराध भी तकनीकी के माध्यम से किये जा रहे हैं।

''**वह क्राइम** जो कम्प्यूटर इन्टरनेट द्वारा किया जाता है वह साइबर क्राइम है।''[१०] ''लंदन ब्रिगेटन यूनिवर्सिटी के अनुसन्धानकर्ता ने अपने अध्ययन में पाया कि भारत तेजी से साइबर अपराध की ओर अग्रसर हो रहा है। भारत में चलने वाले कॉल सेन्टर, भीतरी धोखाधड़ी के स्त्रोत हैं। इसके कारण की पहचान करते हुए अध्ययन में कहा गया है कि आर्थिक मंदी कम्प्यूटर साक्षर अपराधियों को इलेक्टॉनिक घोटालों की ओर ले जा रही है।''[११] साइबर अपराध में अश्लीलता भी सम्मिलित है जिससे अश्लीलता को बढ़ावा मिला है, जिससे सांस्कृतिक पतन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई है। इस अपराध से जुड़ी एक विशिष्टता यह भी है कि उन्हें अंजाम देने में समय नही लगता है। माउस की एक क्लिक के साथ एक बड़ा अपराध पल भर में घटित हो जाता हैं।

इन्टरनेट के माध्यम से आर्थिक नुकसान पहुंचाने के लिये अधिकांश अपराधियों ने वायरस को अपना हथियार बना रखा है। कुछ वायरस ऐसे भी होते हैं जो

लोगों को काम पिपासा शांत कराने के लिए उकसाते है। जैसे कुछ समय पहले नेट पर ''अन्ना कुर्निकोवा वायरस'' और ''नेकेड वाईफ वायरस'' जारी हुए थे, जिसके मोहजाल में फसकर करोड़ों लोग अपने डाटा और कम्प्यूटर प्रोग्राम से हाथ धो बैठे थे। कई सर्वेक्षणों से पता चला है कि, अधिकांश साइबर क्राइम वे ही लोग करते हैं, जो सिस्टम की अच्छी जानकारी रखते हैं। साइबर क्राइम के अंतर्गत सबसे अधिक प्रहार ई. कॉमर्स से जुड़े व्यापारियों पर होता है।

अलबर्ट आंईस्टीन[१२] के अनुसार ''यह बात पर पूरी तरह प्रकट हो चुकी हैं कि, टैक्नोलॉजी ने हमारी मानवता का अतिक्रमण कर लिया हैं।'' कम्प्यूटर विज्ञानी जेवियर गीज के अनुसार[१३] ''साइबर क्राइम कम्प्यूटर व इन्टरनेट के माध्यम से होने वाला अपराध है जिसके अन्तर्गत जालसाजी, चाईल्ड पोर्नोग्राफी, साइबर स्टाकिंग शामिल हैं।'' कम्प्यूटर एवं इन्टरनेट के बढ़ते प्रयोग से अपराधों में भी तीव्रगति से वृद्धि हो रही हैं, जो इन्टरनेट व उसके विश्वव्यापी जाल का नकारात्मक पहलू हैं।

ब्रिटिश बैंकिंग एसोसिएशन के अनुमान के अनुसार[१४] – कम्प्यूटर धोखाधड़ी से प्रतिवर्ष होने वाला विश्वव्यापी नुकसान लगभग ८ से १० बिलियन डॉलर है। दूसरे प्रकार के क्राइम की तरह साइबर क्राइम को भी तीन भागों में बांटा गया है –

१. मानवीय संवेदनाओं के विरूद्ध साइबर अपराध
२. सम्पत्ति के विरूद्ध अपराध जैसे धोखाधड़ी, जालसाजी, आई.डी. चोरी करना।
३. सरकारी तंत्र के विरूद्ध अपराध जैसे अन्तरिक्ष रिसर्च कार्यक्रमों, मिलिट्री या रक्षा संगठनों, परमाणु ऊर्जा संसाधनों के आकड़ों की चोरी, राष्ट्रीय वेब साइट्स को हैक करके उन पर राष्ट्र विरोधी बयान जारी करना आदि।

फेसबुक साइबर क्राइम का नया अड्डा : फेसबुक सोशल नेटवर्किंग साइट हैं, जो कि हमेशा साइबर अपराधों से विवादित घिरी रहती हैं , जिसमें नित्य नये अपराध दिन प्रतिदिन घटित होते रहे हैं। मानव अधिकारों का उल्लंघन एवं साइबर अपराधों को बढ़ावा देने के लिए नया आकर्षक प्लेटफार्म उपलब्ध कराया हैं जिसे हम फेसबुक के नाम से जानते हैं यह एक ऐसा आकर्षक प्लेटफार्म हैं जो किसी भी व्यक्ति को आकर्षिक कर अपराध करने पर विवश कर देता हैं इसके द्वारा बीते हुये कल के राज खोले जा सकते हैं। किसी का नाम लेकर उससे सम्बन्धित कई झूठी.सच्ची कहानियाँ लिख सकते हैं। इन अपराधों के लिए अलग से थाने बनाये गये हैं जिसमें केवल साइबर क्राइम से सम्बन्धित अपराध दर्ज किये जाते हैं।

इंजीनियर सोलन सुधा सक्सेना (साइबर फारेंसिक एक्सपर्ट) के अनुसार[१५] ''फेसबुक एक विदेशी सोशल नेटवर्किंग साईट हैं जो संवैधानिक नियम एवं कानून के अनुसार नहीं बनाई गई है। फेसबुक किसी भी अपराध में भारतीय कानून की मदद करने के लिए बाध्य नहीं हैं। फेसबुक की विभिन्न गतिविधियॉ भारत में विभिन्न प्रकार की समस्याएं उत्पन्न कर रही हैं।''

''**भारत** में इन्टरेनट का उपयोग जिस गति से बढ़ रहा है उतनी ही तीव्रता से साइबर अपराधों में वृद्धि हो रही।''[१६] Malicious Activity by source : Global Ranking[१७] के अनुसार, विश्व में भारत साइबर अपराध के तीसरे पायदान पर हैं।

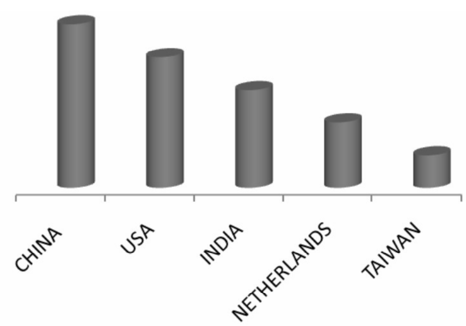

भारत के राज्यों में एन.सी.आर.बी. की रिपोर्ट २०१५ के अनुसार[१८] साइबर क्राइम निम्न अनुसार हैं–

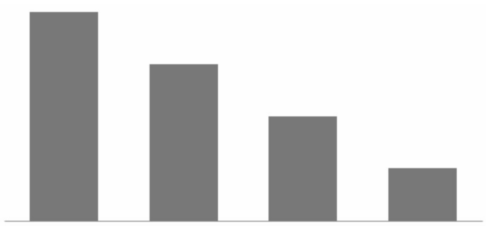

भारत में साइबर क्राइम के ऑकड़े [१८]

वर्ष	साइबर क्राइम
२०११	१३,३०१
२०१२	२२,०६०
२०१३	७१,७८०
२०१४	१,५०,०००
२०१५	३,००,०००

भारत में साइबर क्राइम के ऑकड़ों से ज्ञात होता है कि सन् २०११ में कुल १३३०१, वर्ष २०१२ में २२,०६०, वर्ष २०१३ में ७१७८० अपराध थे सन् २०१४ में यह आकड़ा १,५०,००० तक पहुंच गया था जिसके आधार पर वर्ष २०१५ में यह अपराध दोगुना होने की उम्मीद है। चिंता का विषय यह कि साइबर क्राइम को अंजाम देने वाले अधिकतर अभियुक्त युवा है, जिनकी आयु १८ से ३० वर्ष की बीच हैं।

वर्तमान में साइबर क्राइम के माध्यम से आर्थिक अपराध तेजी से बढ़ रहे हैं इनमें अधिकतर ऑनलाइन खरीददारी और बैंकिग से जुड़े हैं। एक तथ्य यह भी समाने आया हैं कि एशियाई देश साइबर क्राइम का अड्डा बन गये हैं। साइबर अपराधी मुख्यतः चीन, बांग्लादेश, पाकिस्तान व ब्राजील इत्यादि देशों से इन अपराधिक घटनाओं को अंजाम दिया रहा है। भारत में चलते कॉल सेन्टर भी साइबर डाटा उपलब्ध कराने में साइबर क्राइम को मदद कर रहे हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ की एक रिपोर्ट[२०] के अनुसार इन्टरनेट का प्रयोग करने वाली लगभग एक तिहाई महिलायें किसी न किसी तरह से साइबर अपराध के निशाने पर होती हैं। एक सर्वे में ८६ देशों का अध्ययन किया गया और पाया गया कि भारत में ऑनलाइन परेशान किए जाने पर भी महिलाऐं, इन मामलों की शिकायत नहीं करतीं। भारत में ३५ प्रतिशत महिलाओं ने ही अपने खिलाफ हुये साइबर क्राइम की शिकायत की जबकि लगभग ४७ प्रतिशत ने कोई शिकायत नहीं की। शेष महिलाओं को तो इस बात का एहसास ही नहीं था कि वे साइबर क्राइम का शिकार हो रही हैं। अधिकांशतः १८ से २४ वर्ष की महिलाऐं व लड़कियाँ खास तौर पर अपराध का निशाना बनती हैं। यह भी पाया गया हैं कि दुनिया भर में इन्टरनेट इस्तेमाल करने वाले देशों में ५ में से १ महिला औसतन ऐसी है जिसके खिलाफ अगर साइबर अपराध होते भी हैं, तो दोषी को सजा मिलने की सम्भावना बेहद क्षीण होती हैं। इनमें से कुछ अपराधों की तो शिकायते दर्ज नहीं करवायी जाती है। ''भारत में तीन चौथाई इन्टरनेट उपभोक्ता किसी न किसी रूप में साइबर अपराध का शिकार हो रहे हैं। इन अपराधों की घटनाओं में करीब ५० प्रतिशत की वृद्धि हर साल हो रही है।''[२१]

साइबर अपराध के प्रकार -

(१) हैंकिग - यह सर्वाधिक प्रचलित साइबर अपराध है। इसमें सॉफ्टवेयर के माध्यम, किसी दूसरे कम्प्यूटर में घुसपैठ कर उसमें मौजूदा जानकारियों को चोरी कर व नष्ट कर, फाइलों व सूचनाओं के साथ छेड़छाड़ कर साइट को हैक करना हैंकिग है। हैंकिग सम्बन्धित निम्न ऑकड़े निम्न हैं।''[२२]

वर्ष	हैंकिग सम्बन्धित आंकड़े
२०११	३६१
२०१२	१८६
२०१३	१५५
२०१४	१६४
२०१५	१००
कुल	६६६

उपर्युक्त आकड़ों से स्पष्ट होता हैं कि भारत में कुल ६६६ वेबसाइट हैक की गईं, जिसमें वर्ष २०१४ में १६४, २०१५ में १०० वेबसाइटों को हैक किया गया।

(२) साइबर आतंकवाद - साइबर प्रणाली के माध्यम से आतंकवादियों द्वारा आतंकीय घटना, सूचना

व अन्य गुप्त संदेशों का आदान प्रदान कम्प्यूटर नेटवर्क के द्वारा किया जाता है। इसकी विकरालता का पता इस बात से लगाया जा सकता है कि ''अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवादी ओसामा बिन लादेन ने विश्व के विभिन्न देशों में अपने समर्थित आतंकवादियों को ई मेल के माध्यम से हिंसक कार्यवाहियों के लिए गुप्त, व सांकेतिक सन्देश भेज कर हिंसक घटनाओं को अंजाम दिया।''[२३]

(३) **नेट एक्सटार्सन** - बड़ी बड़ी कम्पनियों का डाटा जो गोपनीय होता हैं उन्हें चोरी से प्राप्त करके बड़ी रकम देने के लिए धमकी देना।

(४) **इण्टरनेट रीले चेट (आई.आर.सी.)** - चैंटिग के माध्यम से गलत कार्यो को अंजाम देना, किसी व्यक्ति को परेशान करना।

(५) **लॉजिक वम्ब** - ऐसे प्रोग्राम जो किसी विशेष निर्देश पर सक्रिय होकर कम्प्यूटर प्रोग्राम या डाटा को नष्ट या क्षतिग्रस्त कर देते हैं।

(६) **फिशिंग** - कम्प्यूटर की संवेदनशील जानकारियों को धोखेबाजी से प्राप्त करने की कोशिश करना इत्यादि को फिशिंग कहते हैं। फर्जी ई मेल जो आपकी व्यक्तिगत जानकारी और बैंक खाते की जानकारी मांगते हैं पढ़ने पर ये ई मेल एकदम स्वभाविक प्रतीत होते हैं ये आपकी जानकारी प्राप्त कर खातों में से रूपये चोरी कर लेते हैं।

(७) **क्रेडिट कार्ड से चोरी करना** - ''साइबर अपराध के द्वारा ग्राहकों को लूटा जाता है। यह लूट पारम्परिक तरीके की लूट नहीं होती, जिसमें सेंधमारी कर बहुमूल्य वस्तु चोरी कर ली जाए वरन् यह लूट तकनीकी का प्रयोग कर ग्राहक के खाते से या उसके क्रेडिट कार्ड से की जाती है। ग्राहक या तो अपने खाते में जमा रकम से वंचित हो जाता है या वह ऑनलाइन ठगी का शिकार हो जाता है।''[२४]

(८) **चाइल्ड पोर्नोग्राफी** - साइबर क्राइम में अश्लील साइट्स भी सम्मिलित हैं, जिसके कारण अश्लीलता को बढ़ावा मिलता हैं। इससे सांस्कृतिक पतन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई है। युवा पीढ़ी शीघ्रता से इस अश्लीलता के मायाजाल में फंस रही है। संस्कृति एवं वैचारिक प्रदूषण भी इन साइटों के माध्यम से फैल रहा हैं। इसने, उस अपसंस्कृति को जन्म दिया हैं जिसने युवा वर्ग को भ्रमित कर उनमें अच्छे.बुरे का बोध समाप्त कर दिया हैं जो हमारे समाज के लिये घातक हैं। यद्यपि कम्प्यूटर और इन्टरनेट के माध्यम से यौन उत्तेजना पैदा करने वाले यौन कृत्यों का प्रचार-प्रसार पोर्नोग्राफी कहलाता है जब इसका दुरूप्रयोग बच्चों के शोषण हेतु किया जाता है तो इसे चाइल्ड पोर्नोग्राफी कहते हैं। राष्ट्रीय अपराध रिकोर्ड ब्यूरो द्वारा जारी रिर्पोट[२५] में सबसे अधिक साइबर अपराध 'पोर्नोग्राफी' से सम्बन्धित हैं इन अपराधों को अन्जाम देने वालों की आयु १८ से ३० वर्ष के बीच होती है।

(९) **साइबर बुलिंग** - फेसबुक एवं व्हाट्सऐप जैसी सोशल नेटवर्किंग साइटों से भद्दे कमेन्ट एवं मैसेज करना, इन्टरनेट के माध्यम से धमकियाँ देना साइबर बुलिंग के अन्तर्गत आते हैं।

(१०) **कम्प्यूटर वायरस** - किसी व्यक्ति द्वारा किसी प्रोग्राम या फाइल के माध्यम से दूसरे कम्प्यूटर में वायरस भेजना, जो सिस्टम में उपस्थित फाइलों की कॉपी या डाटा को क्षतिग्रस्त कर, फाइलों को करेप्ट कर नष्ट कर देता है। कुछ अन्य वायरस मदर बोर्ड को भी खराब कर देते हैं जो परेशानियों के साथ खर्च भी बढ़ा देता है।[२६]

साइबर आक्रमण के स्त्रोत :- कम्प्यूटर पर साइबर आक्रमण मुख्य रूप से सक्षम तथा भेद्य हमलावार, वायरस प्रोग्राम है। कम्प्यूटर वायरस एक छोटा सॉफ्टवेयर प्रोग्राम है, जो कि एक कम्प्यूटर से दूसरे कम्प्यूटर में फैलता है तथा कम्प्यूटर ऑपरेशनों में भी हस्तक्षेप करने की क्षमता रखता है। साइबर के आक्रमण के स्त्रोत हैं-

१. डाउनलोडेबल प्रोग्राम्स :- डाउनलोडेबल फाइल्स वायरस का सबसे प्रमुख तथा सम्भव स्त्रोत हैं। किसी भी प्रकार की एक्जीक्यूटेबल फाइल; जैसे गेम्स, स्क्रीन सेवर इत्यादि इसके प्रमुख स्त्रोत हैं। यदि आप किसी प्रोग्राम को इंटरनेट से डाउनलोड करना चाहते हैं तो डाउनलोड करने से पहले प्रत्येक प्रोग्राम को स्कैन करना आवश्यक है।

२. क्रैक्ड सॉफ्टवेयर :- ये सॉफ्टवेयर वायरस अटैक के अन्य स्त्रोत हैं। इस प्रकार के क्रैक्ड सॉफ्टवेयर मे वायरस तथा बग्स के होने की सम्भावना अत्यधिक होती है जिन्हें ढूँढकर सिस्टम से दूर करना बेहद कठिन है। इसलिए इंटरनेट से सूचना को किसी भी विश्वसनीय स्त्रोत से ही डाउनलोड करना चाहिए।

३. ई मेल अटैचमेंटस :- ये अटैचमेंटस वायरस के मुख्य स्त्रोत होते हैं। इन ई मेल अटैचमेंटस को आसानी से हैन्डल किया जा सकता है।

४. इंटरनेट :- सभी कम्प्यूटर के यूजर्स, कम्प्यूटर सिस्टमों पर वायरस अटैक से अनभिज्ञ होते हैं। इंटरनेट पर उपलब्ध क्लिक या डाउनलोड इत्यादि तत्व ही वायरसों के फैलने के लिए उत्तरदायी होते हैं।

५. अज्ञात सी डी से बूटिंग करना :- जब भी कम्प्यूटर कार्य नहीं कर रहा होता है उस समय कम्प्यूटर मे पड़ी, सी डी को निकाल लेना ही ठीक माना जाता है। यदि हम कम्प्यूटर से सी डी नहीं निकालते हैं तो यह स्वतः ही डिस्क में बूट होने लगती है, जिससे वायरस अटैक की सम्भावना बढ़ जाती है।

कम्प्यूटर सिक्योरिटी के लिए खतरा

मालवेयर :- मालवेयर का अर्थ है द्वेषपूर्ण (दुष्ट) सॉफ्टवेयर। ये उस प्रकार के प्रोग्रामों का सम्मिलित रूप हैं, जिनका प्रमुख कार्य होता है कम्प्यूटर को हानि पहुँचाना; जैसे- वायरस, वामर्स, स्पाईवेयर इत्यादि।

वायरस :- वायरस वह प्रोग्राम है जो कम्प्यूटर पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। ये पीसी पर कण्ट्रोल हासिल करके उनसे असामान्य व विनाशकारी कार्यो को करवाते हैं। वायरस स्वतः ही अपने आपको सिस्टम में कॉपी कर लेते हैं व आगे संक्रमण हेतु अन्य प्रोग्रामों के साथ स्वतः ही जुड़ जाते हैं। वायरस कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर के किसी भी हिस्से जैसे बूट ब्लॉक, ऑपरेटिंग सिस्टम, सिस्टम एरिया, फाइल्स तथा अन्य एप्लीकेशन प्रोग्राम इत्यादि में कुछ क्षति पहॅुचा सकते हैं। कुछ वायरस निम्नलिखित हैं -

१. डायरेक्ट एक्शन वायरस
२. ओवर राइट वायरस
३. बूट सेक्टर वायरस
४. मैक्रो वायरस
५. फाइल सिस्टम वायरस
६. पॉलीमॉर्फिक वायरस
७. फैट वायरस
८. वेब वायरस
९. वेब स्क्रिप्टिंग वायरस
१०. मल्टीपार्टाइट वायरस
११. रेजिडेंट वायरस
१२. आई लव यू
१३. नेट वॉर्म, इत्यादि

वायरस के प्रभाव :- कम्प्यूटर पर वायरस विभिन्न प्रकार के प्रभाव डाल सकते हैं।

१. उपयोगकर्ता के कार्य की निगरानी करना।
२. कम्प्यूटरों की दक्षता को कम करना।
३. लोकल डिस्क पर उपस्थित सभी डेटा को नष्ट करना।
४. कम्प्यूटर नेटवर्क्स व इंटरनेट कनेक्शन को प्रभावित करना।
५. मैमोरी के आकार को बढ़ाना या घटाना।
६. विभिन्न प्रकार के त्रुटि सन्देशों को डिस्पले करना।
७. पी. सी. सेटिंग्स को बदलना।
८. अनचाहे एडवरटाइजमेन्ट के ऐरे को डिस्पले करना।
९. बूट टाइम को बढ़ाना इत्यादि।

समस्त साइबर अपराधों के अतिरिक्त अन्य और भी अपराध हैं जो साइबर क्राइम के अन्तर्गत किये जाते हैं, जिसमें कुछ कम्पनियां इन्टरनेट पर अपने उत्पादनों की क्रय-विक्रय हेतु गलत सूचनाऐं देती हैं अथवा भ्रामक कॉल करके रोजगार उपलब्ध कराने का आश्वासन दिया जाता है। इन्टरनेट पर किसी बड़ी कम्पनी व बैंक, संस्था के नाम पर अपनी योजना व लॉटरी का लालच देकर इन्टरनेट की दुनिया में लोगों को ठगने का काम करते हैं। इन्टरनेट पर पहचान छुपाने की सुविधा अपराधों के सन्दर्भ में अभिशाप बन गई हैं। इस कारण इसका दुरूपयोग दिनों दिन बढ़ता जा रहा हैं। यह साइबर अपराधों का मुख्य केन्द्र बन गया हैं। हर रोज

नया रूप धारण करने वाले इन अपराधों की विवेचना उपयुक्त नियमों, कानूनों के न रहने के कारण अपराध के नियंत्रण कठनाईयाँ आती हैं।

साइबर जगत में नित्य नये प्रयोगों एवं आविष्कारों के चलते अपराध करने की तकनीक अत्यंत तेजी से बदल रही है। फलस्वरूप अपराधियों की पहचान करने में दिक्कत होती हैं। साइबर अपराधों के मामले में विवेचना अपराधों का पता लगाने, साक्ष्य एकत्र करने तथा अभियोजन हेतु बनाये गये परम्परागत नियम व तरीके निष्प्रभावी सिद्ध हो रहे हैं। इस कारण साइबर अपराधी प्रशासन के समक्ष नई-नई समस्याएं एवं चुनौतियां खड़ी कर रहे हैं।

साइबर अपराध में चश्मदीद गवाह एवं साक्ष्यों का अभाव होता है। इसलिए साइबर अपराध का अनुसंधान निम्नलिखित कारणों से कठिन एवं चुनौती पूर्ण कार्य होता है-

१. उच्च्व तकनीक अपराध - सूचना प्रौद्योगिकी तेजी से बदल रही है किन्तु सामान्य विवेचक इस प्रौद्योगिकी के बारे में सीमित ज्ञान रखता हैं। साइबर अपराधों की विवेचना के लिए विवेचक को प्रशिक्षित होना आवश्यक है।

२. अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र - कभी-कभी साइबर अपराध एक देश में घटित होते हैं परन्तु इसका परिणाम दूसरे देशों में पाया जाता हैं। ऐसी स्थिति में क्षेत्राधिकार की समस्या उत्पन्न हो जाती है। अपराधी बिना स्थान का उल्लेख किये अपराध करता हैं।

३. अपराध स्थल का न होना - सेटेलाइट से दो कम्प्यूटर किसी भी स्थान से जुड़े रह सकते हैं। अतः क्रेडिट कार्ड से पैसे निकालना अथवा जमा करने का अपराध किसी स्थान विशेष के बिना किया जा सकता है। इसलिये साइबर अपराध का कोई निश्चित घटना स्थल नहीं होता हैं।

४. बिना चेहरे का अपराध - साइबर अपराध के लिये व्यक्तिगत उपस्थिति, लिखित अभिलेख, हस्ताक्षर अथवा आवाज की जरूरत नहीं पड़ती अपितु एक बटन दबाते ही आपराधिक घटनाओं को अंजाम दिया जाता हैं। अतः स्पष्ट हैं कि यह अपराध चेहरे को दिखाये बिना ही हो सकता हैं।

५. अल्पकालीन अपराध - साइबर अपराध बिना समय नष्ट किये तुरन्त ही घटित हो सकता हैं। यह बात अलग है कि अपराध का पता कई दिनों, महीनों, व वर्षों के बाद लगता है किन्तु इससे जुड़े साक्ष्यों को क्षण भर में पूरी तरह से नष्ट किया जा सकता हैं।

भारत में साइबर कानून - समूचा विश्व साइबर अपराध से त्रस्त है। भारत में भी साइबर अपराध के ऑकड़े चौकाने वाले रहे हैं। आज का युग कम्प्यूटर व इन्टरनेट का युग है जहां कम्प्यूटर के अभाव में किसी भी कार्य को करना मात्र एक परिकल्पना होगी। समाज में बढ़ते साइबर अपराध, कानून व सुरक्षा एजेंसियों के लिए एक गम्भीर समस्या बनी हुई हैं, जिसके निवारण हेतु **"भारत में सूचना तकनीकी कानून २०००,** के अन्तर्गत साइबरस्पेस में क्षेत्राधिकार संबंधी प्रावधानों की सूची निम्नवत है।"[२७]

१. कम्प्यूटर के संसाधनों से छेड़छाड़ की कोशिश (धारा ६५)
२. कम्प्यूटर में संग्रहित डाटा के साथ छेडछाड़ कर उसे हैक करने की कोशिश (धारा ६६)
३. संवाद सेवाओं के माध्यम से प्रतिबंधित सूचनाएं भेजने के लिए दण्ड का प्रावधान (धारा ६६ ए)
४. कम्प्यूटर या अन्य किसी इलेक्ट्रॉनिक गैजेट से चोरी की गई सूचनाओं को गलत तरीके से हासिल करने के लिए दण्ड का प्रावधान (धारा ६६ बी)
५. किसी की पहचान चोरी करने के लिये दण्ड का प्रावधान (धारा ६६ सी)
६. अपनी पहचान छुपाकर कम्प्यूटर की मदद से किसी के व्यक्तिगत डाटा तक पहुंच बनाने के लिये दण्ड का प्रावधान (धारा ६६ डी)
७. किसी की निजता भंग करने के लिए दण्ड का प्रावधान (धारा ६६ इ)
८. साइबर आतंकवाद के लिए दण्ड का प्रावधान (धारा ६६ एफ)
९. आपत्तिजनक सूचनाओं के प्रकाशन से जुड़े प्रावधान

(धारा ६७)

१०. इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से सेक्स या अश्लील सूचनाओं को प्रकाशित या प्रसारित करने लिए दण्ड का प्रावधान (धारा ६७ ए)

११. इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से आपत्तिजनक सामग्री का प्रकाशन या प्रसारण, जिसमें बच्चों को अश्लील अवस्था में दिखाया गया हो (धारा ६७ बी)

१२. मध्यस्थों द्वारा सूचनाओं को बाधित करने या रोकने के लिए दण्ड का प्रावधान (धारा ६७ सी)

१३. सुरक्षित कम्प्यूटर तक अनाधिकार पहुंच बनाने से संबंधित प्रावधान (धारा ७०)

१४. डाटा या आंकड़ो को गलत तरीके से पेश करना (धारा ७१)

१५. आपसी विश्वास और निजात को भंग करने से संबंधित प्रावधान (धारा ७२)

१६. कॉन्ट्रैक्ट की शर्तो का उल्लंघन कर सूचनाओं को सार्वजनिक करने संबंधी प्रावधान (धारा ७२ ए)

१७. फर्जी डिजिटल हस्ताक्षर का प्रकाशन (धारा ७३)

सूचना तकनीक कानून की धारा ७८ में इंस्पेक्टर स्तर के पुलिस अधिकारी को इन मामलों में जांच करने का अधिकार प्राप्त हैं।

भारतीय दण्ड संहिता (आईपीसी) में साइबर अपराधों से संबंधित प्रावधान[२६] –

१. ई.मेल के माध्यम से धमकी भरे संदेश भेजना (धारा ५०३)

२. ई.मेल के माध्यम से ऐसे संदेश भेजना, जिससे मानहानि होती हो (धारा ४९९)

३. फर्जी इलेक्ट्रॉनिक रिकॉड्र्स का इस्तेमाल (धारा ४६३)

४. चोरी छुपे किसी के ई मेल पर नजर रखना (धारा ४६३)

५. बेव हैंकिग (धारा ३८३)

६. ई मेल का गलत इस्तेमाल (धारा ५००)

७. दवाओं को ऑनलाइन बेचना एनडीपीएस एक्ट

८. हथियारों की ऑनलाइन खरीद.बिक्री आर्म्स एक्ट।

‘**२००० में** सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम (आईटी) में संशोधन किया गया। The Indian panel code (1860), The Indian Act (1872), The Bankeris Book Evidnce Act (1981), The Reserve Bank of India (1934), सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम २००८ में संशोधन कर कम्प्यूनिकेशन कंवर्जेन्स बिल के कई प्रावधानों में संशोधन किया गया’[२६]

निष्कर्ष : समूचे विश्व का ध्यान अब साइबर अपराध की ओर है। साइबर सुरक्षा अब किसी भी तरह से पृथक घटना नहीं है बल्कि ये समस्त देशों की सामाजिक संरचना को प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से प्रभावित कर रही है इसके माध्यम से लोग स्वयं के राजनैतिक, धार्मिक व अन्य उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं तथा आतंकवाद को बढ़ावा देने के लिए धन प्राप्ति हेतु वित्तीय ठगी का कार्य करते हैं। इसके बड़े भयावह आयाम हैं जिसके कारण वित्तीय स्थिरता प्रभावित हो रही है।[३०]

साइबर अपराध में अब कई देशों की सरकारें भी परोक्ष रूप से सम्मिलित हैं जो चुनावी प्रक्रिया के दौरान इसका उपयोग करती हैं। साइबर अपराध आज केवल विकसित देशों में ही नही अपितु विकासशील देशों तथा अविकासशील देशों की जनता के लिए भी चिंतनीय विषय हैं। इसके नियंत्रण हेतु सभी राष्ट्रीय अंतराष्ट्रीय शक्तियों को योजनाबद्ध प्रयास करना चाहिए।

भारत की साइबर सुरक्षा एजेंसी ने सोशल मीडिया प्लेटफॉर्मो पर अपने वोट की प्राथमिकताएँ और आधार कार्ड की जानकारी साझा न करने पर विशेष जोर दिया है। इन्टरनेट यूजर्स को सलाह दी है कि अपने निष्क्रिय पड़े अकांउट को बंद कर दें। साथ हैकिंग व जालसाजी से बचाव हेतु देश की नोडल एजेंसी कम्प्यूटर इमरजेंसी रिस्पॉन्स टीम ऑफ इंडिया (सी.ई.आर.टी.इन.) ने सोशल मीड़िया व मोबाइल एप पर अपनी व्यक्तिगत जानकारी साझा न करने के लिए कहा है। भारत में नोटबंदी और डिजीटलीकरण को बढ़ावा देने के प्रयासों ने साइबर अपराधों का खतरा बढ़ा दिया है। इस पर अंकुश लगाने के लिऐ सरकार को परमाणु ऊर्जा और अन्तरिक्ष आयोगों की तर्ज पर एक साइबर सुरक्षा आयोग का गठन करना होगा। चूकिं स्मार्ट फोन पर

सोशल नेटवर्किंग के दौरान साइबर अपराधों की सम्भावना बढ़ जाती हैं। स्मार्ट फोन निर्माता कम्पनियॉ डिवाइस की सुरक्षा एवं डाटा की गोपनीयता बढ़ाने के लिए बायोमीट्रिक्स तकनीक का प्रयोग करने लगी हैं। इस हेतु फिंगरप्रिंट स्कैनर, आयरिस स्कैन, रिकॉग्निशन, फेशियल रिकॉग्जिशन इत्यादि सुविधाओं का प्रयोग साइबर अपराध से बचाव हेतु किया जा रहा है।

उपर्युक्त समस्त विवेचन के आधार पर स्पष्ट है कि साइबर अपराध समस्त मानव प्राणियों के लिए घातक समस्या है जिसकी हमें समय रहते चिंता करनी होगी। कुछ समय पूर्व इंटरनेट पर प्रचलित ब्लू व्हेल नामक गेम के नकारात्मक प्रभाव के कारण अनेक बच्चे अपनी जान गवा चुके हैं। दिन प्रतिदिन बढ़ते महिलाओं के साथ अपराध, अश्लीलता व दुष्कर्म की वजह इंटरनेट भी है जो प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से भूमिका निभाता है। साइबर क्रिमिनल नवीन सूचना तकनीकी जानकारियों से अपग्रेड होते रहते हैं। साथ ही हमें भी साइबर अपराध सुरक्षा सम्बन्धित तकनीकी व कानून से अप टू डेट रहना होगा। तभी इस समस्या से छुटकारा सम्भव होगा, क्योंकि ये अपराध किसी व्यक्ति या संस्था के विरूद्ध ही सीमित न रहकर सम्पूर्ण समाज को प्रभावित करते हैं।

सन्दर्भ

१. हाल जिरोम, 'जनरल प्रिंसिपल ऑफ क्रिमिलन लॉ', इण्डियन पॉलिसी, १६४७, पृ.८. १८

२. उपाध्याय ज्योति, 'रिसर्चलाइन अन्तर्राष्ट्रीय जर्नल', अंक XXIII, त्रैमासिक अगस्त.अक्टूबर, २०१६, पृ. ४२

३. Goel Abha, 'Cyber Crime', Journal of Asia for Democracy and Development, vol-xv, no. 04, 2015, pp. 83-85

४. बानो नाजिया, 'साइबर अपराध एक गम्भीर समस्या', राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष १८ अंक ०२, २०१६, पृ.१५६

५. एन. व्ही. परांजये, अपराधशास्त्र एवं आपराधिक न्याय प्रशासन, १६६०, पृ.१०२

६. गुप्ता गौरीशंकर, 'ग्वालियर संभाग के दतिया मण्डल में आर्थिक अपराधों का विश्लेषणात्मक अध्ययन', शोध प्रबन्ध जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर, १६६२, पृ.११४

७. Mowrer Arnest, 'Disorganisation : Social and Personal', Newyork, 1969, pp. 42-48

८. Haikerwal, 'Economic and Social Aspects of Crime', Concept Delhi, 1978, p. 27

६. उदयवीर सिंह, साइबर अपराध : चुनौतियाँ एवं समाधान, Journal of Asia for Democracy and Development, Vol-XV, No- 04, 2015 p. 73.

१०. रंजन रजीव, 'कम्प्यूटर ज्ञान एवं सूचना प्रौद्योगिकी', उपकार प्रकाशन आगरा, वर्ष २०१६, पृ. १७२.

१२. Crime Online cyber crime and illigal innovation', (www.webdunia.com)

१२. शाक्य ललिता, 'साइबर अपराध एक आकलन', Journal of Asia for Democracy and Development, Vol-XV, No- 04, २०१५, पृ. ७८

१३. वही, पृ. ६८

१४. Shakya Lalita, op. cit. p. 80

१५. Shakya Lalita, op. cit. p. 80

१६. पाण्डे तेजस्कर, समाज कार्य, भारत बुक सेन्टर लखनऊ, २०१६, पृ. ३१६.१८.

१७. www. cyber crime report,2016.

१८. Crime in India 2015 Statistics, National Crime Records Bureau Ministry of Home Affairs, pp.403-420.

१६. http://ncrb data. Gov. in. com.

२०. Goel Abha, op.cit. p. 83

२१. सिंह एच. एन., 'राजनीति से प्रेरित कम्प्यूटर अपराध', राजनीति हैंकिग पर समाचार पत्र, २०१३, पृ. ०२

२२. बानो नाजिया, पूर्वोक्त, पृ. १५६

२३. Shakya Lalita, op. cit. p. 75

२४. पाठक वी.के., 'साइबर अपराध से बचाव हेतु कम्प्यूटर साक्षरता की आवश्यकता', बैंकिग चिंतन अनुचितंन, वर्ष २६ अंक ०२, २०१७, पृ ५२-५५

२५. http:// ncrb. nic.in.

२६. श्रीवास्तव एस.एस., 'कम्प्यूटर प्रवेशिका', मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, २०१६, पृ. १३४

२७. http://hi.mi Wikipedia.org

२८. http://hi.mi Wikipedia.org

२६. http :// praguepost.com/opinion/5996-virtual hostage. htmt

३०. मूदंडा एस.एस., 'सूचना प्रौद्योगिकी और बैंकिग क्षेत्र में साइबर जोखिम', बैंकिग चिंतन अनुचिंतन, पृ. ५-१२

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

कृषि में नूतन पद्धतियों का प्रसार एवं कृषि विकास

❑ डॉ० संजीव कुमार
❖ डॉ. बलवीर सिंह

किसी भी क्षेत्र में कृषि के ऐतिहासिक विकासक्रम की अवस्था वस्तुतः क्षेत्र विशेष के सांस्कृतिक एवं मानवीय सभ्यता के उद्भव काल से लेकर विभिन्न सोपानों पर हुए विकास की समान्तर प्रक्रिया को इंगित करती है। कृषि में नूतन पद्धतियों का प्रसार तथा उसके कृषि पर प्रभाव को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में जानने के लिए यह आवश्यक है कि पुरातन काल से ही कृषि प्रगति, मृदा के विभिन्न गुणों की पहचान, उर्वर बनाने की प्रक्रिया आदि काल से लेकर वर्तमान समय में मृदा के तत्वों तथा नाइट्रोजन पोटास और फासफेट आदि की जानकारी तथा तद्नुरूप मृदा तत्वों की कृत्रिम आपूर्ति इसी प्रक्रिया का प्रतिफल है। साथ ही कृषि में नवीन यन्त्रों व मशीनों के प्रयोग से निरन्तर कृषि में हो रहे परिवर्तनों से है जिनके सहयोग से कृषि में अधिक से अधिक कृषि फसलों में उत्पादन सम्भव हो रहा है। इसी दृष्टि से प्रस्तुत अध्ययन में उत्तर प्रदेश के जनपद मैनपुरी की करहल तहसील के अंतर्गत कृषि में नूतन पद्धतियों के प्रसार का कृषि विकास पर प्रभाव प्रस्तुत किया गया है।

वस्तुतः भारत जैसे परम्परागत एवं निर्वाहक कृषि व्यवस्था वाले देश में कृषि की नूतन प्रवृत्तियों के प्रचार और प्रसार की महती आवश्यकता है, क्योंकि अनवरत बढ़ती जनसंख्या एवं उसके अनुपात में निरंतर कम होती भूमि के संदर्भ में यही उत्तम विकल्प है। कृषि की नूतन पद्धतियों के व्यापक प्रसार के लिए आवश्यक है कि बेहतर अवस्थापना सुविधाओं का सृजन और उनका विस्तार इस प्रकार किया जाना आवश्यक है ताकि कृषक उनसे सुपरिचित हो सकें, उनमें इनकी स्वीकार्यता बढ़े क्योंकि भारतीय परिस्थितियों में जहॉ कृषक अत्यधिक पिछड़ी हुई स्थिति में है और वे किसी प्रकार के अधिक निवेश तथा हानि वहन करने की सामर्थ्य नहीं रखते हैं। १९७० के दशक के उपरान्त भारत में विशेषतः सिंचाई के साधन, अधिक उपज देने वाली प्रजातियाँ तथा रासायनिक खादों के प्रयोग के परिणामस्वरूप हरित क्रांति के माध्यम से खाद्यान्न समस्या हल हो गयी तथा भारत को खाद्यान्न के अर्न्तराष्ट्रीय बाजार में निर्यात की भी वर्तमान में पर्याप्त सम्भावनाएं पैदा हुई हैं किन्तु इस तथ्य को अनेदेखा नहीं किया जा सकता है कि भारत में हरित क्रांति का प्रादुर्भाव, वैज्ञानिक प्रगति और खोजों से प्राप्त ज्ञान के उपयोग के द्वारा ही सम्भव हो सका है। तकनीकी परिवर्तन, भूमि सुधार के द्वारा जहाँ प्रति इकाई क्षेत्र के उत्पादन में वृद्धि का सूचक भी है तथा भूमि एवं श्रम की भागीदारी अपेक्षतः कम हुई है।[१] **विशेषत १९७०** के दशक में देश खाद्यान्न आपूर्ति में आत्मनिर्भर हुआ जिसे हरित क्रांति के रूप में स्वीकार किया गया। यह लक्ष्य उच्च उपज देने वाली प्रजातियों तथा सिंचाई के साधनों में वृद्धि एवं उर्वरकों के उपयोग से प्राप्त हुआ। किन्तु वृद्धिशील उत्पादकता कुछ प्रगतिशील कृषकों सिंचित भू-जोतों तक ही सीमित रही है। अधिकांश लघु एवं सीमान्त कृषक अभिसंरचनात्मक सुविधाओं तथा यन्त्रीकरण हेतु पर्याप्त धन की व्यवस्था न होने के कारण उपेक्षित रहे हैं। लघु कृषक सम्भाव्य कृषि उत्पादकता तथा लाभों के दोहन संस्थागत सहयोग के बिना नहीं कर सकते हैं।[२]

नूतन तकनीकी का प्रयोग विशेषतः भारत जैसे देश में सामाजिक रिवाजों एवं विभिन्न समुदायों की वैचारिकता के अनुरूप होता है। विभिन्न शोधों से यह ज्ञात हुआ है

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, ए०के० (पी०जी०) कालेज, शिकोहाबाद, फिरोजाबाद (उ०प्र०)
❖ प्राध्यापक भूगोल विभाग, चौ. सूरज सिंह पी.जी. कालेज, जागीर, मैनपुरी (उ०प्र०)

कि कृषकों के द्वारा उन तकनीकी परिवर्तनों को प्रथमतः अपनाया जाता है, जिनमें हानि सम्भाव्यता तथा अनिश्चितता कम होती है तथा जो कृषकों की आवश्यकता प्रधान होते हैं।[३]

वास्तव में कृषि में तकनीकी प्रगति तब तक सम्भव नहीं है जब तक कि कृषकों के ज्ञान के स्तर में वृद्धि न हो जायें। इस दृष्टि से नई पद्धतियों के प्रति सकारात्मक उत्तर के लिये उचित फार्म व्यवस्था प्रव्याय में वृद्धि तथा प्रशिक्षण इसे मजबूती प्रदान करते हैं।[४]

अध्ययन क्षेत्र का भौगोलिक परिचय : प्रस्तुत शोध का अध्ययन क्षेत्र मध्य गंगा-यमुना दोआब में बसे हुये जनपद-मैनपुरी के दक्षिण में स्थित करहल तहसील २६°५८', से २८°७' उत्तरी अक्षांश तथा ७८°४५' से ७९°१३' पूर्वी देशान्तरों के मध्य विस्तृत है। सामाजिक, आर्थिक दृष्टि से समस्याग्रस्त एवं पिछड़े ग्रामीण कृषि प्रधान क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने के कारण ही इस क्षेत्र को अध्ययन हेतु चयनित किया गया है। करहल तहसील के अतंर्गत २ विकास खण्ड बरनाहल एवं करहल १८ न्याय पंचायतें १६३ राजस्व ग्राम सम्मिलित हैं। तहसील करहल के उत्तर में मैंनपुरी व घिरोर विकास खण्ड तथा दक्षिण में जनपद-इटावा की सीमा, पूर्व में जागीर व किशनी विकास खण्ड तथा पश्चिम में जनपद-फिरोजाबाद की सीमा लगती है। तहसील का कुल क्षेत्रफल ५६४.६३ वर्ग किमी० है। अध्ययन क्षेत्र की पूर्व से पश्चिम की लम्बाई ३२ किमी० तथा उत्तर से दक्षिण की लम्बाई १६.५ किमी० है। वर्ष-२०११ की जनगणना के अनुसार यहां की कुल जनसंख्या ३२४०१७ है जिसमें १७४४८० पुरूष तथा १४६५३७ स्त्रियॉं हैं। जनसंख्या का सामान्य घनत्व ६६८ व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० है। अध्ययन क्षेत्र को मानचित्र १ के द्वारा दर्शाया गया है।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत शोध प्रपत्र में प्राथमिक तथा द्वितीयक आकड़ों का प्रयोग किया गया है। द्वितीय आकड़ों का प्रमुख स्त्रोत जिला सांख्यिकीय पत्रिका है। कृषि में आधुनिक पद्धतियों एवं परिवर्तनों के अध्ययन हेतु वर्ष-१९९७ एवं २०१७ के ऑकड़ों को आधार माना गया है। तथ्यों के विश्लेषण में सांख्यिकीय विधियों, तथ्यों, मानचित्रों व रेखाचित्रों एवं तालिकाओं का उपयोग किया गया है। करहल तहसील में विकास खण्ड स्तर पर विभिन्न साधनों व उनकी विरलता लाभान्वित क्षेत्र, उपान्त क्षेत्र तथा अन्य तथ्यों को ध्यान में रखकर सर्वेक्षण किया गया है। सर्वेक्षण से प्राप्त तथ्य मात्र करहल तहसील को ही प्रतिबिम्बत करते हैं।

कृषि में नूतन पद्धतियों का प्रसार एवं कृषि विकास : कृषि के व्यवसायिक वैज्ञानिक और तकनीकी विकास तथा तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या के भरण-पोषण के कारण कृषि के शस्य स्वरूप में भारी परिवर्तन आया है। फसलों के उत्पादन को बढ़ाने के लिए संस्करण और जैव तकनीकी से क्रान्तिकारी परिवर्तन लाये गये हैं। उन्नत बीज, रासायनिक उर्वरक, समुचित सिंचाई और लाभप्रद उत्पादन से हरितक्रान्ति का प्रार्दुभाव अध्ययन क्षेत्र में स्पष्टतः परिलक्षित हो रहा है। कभी परम्परागत कृषि के लिए विख्यात करहल तहसील में नूतन पद्धतियों के प्रसार एवं उपयोग से कृषि उत्पादन में आशातीत वृद्धि हुई है। अध्ययन क्षेत्र में विभिन्न नूतनन पद्धतियों का कृषि विकास पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

हरित क्रान्ति : भारत में हरित क्रान्ति का प्रारम्भ शताब्दी के छठवें दशक के उपरान्त प्रारम्भ हुआ। पश्चिमी उत्तर-प्रदेश में सातवें दशक के बाद हरित क्रान्ति का व्यापक प्रभाव वर्ष-१९८० के बाद आया। वर्तमान में हरित क्रान्ति का नवीन कृषि क्षेत्रों में विस्तार खाद्यान्नों के साथ दलहन एवं तिलहन को प्रोत्साहन, सिंचाई की बहुविकल्पी व्यवस्था, जैव रासायनों का प्रयोग आदि महत्वपूर्ण है। वर्ष-१९८५ के बाद करहल तहसील को परम्परागत कृषि अपने जीवन निर्वाही स्थिति से निकलकर व्यापारिक तथा बाजारोन्मुख बनती जा रही है। वर्ष-१९८०-८१ में अध्ययन क्षेत्र में प्रति हेक्टेयर गेहॅू का उत्पादन १० कुन्तल था जो वर्तमान में बढ़कर २५ कुन्तल तक पहॅुच गया है। इसी प्रकार धान के उत्पादन में भी आशातीत वृद्धि हुई है।

उन्न्त बीजों का प्रयोग : उन्नत बीजों के बिना कृषि

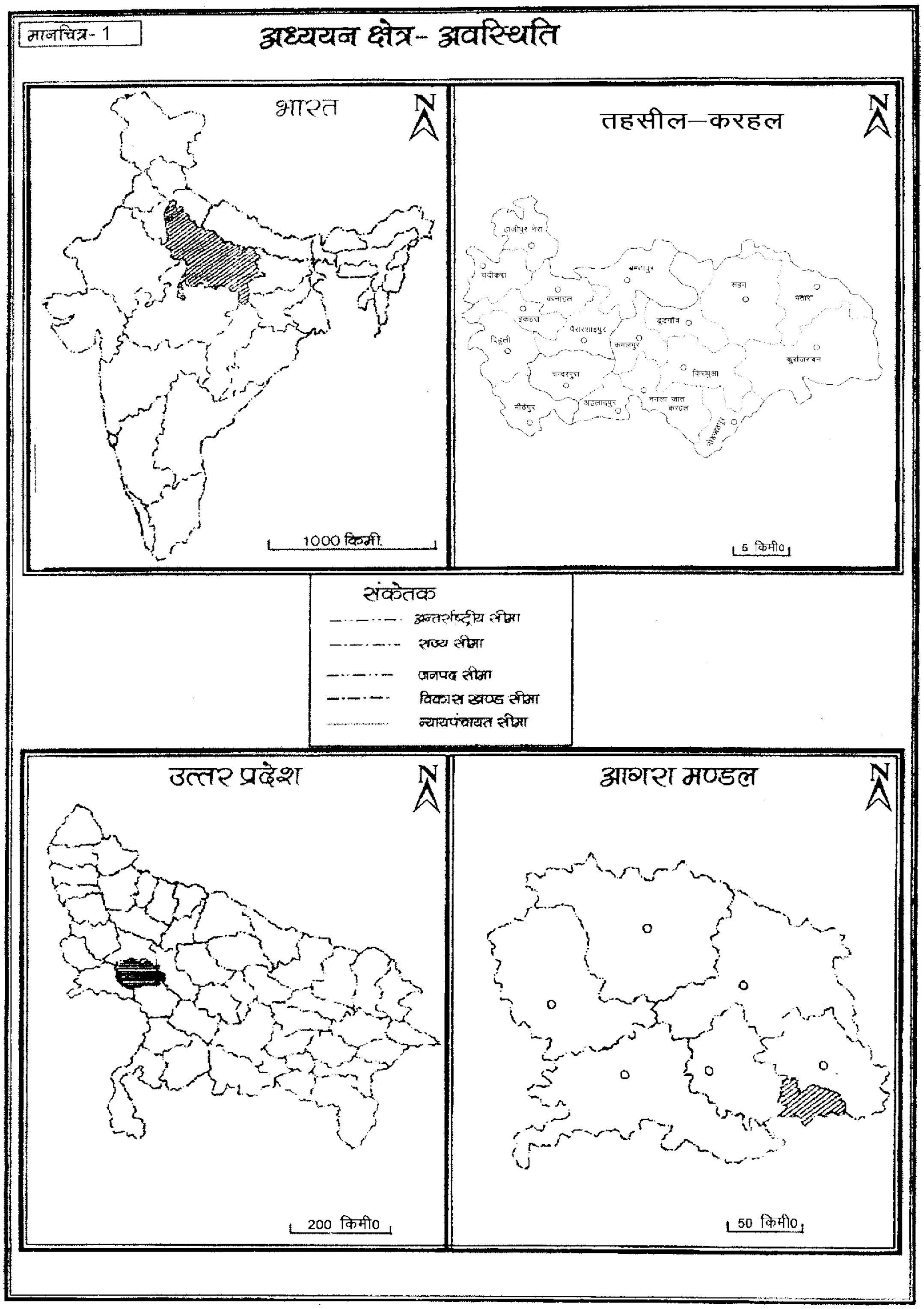

मानचित्र- 1
अध्ययन क्षेत्र- अवस्थिति
भारत
N
1000 किमी.
तहसील—करहल
N
5 किमी0
संकेतक
अन्तर्राष्ट्रीय सीमा
राज्य सीमा
जनपद सीमा
विकास खण्ड सीमा
न्यायपंचायत सीमा
उत्तर प्रदेश
N
200 किमी0
आगरा मण्डल
N
50 किमी0

का विकास असम्भव है। वर्तमान में अध्ययन क्षेत्र में उन्नत बीजों का भरपूर प्रयोग किया जा रहा है जिससे कृषि उत्पादकता बढ़ी है। कृषि के विकासात्मक स्वरूप में उन्नत बीजों का महत्वपूर्ण योगदान है। हरित क्रान्ति की सफलता का मुख्य कारण था ''उन्नत किस्म के बीजों का प्रयोग''। अध्ययन क्षेत्र में २ लघु बीज फार्म स्थापित किये गये हैं जिनके द्वारा बीज वितरण की व्यवस्था की गयी है। राष्ट्रीय बीज निगम एवं भारतीय स्टेट फार्म निगमों के माध्यम से उन्नतिशील बीजों का उत्पादन एवं वितरण हो रहा है। वर्ष-२०१६-१७ में करहल तहसील में २०५० कुन्तल नवीन बीजों का वितरण किया गया है।

रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग : कृषि विकास हेतु उन्नत किस्म के बीजों के साथ-साथ रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग भी अति आवश्यक है। भूमि को उर्वर रखने में नाईट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटेशियम आदि प्रमुख उर्वरक तत्वों का प्रयोग आवश्यक है। खाद्य तथा कृषि संगठन के प्रयोगों से ज्ञात हुआ है, कि केवल रासायनिक उर्वरकों के उपयोग से ही उत्पादन ५० प्रतिशत बढ़ सकता है। अध्ययन क्षेत्र में परम्परागत रूप से पशुओं के गोबर की खाद का उपयोग उर्वरकों के रूप में किया जाता था परन्तु उनकी मात्रा तथा उपलब्धता दोनों कम होने के कारण शस्य भूमि को पर्याप्त खाद उपलब्ध न होने के कारण उत्पादकता का स्तर मध्यम-न्यून रहता था किन्तु वर्तमान में रासायनिक उर्वरकों का उपयोग तीव्र गति से बढ़ा है। वर्ष-१९९६-९७ में अध्ययन क्षेत्र में रासायनिक उर्वरकों का उपयोग ४७८८ मी० टन होता था, जो २००१-०२ में ५३४४ मी. टन, २०११-१२ में ५६६५ तथा बढ़कर वर्ष-२०१६-१७ में ७११३ मी० टन हो गया। उर्वरकों के प्रयोग में वृद्धि का प्रभाव कृषि की उत्पादकता पर पड़ा है।

क्षेत्र में उर्वरकों के उपयोग एवं कृषि उत्पादन में सह-सम्बन्ध : अध्ययन क्षेत्र में रासायनिक उर्वरकों के बढ़ते हुए उपयोग के परिणामस्वरूप खाद्यान्नों के उत्पादन में भी वृद्धि हो रही है। रासायनिक खादों का सर्वाधिक प्रयोग धान की खेती में किया जाता है। करहल न्याय पंचायत में वर्ष-१९९६-९७ से २०१६-१७ के अन्तराल में रासायनिक खादों का उपयोग प्रति हैक्टेयर ४५.५ किग्रा० था जो वर्ष-२०१६-१७ में बढ़कर १२०.५ किग्रा० प्रति हेक्टेयर हो गया। अर्थात् तीन गुना से अधिक की वृद्धि हुई। इस अवधि में धान उत्पादन १८.५ कुन्तल प्रति हैक्टेयर से बढ़कर ३७.५ कुन्तल प्रति हेक्टेयर हो गया। इसमें दो गुनी वृद्धि हुई जिसमें उर्वरकों के बढ़ते उपयोग का बहुत बड़ा योगदान है। विभिन्न वर्षों में उर्वरकों के उपभोग की मात्रा तथा धान की प्रति हेक्टेअर उत्पादकता को प्रकट करने वाले निम्नांकित आरेख से इसी तथ्य की पुष्टी होती है।

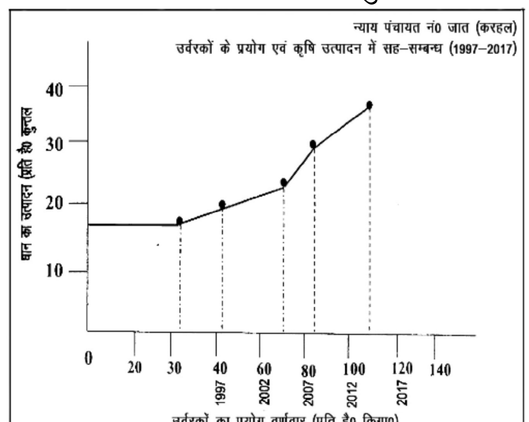

रेखा चित्र–1.1

कृषि यंत्रीकरण : कृषि कार्य में पूँजी नियोजन का सबसे बड़ा भाग यांत्रिक शक्ति निवेश का है। कृषि यंत्रों के प्रयोग से यद्यपि मानव श्रम का विस्थापन होता है फिर भी सरलता एवं शीघ्रता से सम्पन्न होता है। कृषि यंत्रों के प्रयोग से न केवल उत्पादकता में वृद्धि होती है वरन् कृषि पर प्रति हेक्टेयर व्यय कम होता है। बढ़ती हुई मजदूरी दरें, श्रम की समय पर उपलब्धता न होना तथा पशुशक्ति निवेश की मंदी के कारण यान्त्रिक शक्ति निवेश का अधिकाधिक प्रयोग कृषि के आधुनिकीकरण का महत्वपूर्ण अंग है। कृषि यंत्रों के प्रयोग से प्रति इकाई उत्पादन लागत में कमी, श्रम की कार्य क्षमता में वृद्धि, प्रति हैक्टेयर भू-उत्पादकता में वृद्धि, कृषि कार्य में समय की बचत, भूमि उपयोग में सुधार, भू-संरक्षण तथा पशुओं की मांग में कमी लायी जा सकती है।

तालिका १

करहल तहसील में विकास खण्डवार कृषि यन्त्र एवं उपकरणों की संख्या (२०१७)

विकास खण्ड	हल		हैरों तथा कल्टीवेटर	थ्रेसिंग मशीन	स्प्रेयर संख्या	बोआई यन्त्र	ट्रैक्टरों की संख्या
	लकड़ी	लोहा					
बरनाहल	३६०५	२४७२	४६०६	२२०६	५२	१५४०	४०५
करहल	६०१६	५४०४	७००५	२४०८	१२	१४६५	५६८
योग	६६२४	७८७६	११६१	४६१४	६४	३००५	६७३

तालिका २

करहल तहसील विकास खण्डवार कृषि से सम्बन्धित सेवा केन्द्र (१९९६-९७)

विकास खण्ड	बीज गोदाम		ग्रामीण गोदाम		कीटनाशक डिपो		शीत भण्डार	बायों गैस संयत्र
	संख्या	क्षमता	संख्या	क्षमता	संख्या	क्षमता		
बरनाहल	१	१००	८	८००	१	२०	--	३०१
करहल	--	--	६	६००	-	--	१	३०५
योग	१	१००	१७	१७००	१	२०	१	६०६

तालिका ३

करहल तहसील में विकास खण्डवार कृषि से सम्बन्धित सेवा केन्द्र (२०१६-१७)

विकास खण्ड	बीज गोदाम		ग्रामीण गोदाम		कीटनाशक डिपो		शीत भण्डार	बायों गैस संयत्र
	संख्या	क्षमता	संख्या	क्षमता	संख्या	क्षमता		
बरनाहल	३	३००	२०	२००	२	४०	--	४००
करहल	२	५००	२२	२२००	४	८०	१	५००
योग	५	८००	४२	४२००	६	१२०	१	९००

अध्ययन क्षेत्र में यांत्रिक शक्ति का प्रसार अनवरत हो रहा है। अध्ययन क्षेत्र में लकड़ी के हलों की संख्या २०००८, लोहे के हल १०९६१, उन्नत हैरों, तथा कल्टीवेटर ६४०६, उन्नत थ्रेसिंग मशीन २५२२, स्प्रेयर संख्या २७, उन्नत बोआई यंत्र १७२४ व ट्रैक्टरों की संख्या १६० थी। कृषि उत्पादन एवं आधुनिकीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति के कारण इसमें अभूतपूर्व वृद्धि हुई है जो तालिका १ से स्पष्ट है। वर्ष-२०१७ के आंकड़ों एवं तालिका से स्पष्ट है कि बैलों/भैंसों द्वारा प्रयुक्त लकड़ी व लोहे के हलों में कमी आयी है तथा अन्य कृषि यन्त्रों एवं उपकरणों में भारी वृद्धि हुई है। इसी प्रकार कृषि से सम्बन्धित मुख्य सेवा केन्द्रों की संख्याओं में भी आशातीत वृद्धि हुई है। तुलनात्मक अध्ययन तालिका २ (१९९७) एवं तालिका ३ (२०१७) में स्पष्ट किया गया है।

फसल बीमा योजना : प्राकृतिक आपदा से फसल नष्ट होने की स्थिति में कृषकों को वित्तीय सहायता देने तथा उनकी ऋण प्राप्ति की साख को बनाये रखने और अनाजों, दलहनों और तिलहनों के उत्पादन को समर्थन देने एवं उसके लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से फसल बीमा योजना परीक्षण की दृष्टि से १९७३-१९८४ तक

चलायी गई थी। इसके पश्चात् कृषि मंत्रालय ने १९८३ में व्यापक फसल बीमा योजना के लिए जो कृषक सहकारी, ग्रामीण, तथा वाणिज्यिक बैंकों से ऋण लेते हैं वे कृषक बीमा कवरेज के अधिकारी हैं। बीमांकित रकम वितरित किये गये फसल ऋण के बराबर है जो अधिकतम १०,००० रू० प्रति कृषक है। गेहूँ एवं धान के लिए संदेय किस्त का २ प्रतिशत तथा तिलहनों एवं दलहनों के लिए बीमित रकम का भाग १ प्रतिशत के लिए केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा २:१ में सब्सिडी प्रदान की जाती है। प्रस्तुत फसल बीमा योजना उ०प्र० सरकार द्वारा विचाराधीन है।

जैव प्राविधिकी, कम्प्यूटरों तथा दूरसंवेदी उपग्रहों का प्रयोग : कृषि के क्षेत्र में कम्प्यूटरों का प्रयोग नवीनतम् उपलब्धि है। इनका प्रयोग अनेक प्रकार की सूचनायें एकत्रित करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। कृषकों व सरकारी मशीनरी दोनों के लिए ही यह उपयोगी है। सरकार ने कृषि मौसम सेवाओं के विकास के लिए विशेष रूप से कम्प्यूटरों का सहारा लिया है। भारतीय मौसम विभाग द्वारा एक विशेष मध्यम रेंज का मौसम पूर्वानुमान केन्द्र स्थापित किया जा रहा है। यहाँ संकलित सूचनाओं को नैटवर्क की सहायता से १२७ कृषि मौसम फील्ड इकाईयों को प्रेषित किया जा सकेगा। इसके अतिरिक्त कम्प्यूटरों का प्रयोग कृषि जोतों, मिट्टी, वर्षा तथा सिंचाई के प्रारूप, शस्य प्रारूप, बीजों, उर्वरकों तथा कृषि उपकरणों की उपलब्धता, भूमि उपयोग प्रारूप आदि अनेक सूचनायें एकत्र करने के लिए किया जा सकता है।

उपर्युक्त संपूर्ण विवचेना से स्पष्ट है कि कृषि विकास में नूतन पद्धतियों के प्रसार से फसलों के उत्पादन में धनात्मक रूप से वृद्धि हुई है किन्तु कृषि गहनता विविधता का वांछित स्तर स्थापित नहीं है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि करहल-तहसील (जनपद-मैंनपुरी) में आधुनिक कृषि पद्धतियों से मात्रात्मक वृद्धि हुई है परन्तु इसमें व्याप्त अनिश्चितृता को समाप्त नहीं किया जा सकता है। जब तक ''जब चाहे तब'' वाली मशीनीकरण की सुविधा प्राप्त नहीं होती तब तक उच्चतर कृषि फसल उत्पादकता एवं वांछित गहनता तथा व्यापारी स्तर की विविधता को प्रश्रय नहीं मिल सकता।

References:

1. Myrdal, G., 'Rich Lands and Poor',Newyork, 1989, p. 11
2. Arya, K.S., (et, al) 'Rural Development in India, Some Factores', Chandigarh, 1986, p. 10
3. Khan, T.R., Technological Change and its Diffusion in Agriculture, in (ed.) Jain. S.C. Problems of Agricultural Development in India, Allahabad, 1976, p. 90
4. Misra, R.P., 'Diffusion of Agricultural Innovations', Mysore, 1968.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 20 अंक 1, जनवरी-जून 2018
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

कार्यरत महिलाओं के समक्ष व्यवसाय और गृह का भूमिका द्वन्द

❑ ऋचा सिंह
❖ डॉ० उदय भान सिंह

वर्तमान समय में यह देखा जा रहा है कि बैंकिग सेवा क्षेत्र ने महिलाओं को अत्यधिक आकर्षित किया है। निश्चित अवधि तक कार्य, निश्चित नियम राजनीतिक हस्तक्षेप का अभाव, सापेक्ष सुरक्षा आदि कई ऐसे कारक हैं जिससे महिलाओं का आकर्षण बैंकिग क्षेत्र की तरफ बढ़ा है। लेकिन कार्य की अनुकूलता व आकर्षक वेतन के साथ-साथ महिला से जुड़ी पारिवारिक पृष्ठभूमि, शिक्षा का स्तर आदि कारक महिलाओं के समक्ष कार्य और परिवार का दोहरा दबाव उपस्थित करते हैं। प्रदत्त और अर्जित मूल्य तथा भूमिका के बीच आज की कामकाजी महिला किस तरह समंजन कर रही है? प्रस्तुत अध्ययन इसी प्रश्न के उत्तर की खोज का प्रयास हैं।

शिक्षा के प्रचार-प्रसार से देश में शिक्षित युवतियों की संख्या दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ने लगी स्त्रियां भी पढ़-लिखकर नौकरियां करने लगीं तथा कामकाजी महिलाओं का एक नया वर्ग चल गया। जिस समाज में स्त्री की कमाई को अनुचित समझा जाता था, उसी समाज में स्त्री की कमाई से घर चलने लगे। ''दोनों कमाते हैं।'' यह बहुत गर्व की बात समझी जाती है। देश में कामकाजी महिलाओं का इतिहास कोई बहुत पुराना नहीं है। इसे यूं मान लेना चाहिए कि स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान में स्वतंत्रता और समानता के सिद्धान्त से प्रभावित होकर महिलाओं में आत्मनिर्भरता के लिए जो नई सोच, नई चेतना पैदा हुई है, यह उसी का परिणाम है। स्त्री शिक्षा में प्रगति हुई उसी ने इस क्षेत्र में लोगों को उत्साहित किया। अच्छे जीवन स्तर की इच्छा को बल मिला यह तो समय की आवश्यकता है, परिवार की आवश्यकता, व्यक्तिगत अहम् की तुष्टि, समय व्यतीत करने की चाह आदि ऐसे कारण हैं जो कामकाजी महिलाओं के केन्द्र बिन्दु हैं।

अध्ययनों से यह प्रमाणित होता है कि कार्यरत महिलाओं के सामने मुख्य समस्या भूमिका संघर्ष की है कि वे अपने आपको परिवार तथा कार्यालय के अनुसार कैसे समंजित करें। निम्न स्व-प्रतिबिम्ब और दोहरी भूमिकाएं कामकाजी महिलाओं के लिये भूमिका संघर्ष पैदा कर रही हैं जिसका प्रभाव पारिवारिक सम्बन्धों तथा अपेक्षित भूमिका निर्वहन पर पड़ रहा है।[1] कामकाजी महिलाएं आज भी आर्थिक रूप से पुरूष से मुक्त नहीं हैं क्योंकि जो महिलाएं अपने परिवार की अर्थव्यवस्था में योगदान करती हैं वे अपनी आय को अपनी इच्छा से व्यय करने के लिये स्वतंत्र नहीं हैं। सामाजिक, नैतिक व मनोवैज्ञानिक आयामों में भी उसकी स्थिति पुरुष के समरूप नहीं है। जिस प्रकार वह नौकरी करती हैं, घर का काम करती हैं, इन सब के प्रति उसकी निष्ठा उसके जीवन के स्वरूप के सन्दर्भ पर निर्भर करती है। समाज के द्वारा उसका मूल्यांकन बिल्कुल भिन्न परिप्रेक्ष्य में होता है।

महिलाओं के कार्यरत होने का इतिहास बहुत पुराना नहीं है पाश्तात्य देशों में औद्योगिक क्रान्ति के बाद इस प्रक्रिया में काफी तीव्रता आयी लेकिन भारत में यह प्रक्रिया अन्य देशों की तुलना में विलम्ब से प्रारम्भ हुई। महिलाओं का कार्यक्षेत्र में प्रवेश, उनकी आर्थिक आवश्यकता, आधुनिकीकरण एवं शिक्षा, आर्थिक विवशता, उपयोगी व उच्चतर जीवन स्तर अनेक कारणों से रहा होगा।[2]

❑ शोध अध्येत्री, समाजशास्त्र विभाग, फिरोज गाँधी कालेज, रायबरेली (उ.प्र.)
❖ एसोशिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष समाजशास्त्र विभाग, फिरोज गाँधी कालेज, रायबरेली (उ.प्र.)

एक कामकाजी महिला को अपने कार्यरत जीवन तथा मां के रूप में दो विरोधी भूमिकाओं के संघर्ष का सामना करना पड़ता है। एक तरह अपने कार्यालय का कार्यभार तथा दूसरी ओर मां के रूप में संतानों की देखभाल, इसी प्रकार एक कार्यरत महिला अपने कार्य के साथ-साथ घर और परिवार की देखभाल करती है तब भी संघर्ष उत्पन्न होती है।

व्यवसायिक भूमिका तथा परम्परागत भूमिकाओं को साथ निभा पाना एक महिला के लिए प्राकृतिक रूप से कठिन हो जाता है। आज भी परिवार में कई कार्य या भूमिकाएं ऐसी होती हैं जिनके निर्वाह की पूर्ण जिम्मेदारी एक महिला की ही मानी जाती है। अतः एक कार्यरत महिला के लिए दोनों क्षेत्रों में समायोजन एक समस्या उत्पन्न कर देता है। निमकाक का इस सन्दर्भ में कहना है कि कई लोगों के लिए एक साथ विवाह और कार्य के उद्देश्य को स्वीकार करना एक संघर्ष उत्पन्न कर सकता है। इससे निश्चय ही कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं क्योकि दो प्रकार के उद्देश्यों की संतुष्टि के लिये दो विभिन्न प्रकार के गुणों की आवश्यकता होती है।[३]

महिलाओं की भूमिका और प्रस्थिति परिवर्तन के सन्दर्भ में मृदुला ने लिखा है कि भारतीय समाज एक परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है जिसके कारण समाज में पारम्परिक और आधुनिक मूल्यों के बीच एक टकराव की स्थिति उत्पन्न हो गई है। विशेषकर समाज में महिलाओं को नई जिम्मेदारी के कारण घर और बाहर दोहरी भूमिका का निर्वाह करना पड़ता है। परिवार की बढ़ती आवश्यकताओं के परिणामस्वरूप बढ़ते आर्थिक दबाव के कारण नौकरी करने को बाध्य होना पड़ता है।[४]

पी० शीना०[५] का अध्ययन केरल के कोझीकोड जिले में सार्वजनिक व निजी दोनों क्षेत्रों में कार्यरत कुल ४६५ महिलाओं पर हैं। अध्ययन में पाया कि महिला-रोजगार सबसे अधिक स्कूलों में व स्वास्थ्य विभाग में है और इसके विपरीत सबसे कम महिला-भागीदारी पुलिस विभाग में है। यह भी देखा गया है कि रोजगार से महिलाओं के अधिक निर्णय लेने की शक्ति व घर पर उनकी एक बेहतर स्थिति का निर्धारण होता है। शीना ने अपने अध्ययन में पाया कि वहां पर कार्यरत महिलाओं के लिए अपने परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु व वित्तीय बोझ के कारण रोजगार से सम्बद्ध है तथा निजी क्षेत्र की तुलना में सार्वजनिक क्षेत्र की कार्यरत महिलाओं में सामाजिक-आर्थिक शर्तों की दशा बेहतर है।

सौम्या पण्डित, शोभा उपाध्याय[६] का अध्ययन मुख्यतः मध्यम वर्ग की कामकाजी महिलाओं की दोहरी भूमिका (व्यवसायिक भूमिका व सामाजिक भूमिका) के अन्तर्सम्बन्ध पर केन्द्रित है। अध्ययन में पाया गया कि मध्यम वर्ग की महिलाएं अपने पारिवारिक जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने के लिए कार्य करती हैं तथा महिलाओं द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार की भूमिकाओं के निर्वाह के फलस्वरूप पारिवारिक जीवन में दबाव एवं तनाव व दशाओं में वृद्धि हुई है।

वर्षा कुमारी[७] द्वारा ओडिशा राज्य के राउरकेला शहर सार्वजनिक क्षेत्र के उधमों में, बैंक, स्कूल व कॉलेजों में कार्यरत महिलाएं, अस्पतालों वाणिज्यिक संगठनों जैसे विभिन्न व्यवसायिक क्षेत्रों में कार्यरत महिलाओं की समस्याओं और चुनौतियों का अध्ययन किया गया। अध्ययन में पाया कि अलग-अलग आयु-वर्ग में व विशेष वर्ग की महिलाओं तथा विभिन्न श्रेणियों की कार्यरत महिलाएं जैसे विवाहित महिलाएं, व अविवाहित महिलाएं, तलाकशुदा महिलाएं, व परित्यक्ता महिलाओं की समस्याओं व चुनौतियों में विभिन्नता पाई जाती है किन्तु इसके साथ ही निश्चित रूप से कुछ सामान्य तरह की समस्याओं जैसे-मानसिक व शारीरिक तनाव, परिवार व नौकरी दोनों के बीच उचित सन्तुलन की समस्या, परिवार की देखभाल, कार्यस्थल में भेदभाव व तनावपूर्ण जीवन इत्यादि का सामना करना पड़ता है।

कार्योजित महिलाओं के सामाजिक आर्थिक दशाओं से सम्बन्धित बहुत ही महत्वपूर्ण अध्ययन हुये हैं। यह अध्ययन महिलाओं पर कई दृष्टिकोण से किये गये हैं। वर्तमान समय में यह देखा जा रहा है कि बैंकिग सेवा क्षेत्र में महिलाओं को अत्यधिक आकर्षित किया है।

निश्चित अवधि तक कार्य, निश्चित नियम, राजनीतिक हस्तक्षेप का अभाव, सापेक्ष सुरक्षा आदि कई ऐसे कारक हैं जिससे महिलाओं का आकर्षण बैंकिग क्षेत्र की तरफ बढ़ा है। लेकिन कार्य की अनुकूलता व आकर्षक वेतन के साथ-साथ महिला से जुड़ी पारिवारिक पृष्ठभूमि, शिक्षा का स्तर आदि कारक महिलाओं के समक्ष कार्य और परिवार का दोहरा दबाव उपस्थित करते हैं। प्रदत्त और अर्जित मूल्य तथा भूमिका के बीच आज की कामकाजी महिला किस तरह समंजन कर रही है? प्रस्तुत अध्ययन इसी प्रश्न के उत्तर की खोज का प्रयास हैं।

अध्ययन के उद्‌देश्यः-

१. कार्यरत महिलाओं के सेवायुक्त होने के कारण सम्बन्धित विषयक तथ्यों का विश्लेषण करना।
२. कार्यरत महिलाओं की व्यवसायिक संतुष्टि विषयक तथ्यों का विश्लेषण करना।
३. कार्यरत महिलाओं का दोहरी भूमिका निभाने के कारण उत्पन्न अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति को ज्ञान करना।

परिकल्पनाः-

१. कार्यरत महिलाएं संयुक्त परिवार की अपेक्षा एकाकी परिवार से सम्बन्धित होती हैं।
२. कार्यरत महिलाएं कम वेतन व अत्यधिक श्रम के दबाव कारण अपने व्यवसाय से संतुष्ट नहीं हैं।
३. भूमिका द्वन्द्व से उत्पन्न विषम परिस्थितियों के बावजूद महिलाएं समंजन बनाने में सफल रही हैं।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत अध्ययन अन्वेषणात्मक व व्याख्यात्मक शोध अभिकल्प पर आधारित है। अध्ययन का समग्र रायबरेली शहर में बैंको में कार्यरत कुल १०१ महिलाएं हैं जिनका ५० प्रतिशत दैव निदर्शन प्रणाली के आधार पर चयन किया गया है। इस तरह अध्ययन के निर्दशन में कुल ५५ बैंकिग सेवा में कार्यशील महिलाएं हैं जिनका साक्षात्कार अनुसूची द्वारा अध्ययन किया गया है। प्राथमिक स्त्रोत से प्राप्त किये गये आंकड़ों को तालिकाओं के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है।

विश्लेषण एवं निष्कर्ष :

पारिवारिक संरचना एवं प्रस्थिति

तालिका संख्या-०१

कार्यरत महिलाओं के परिवार का स्वरूप

परिवार स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
संयुक्त परिवार	१७	३०.९
एकाकी परिवार	३७	६९.१
योग	५५	१००

तालिका संख्या १ से ज्ञात होता है कि परिवार के स्वरूप से सम्बन्धित मान्यता के अनुसार अधिकांश महिलाएं (६१.१ प्रतिशत) एकाकी परिवार से सम्बन्धित हैं, जबकि ३०.१ प्रतिशत महिलाएं संयुक्त परिवार से सम्बन्धित हैं। अतः इस तालिका द्वारा प्राप्त तथ्यों से यह मान्यता स्पष्ट हो जाती है कि सामान्यतः कार्यरत महिलाएं संयुक्त परिवार की अपेक्षा एकाकी परिवार से सम्बन्धित हैं। इससे अध्ययन की पहली उपकल्पना, 'कार्यरत महिलाएं संयुक्त परिवारों की अपेक्षा एकाकी परिवारों से संबंधित होती हैं' की पुष्टि होती है।

तालिका संख्या-०२

महिलाओं के परिवार में अन्य कमाने वाले सदस्य

संख्या	आवृत्ति	प्रतिशत
१-३	४२	७६.३६
३-५	१३	२३.६४
५ से अधिक	--	--
योग	५५	१००

तालिका संख्या ०२ से ज्ञात होता है कि सर्वाधिक ७६.३६ प्रतिशत कार्योजित महिलाओं के परिवार में अन्य कमाने वाले सदस्यों की संख्या १-३ की बीच की है जबकि २३.६४ प्रतिशत महिलाओं के परिवारों में यह संख्या ३-५ के बीच पायी जाती है।

तालिका संख्या-०३

महिलाओं के कार्यरत होने के उत्तरदायी कारण

उत्तरदायी कारण	आवृत्ति	प्रतिशत
घर की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने हेतु	२७	४९.१०
आत्मनिर्भर होने के लिये	१८	३२.७२

अपनी शिक्षा का उपयोग करने के लिये	०६	१०.०३
अन्य कारण	०४	०७.२८
योग	५५	१००

तालिका संख्या-१ व तालिका संख्या-०३ का तुलनात्मक विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि ७६.३६ प्रतिशत कार्योजित महिलाओं के परिवार में अन्य कमाने वाले सदस्यों की संख्या कम पायी गई हैं जिसके कारण सर्वाधिक ४६.१० प्रतिशत कार्यरत महिलाओं ने घर की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने हेतु व्यवसाय को अपनाया है, जबकि जिन परिवारों में अन्य कमाने वाले सदस्यों की संख्या अधिक (३-५ के बीच) पायी गयी है। उन परिवारों की कार्यरत महिलाओं मे ंआत्म-निर्भर होने के लिए व्यवसाय को अपनाया है।

तालिका संख्या-०४

महिलाओं के वर्तमान व्यवसाय से संतुष्टि

व्यवसाय से संतुष्टि	आवृत्ति	प्रतिशत
हां	१७	३०.६०
नहीं	३३	६०.००
निश्चित नहीं	०५	०६.१०
योग	५५	१००

तालिका संख्या-४ से ज्ञात होता है कि ६० प्रतिशत महिलाएं ऐसी हैं जो अपने वर्तमान व्यवसाय से संतुष्ट नहीं हैं जिसके कारण वे वर्तमान व्यवसाय में नहीं बने रहना चाहती हैं। इसके कई कारण हैं-घण्टे की अनिश्चितता, व्यवसाय में प्राप्त होने वाले वेतन आदि। जबकि ३०.६ प्रतिशत महिलाएं अपने वर्तमान व्यवसाय में रहना निश्चित नहीं है।

तालिका संख्या-५

कार्यरत महिलाओं को कार्य के घण्टों के अनुकूल वेतन

स्थिति	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	१२	२१.८२
नहीं	४३	७८.१८
योग	५५	१००

तालिका संख्या-४, तालिका संख्या-५ का तुलनात्मक विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि कार्यरत अधिकांश महिलाओं का मानना है कि उन्हें उनके द्वारा किये जाने वाले श्रम के अनुकूल वेतन नहीं दिया जाता है। जबकि सिर्फ २१.८२ प्रतिशत महिलाएं अपने वेतन से संतुष्ट पायी गई हैं। अधिक काम व कम वेतन की असंतुष्टि के कारण अधिकांश महिलाएं अपने वर्तमान व्यवसाय में बने रहने के पक्ष में नहीं है। अतः तालिका संख्या-४ तथा ५ द्वारा प्राप्त तथ्यों से अध्ययन की यह उपकल्पना की संपुष्टि हो जाती है कि ''कार्यरत महिलाएं कम वेतन व अत्यधिक श्रम में दबाव के कारण व्यवसाय से संतुष्ट नहीं हैं।''

भूमिका द्वन्द्व एवं समंजन

तालिका संख्या-६

परिवार में किसी विषय पर मतभेद की स्थिति में उत्तरदात्रियों के विचार

विचार	आवृत्ति	प्रतिशत
विपक्ष को अपना दृष्टिकोण समझाने का प्रयास करके	३७	६७.२७
अपने अधिकार और पद दबाव डालकर	०१	क ा ०१.८१
उदासीन	०२	०३.६३
स्थिति के प्रति समर्पण	१५	२७.२६
योग	५५	१००

तालिका संख्या-६ का विश्लेषण उपरान्त ज्ञात होता है कि सर्वाधिक कार्यरत महिलाएं (६७.२७ प्रतिशत) परिवार के अन्य सदस्यों के साथ किसी विषय पर मतभेद होने पर उस स्थिति का सामना करने हेतु विपक्ष को अपना दृष्टिकरण समझाने हेतु प्रयास करती हैं। जबकि सबसे कम कार्यरत महिलाएं (१.८१ प्रतिशत) परिवार के अन्य सदस्यों के साथ किसी विषय पर मतभेद होने पर उस स्थिति का सामना करने हेतु अपने अधिकार और पद का दबाव डालती है। अतः कह सकते हैं कि ज्यादातर कार्यरत महिलाएं पारिवारिक समंजन हेतु समर्पित रहती हैं।

तालिका संख्या-७

गृह प्रबन्ध में पुरूषों की भागीदारी

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हां	३३	६०.०५
नहीं	०६	१६.३६
कभी-कभी	१३	२३.६४
योग	५५	१००

तालिका संख्या-७ से ज्ञात होता है कि सर्वाधिक महिलाओं (६०प्रतिशत) को गृह-प्रबन्ध में पुरूषों की भागीदारी प्राप्त होती है जबकि मात्र १६.३६ प्रतिशत महिलाएं मानती हैं कि उन्हें गृह-प्रबन्ध में पुरूषों की भागीदारी नहीं प्राप्त होती है।

तालिका संख्या-८

पारिवारिक गतिविधियों में सक्रिय भूमिका

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हां	४०	७२.७२
नहीं	०४	०७.२८
कभी-कभी	११	२०.०
योग	५५	१००

तालिका संख्या-७ व तालिका संख्या-८ का तुलनात्मक विश्लेषण उपरान्त ज्ञात होता है कि जिन कार्यरत महिलाओं को गृह-प्रबन्ध में पुरूषों की भागीदारी प्राप्त होती है वे अपनी आपेक्षित भूमिकाओं के प्रति सजग रहती हैं तथा पूर्ण करने का प्रयास करती है। तालिका संख्या-८ से पता चलता है कि पारिवारिक गतिविधियों में सक्रिय भूमिका अदा करने के सन्दर्भ में अधिकांश महिलाओं (७२.७२ प्रतिशत) ने यह स्वीकार किया है कि वे अपने पारिवारिक गतिविधियों में सक्रिय भूमिका निभाती हैं जबकि २० प्रतिशत महिलाओं ने स्वीकारा है कि वे किन्हीं कारणों से कभी-कभी सक्रिय भूमिका अदा कर पाती हैं। सबसे कम ०७.२८ प्रतिशत महिलाओं ने माना है कि वे कभी भी पारिवारिक गतिविधियों में सक्रिय भूमिका नहीं अदा करती हैं और ये ज्यादातर वे महिलाएं हैं जिन्हें गृह-प्रबन्ध में पुरूषों की भागीदारी नहीं प्राप्त होती है।

तालिका संख्या ७, ८ तथा ६ द्वारा प्राप्त तथ्यों से अध्ययन की यह उपकल्पना कि 'भूमिका द्वन्द से उत्पन्न विषम परिस्थितियों के वाबजूद महिलाएं समंजन बनाने में सफल हो रही हैं' प्रमाणित होती है। यहाँ यह तथ्य अवश्य उल्लेखयनीय है कि ऐसा करने में वे महिलाएं ही सफल हो रही हैं जिन्हें गृहप्रबंध में पुरूषों की भागेदारी प्राप्त होती है।

तालिका संख्या-०६

महिलाओं द्वारा परिवारों के साथ सामंजस्य

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हां	३४	६१.८१
नहीं	१६	२६.०६
कभी-कभी	०५	०६.१
योग	५५	१००

तालिका संख्या-७ का तुलनात्मक विश्लेषण उपरांत ज्ञात होता है कि ज्यादातर महिलाएं (६१.८१ प्रतिशत) परिवार के साथ सामंजस्य स्थापित करने में सक्षम हैं किन्तु ये तथ्य भी सामने आया है कि ये वे महिलाएं हैं जिन्हें गृह-प्रबन्ध में पुरूषों की भागीदारी प्राप्त होती है। अतः कह सकतें हैं कि गृह-प्रबन्ध में पुरुष भागीदारी कार्यरत महिलाओं द्वारा परिवार के साथ सामंजस्य स्थापित करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देता है।

निष्कर्षः प्रस्तुत अध्ययन में प्रदत्त और अर्जित मूल्य तथा भूमिका के बीच आज कामकाजी महिला किस तरह समंजन कर रहीं हैं। इस प्रश्न के उत्तर की खोज की गई है और यह पाया गया कि कामकाजी महिलाओं की सबसे बड़ी समस्या है दोहरी जिम्मेदारियों का बोझ। महिलाओं पर व्यवसाय का उत्तरदायित्व बढ़ा देने के बावजूद उनकी पारंपरिक भूमिका में कोई विशेष कांट-छांट नहीं की गई है किन्तु ये तथ्य भी सामने आया है कि वर्तमान युग में पुरूष तथाकथित स्त्रियोचित कार्य करने में शर्म महसूस नहीं करते हैं तथा वे गृह-प्रबन्ध में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करतें हैं। अतः निष्कर्ष रूप में पाया गया कि जिन कार्यरत महिलाओं को गृह-प्रबन्ध में पुरूषों की भागीदारी प्राप्त होती है वे अपनी आपेक्षित भूमिका के प्रति सजग रहती हैं तथा पूर्ण करने का प्रयास करती हैं और वे कार्यरत महिलाएं परिवार के

साथ सामंजस्य स्थापित करने में भी समक्ष होती हैं। **वर्तमान** में स्त्रियां संयुक्त परिवारों से मुक्त होकर एकाकी परिवार में रहना चाहती हैं, वे एकाकी परिवारों की स्थापना कर स्वतंत्र जीवन व्यतीत करना तथा पारिवारिक मामलों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाना चाहती हैं। संक्षिप्त रूप में कहा जा सकता है कि स्त्रियों का स्थान पुरूषों के ही समान महत्वपूर्ण है अतः उनकी विभिन्न क्षेत्रों में उपस्थिति को नकारा नहीं जा सकता है।

सुझावः भारत का सामाजिक और आर्थिक परिदृश्य कामकाजी महिलाओं को उचित व्यवसायिक वातावरण नहीं प्रदान करता है। अतः सुझाव है कि सार्वजनिक निजी प्रतिष्ठानों में महिला सुरक्षा और आत्म सम्मान से जुड़ी आधारभूत प्रणाली का विकास किया जायें तथा संस्थानों में कार्यरत महिलाओं के व्यवसाय संतुष्टि हेतु उन्हें कार्य-घण्टे (श्रम) के अनुकूल वेतन की प्राप्ति होनी चाहिए क्योंकि प्रस्तुत अध्ययन से पता चलता है कि बैंकिग क्षेत्र की कार्यरत महिलाएं श्रम के अनुकूल वेतन न मिलने के कारण वे अपने वर्तमान व्यवसाय से संतुष्ट नहीं है। कामकाजी महिलाओं की स्थिति में गुणात्मक सुधार क्रियान्वित करने की दिशा में अनेक प्रयास करने होंगें जैसे-हर क्षेत्र में उनकी हिस्सेदारी और महिलाओं की नेतृत्वकारी भूमिका में वृद्धि करना, उन पर हो रही किसी भी प्रकार की हिंसा का अंत कर उन्हें शान्ति के प्रत्येक पहलू और सुरक्षा संबंधी तमाम प्रक्रियाओं में सम्मिलित करना आदि। साथ ही आर्थिक सशक्तीकरण और राष्ट्रीय योजनाओं और बजटिंग में लैंगिक समानता को केन्द्र बिन्दु में रखना भी महत्वपूर्ण है।

स्त्रियों को अपने कार्यक्षेत्र में एवं सम्बन्धित व्यक्तियों के साथ कार्य करने में होने वाली असुविधा को स्वयं दूर करना होगा इसके लिए उन्हे उन सभी अधिकारों का प्रयोग करना चाहिये जो भारतीय संविधान के अर्न्तगत उनके लिए निर्धारित किये गये हैं। स्त्रियों को स्वयं उस आर्थिक व्यवस्था का विश्लेषण करना चाहिए जिनके कारण ये परिस्थितियां उत्पन्न होती हैं। उनके द्वारा ऐसे आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षणिक तथा सांस्कृतिक संस्थाओं का निर्माण किया जाना चाहिए जिसके द्वारा वे समानता के स्तर पर आ सकें तथा समाज में स्वतन्त्र नागरिक की भांति अपने अधिकारों तथा अवसरों का प्रयोग कर सकें।

संदर्भ

१. आहूजा राम, 'भारतीय सामाजिक व्यवस्था', रावत पब्लिकेशन, जयपुर, २००६, पृ. ६५-६६

२. शाह इला एवं गोविन्द लाल 'कामकाजी महिलाओं की पारिवारिक-सामाजिक स्थिति का समाजशास्त्रीय अध्ययन', राधा कमल मुकर्जी चिन्तन परम्परा वर्ष १६ अंक-१, जनवरी-जून २०१७, पृ. ८५-८८

३. निमकाफ उद्धत कपूर प्रोमिला, 'मैरिज एण्ड वर्किंग विमेन इन इण्डिया', विकास पब्लिकेशन, नई दिल्ली, १६६१, पृ. १४-१५

४. भदौरिया मृदुला, 'वूमेन इन इंडिया', ए०पी०एच० पब्लिशिंग कार्पोरेशन, नई दिल्ली, १६६७ पृ. ८२

५. Sheena P. 'Employment of women in the organized sector of Kerla: A case study', Research avstracts on women's. Employment - 1998-2000, National Institute of Public Cooperation & Child Development', p. 270

६. Pandit Soyma & Upadhaya Shobha", Role conflict and its effect on middle class working women of India" journal of business and management, ISSN:2278-487, Volume 4, pp. 35-37.

७. Kumari Varsha, 'Problems and challenges faced by urban working women in India" Available at http:// ethesis.nitrkl.ac.in/6094/1/E-208.pdf

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

आगरा जनपद की बाह तहसील के जनसंख्या घनत्व प्रतिरूपों का एक प्रतीक अध्ययन

❑ डॉ० कौशलेन्द्र कुमार

आज मानव के समक्ष बढ़ती जनसंख्या की विकरालता अस्तित्व को समूल नष्ट करने की चुनौती के लिए खड़ी है, जो मात्र मानवीय जनसंख्या वृद्धि व घनत्व की देन है कि विभिन्न क्षेत्रों में अच्छी प्रगति के बावजूद विश्व के सबसे अधिक निरक्षर, निर्धन, बेरोजगार, बीमार लोग भारत में ही निवास करते हैं। जनसंख्या की यह असाधारण वृद्धि न केवल जीवन स्तर में क्षरण करती है, अपितु मानव कल्याण एवं अस्तित्व पर भी प्रश्न चिन्ह लगा देती है। वर्तमान में इस साक्ष्य को स्वीकार किया जा रहा है कि विकास प्रक्रिया में मानवीय संसाधनों का गुणात्मक पहलू जितना सुदृढ़ एवं सबल होगा, आर्थिक विकास की प्रक्रिया उतनी ही तीव्र एवं आशाजनक होगी। क्योंकि मात्र मानव एक ऐसा संसाधन है जो अपने बौद्धिक एवं शारीरिक श्रम तथा तकनीक के द्वारा नियोजन एवं संगठन के माध्यम से संसाधनों का सम्यक उपयोग करता है। प्रस्तुत शोध प्रपत्र में आगरा जनपद की बाह तहसील के जनसंख्या घनत्व प्रतिरूपों का एक सूक्ष्म स्तरीय अध्ययन किया गया है जो जनसंख्या घनत्व प्रतिरूपों के व्यवहारिक एवं मूलभूत आधार पर रूपान्तरण एवं विकास में सहायक होंगे।

धरातल के सबसे महत्वपूर्ण दृश्य मानवीय संसाधन के विभिन्न पक्षों के प्रतिरूपों का सामयिक एवं स्थानिक परिवर्तन है। इस सन्दर्भ में अन्य महत्वपूर्ण पक्ष आकारिकीय, सामुदायिक, भू-आकृतिक तथा सांस्कृतिक विशेषताओं से सम्बन्धित हैं जो जनसंख्या के सामयिक एवं स्थानिक ढांचे की परिवर्तनीयता के विषय हैं।[1] किसी भी क्षेत्र के वर्तमान तथा सम्भावित जनाधार, जनाधिक्य तथा न्यून जनसंख्या के निर्धारण क्षेत्रीय तुलना के लिए मापदण्ड बन गया है। जनसंख्या घनत्व किसी भी क्षेत्र की सम्भावनाओं में तुलनात्मक विश्लेषण की दृष्टि से सापेक्ष होता है। ऐसी किसी भी संभावना के अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रीय इकाइयों में वृद्धि स्वरूप है तो उन इकाइयों में घनत्व भी समानुपातिक रूप में वृद्धिशील होगा किन्तु जनसंख्या वृद्धि की असमानता विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न घनत्व प्रतिरूपों में परिवर्तन करती है जो जनसंख्या के पुनः वितरण के रूप में प्रतिरूपों की सूचक हैं।[2]

भौगोलिक पृष्ठभूमि : अध्ययन क्षेत्र उ०प्र० राज्य के जनपद-आगरा की बाह तहसील के अन्तर्गत आता है, जिसका अक्षांशीय विस्तार २६°४५' उत्तरी अक्षांश से लेकर २६°५६'३०'' उत्तरी अक्षांश तक तथा देशान्तरीय विस्तार ७८°११'४५'' पूर्वी देशान्तर से ७८°५१'३०'' पूर्वी देशान्तर तक विस्तृत हैं। अध्ययन क्षेत्र बाह तहसील का भौगोलिक क्षेत्रफल ८७७.६६ वर्ग किमी० है, जिसमें ८७६.४७ वर्ग किमी० ग्रामीण क्षेत्र तथा १.२२ वर्ग किमी० नगरीय क्षेत्र है। बाह तहसील का कुल भौगोलिक क्षेत्र जनपद आगरा के भौगोलिक क्षेत्रफल का २१.६२ प्रतिशत है। बाह तहसील की उत्तरी सीमा का निर्धारित फिरोजाबाद की शिकोहाबाद तहसील द्वारा, पश्चिम सीमा आगरा जनपद की फतेहाबाद तहसील द्वारा, पूर्वी सीमा का सीमांकन जनपद-इटावा की जसवन्त नगर तहसील द्वारा, तथा दक्षिणी सीमा म०प्र० राज्य द्वारा निर्धारित होती है।

वर्ष-२०११ की जनगणना के अनुसार, बाह तहसील की कुल जनसंख्या ४३०६०३ व्यक्ति है जिसमें ५३.१ प्रतिशत पुरूष तथा ४५.६ प्रतिशत स्त्रियाँ हैं। तहसील में ३ विकास खण्डों (पिनाहट, बाह व जैतपुर कलाँ) में २२ न्याय पंचायतें, २०७ राजस्व ग्राम तथा दो नगरीय क्षेत्र (बाह तथा पिनाहट) हैं।

❑ प्रवक्ता भूगोल विभाग, सिद्धान्त राज महाविद्यालय, जैतपुर कलाँ, आगरा (उ०प्र०)

शोध प्रारूप : प्रस्तुत शोध प्रपत्र में व्यवहारिक, क्रमवद्ध, प्रादेशिक एवं सैद्धान्तिक तथा गणितीय नियम अपनाये गये हैं। साथ ही जनसंख्या की संरचनात्मक विशेषताओं और विभिन्न पक्षों को अध्ययन के उद्देश्य से प्रस्तुत किया गया है। इसके अलावा सांख्यिकीय पत्रिका, भू-आकृतिक मानचित्र, सामाजिक-आर्थिक समीक्षा तथा विभिन्न सरकारी विभागों से व्यक्तिगत प्रश्नावली व निजी आकलन से सूचनायें प्राप्त की गयी हैं। संकल्पनाओं तथा सांख्यिकीय गणितीय मानचित्रात्मक एवं रेखाचित्र विधियों का प्रयोग किया गया है। जनसंख्या वृद्धि दर, साक्षरता, जातीय संरचना, धार्मिक संरचना तथा कार्यशील जनसंख्या के सामयिक प्रतिरूपों को कोटि गुणांक विधि, माध्य एवं विचलन विधि को अपनाया गया है तथा क्षेत्रीय प्रतिरूपों में दर्शाने के लिए मानचित्रों का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या घनत्व : जनसंख्या घनत्व से तात्पर्य प्रति भू-इकाई क्षेत्र पर अधिवासित व्यक्तियों से है।[३] किसी प्रदेश की जनसंख्या के सामान्य वितरण की अपेक्षा जनसंख्या घनत्व उस प्रदेश की सामान्य विशेषताओं को अभिव्यक्त करने में अधिक सक्षम होता है। जनसंख्या घनत्व भूमि और मानव के सामान्य स्थानिक वितरण की अपेक्षा किसी प्रदेश में जनसंख्या की प्रादेशिक विशेषताओं एवं वहाँ के वातावरण से उसके सम्बन्ध को स्पष्ट करने में अधिक सक्षम होता है। वस्तुतः सभी प्रकार के घनत्व किसी भी क्षेत्र में मानव वितरण की विविधता के ज्ञान में सहायक होते हैं।[४] अध्ययन क्षेत्र यमुना एवं चम्बल के बीहड़ी भू-भाग में अवस्थित एक अतिपिछड़ी एवं अल्पविकसित तहसील है। वर्ष-१९६१ में अध्ययन क्षेत्र का जनसंख्या घनत्व २००.२२ व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० था, जो बढ़कर १९७१ में २४७.१६ व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० हो गया। इस प्रकार १९६१-७१ के मध्य २.३४ प्रतिशत वार्षिक की दर से जनसंख्या वृद्धि घटित हुई। जनसंख्या घनत्व में अनवरत वृद्धि की प्रवृति रही है तथा १९८१ में बढ़कर २८८.२५ व्यक्ति २००१ में ४१४.८८ व्यक्ति २०११ में ४१७.१० व्यक्ति प्रति किमी० हो गया। अध्ययन क्षेत्र यमुना एवं चम्बल के बीहड़ क्षेत्र में स्थित होने के कारण आज भी विकास कार्यक्रमों के लाभ से न केवल वंचित है, अपितु कृषकों की रूढ़िवादिता, जातिगत विषमता एवं असुरक्षा तथा कृषि तकनीकी के विसरण का अभाव इत्यादि के कारण अध्ययन क्षेत्र में जनसंख्या घनत्व जनपद एवं राज्य की तुलना में कम देखने को मिलता है।

जनसंख्या घनत्व में वृद्धि में विकासखण्ड स्तर पर असमानतः परिलक्षित हो रही है। वर्ष-१९६१ में पिनाहट विकास खण्ड का जनसंख्या घनत्व १८१.८६ व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० था, जो बाह (२००.८७) तथा जैतपुर कलाँ (१६४.७२) से कम था। वर्ष-१९७१, १९८१, १९९१, २००१ तथा २०११ में भी पिनाहट विकास खण्ड का जनसंख्या घनत्व अन्य विकास खण्डों की तुलना में कम देखने को मिलता है। इसका एक कारण जीविकोपार्जन हेतु जनसंख्या का आगरा जैसे समीपस्थ जनपद में रोजगार हेतु पूर्ण कालिक स्थानान्तरण है। बाह विकास खण्ड में सर्वाधिक घनत्व ४४६.४५ व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० का कारण तहसील मुख्यालय का होना, तथा स्वास्थ्य एवं शिक्षा सुविधाओं की उपलब्धता है।

यदि न्याय पंचायत स्तर पर जनसंख्या घनत्व का अध्ययन किया जाय तो प्रखर क्षेत्रीय विषमता परिलक्षित होती है। कुल २२ न्याय पंचायतों में सर्वाधिक जनसंख्या घनत्व न्याय पंचायत जैतपुर कलॉ में (१०००.६६ व्यक्ति वर्ग किमी०) देखने को मिलता है जबकि सबसे कम जनसंख्या घनत्व न्याय पंचायत रूपपुरा में ५५०.२७ व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० है। यहाँ उच्च जनघनत्व का प्रमुख कारण समतल भू-भाग, बाजार सहित परिवहन सुविधाओं की उपलब्धता एवं विकासखण्ड का मुख्यालय होना है। जबकि रूपपुरा न्याय पंचात में बीहड़ धरातल अवनालिका कटाव से कृषि भूमि की अनुपलब्धता, परिवहन, शिक्षा एवं स्वास्थ्य जैसी सुविधाओं की कमी, कम जनसंख्या घनत्व के लिए प्रमुख कारण हैं।

न्याय पंचायत स्तर पर जनघनत्व का स्थानिक वितरण चित्र १ में प्रदर्शित है जिसके अवलोकन से स्पष्ट है, कि अपेक्षाकृत न्यून जनघनत्व (२००० व्यक्ति/वर्ग किमी) से कम विकास खण्ड जैतपुर कलॉ मुख्यालय के पश्चिम

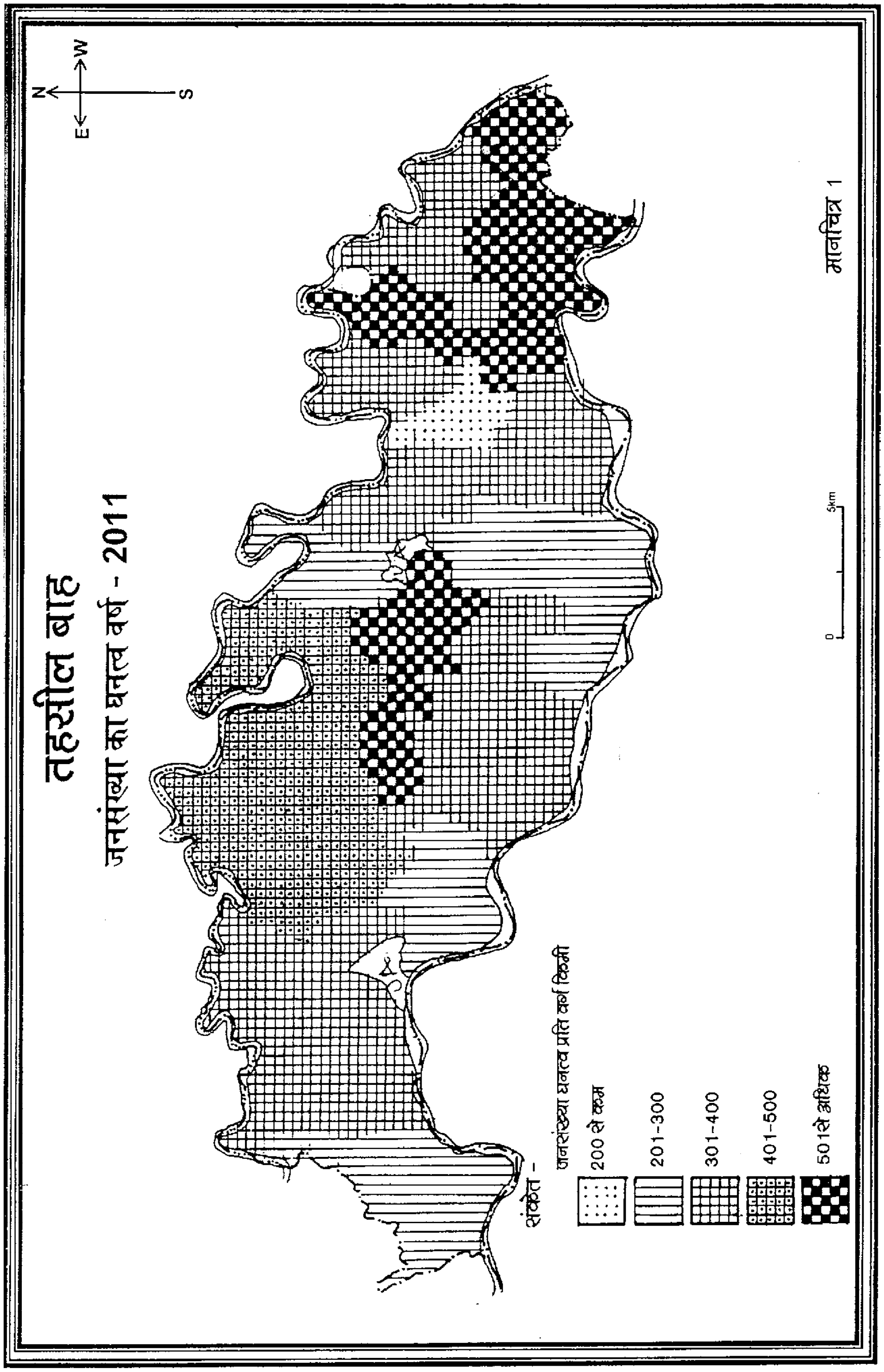

तहसील बाह
जनसंख्या का घनत्व वर्ग - 2011
N
E
W
S
संकेत -
जनसंख्या घनत्व प्रति वर्ग किमी
200 से कम
201-300
301-400
401-500
501से अधिक
0
5km
मानचित्र 1

में एक लघु भू-भाग पर मिलता है। इस वर्ग के अन्तर्गत अध्ययन क्षेत्र की एक न्याय पंचायत (४.५५ प्रतिशत) सम्मिलित है। २०१ से ३०० व्यक्ति वर्ग किमी० घनत्व वर्ग में कुल १८.१८ प्रतिशत न्याय पंचायतें आती हैं। मध्यमवर्ती भाग में एक पट्टी नुमा क्षेत्र तथा पश्चिमी भाग के दो भू-खण्डों में यही जनघनत्व मिलता है। ३०१ से ४०० व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. का जनसंख्या घनत्व अपेक्षाकृत अधिक भूभाग (३१.८२ न्याय पंचायतें) पर मिलता है। इससे पश्चिम में एक वृहत भूभाग पर तथा पूर्व में भी दो भूभागों पर इस वर्ग के जनसंख्या घनत्व का जमाव देखने को मिलता है। अध्ययन क्षेत्र के उत्तर में एक बड़े भूभाग पर जनसंख्या घनत्व ४०० से ५०० व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. है। १५०१ से अधिक व्यक्तियों का घनत्व मध्य में एक भूभाग पर दक्षिण पूर्व से उत्तरपूर्व दिशा में फैली एक पट्टी में मिलता है। इस वर्ग के अंतर्गत अध्ययन क्षेत्र की पांच (२२.७२ प्रतिशत) न्याय पंचायतें आती हैं।

कायिक घनत्व : कायिक घनत्व से आशय किसी प्रदेश की कुल जनसंख्या तथा उस प्रदेश के कृषित क्षेत्रफल के अनुपात से होता है। कायिक घनत्व किसी प्रदेश की जनसंख्या का उस प्रदेश में भूमि पर बढ़ते जनसंख्या दबाव को ही अभिव्यक्त नहीं करता, अपितु कायिक घनत्व गणितीय घनत्व की तुलना में अधिक वैज्ञानिक सूचकांक को प्रस्तुत करता है। कायिक घनत्व का परिकलन निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग कर किया गया है-

$$\text{कायिक घनत्व} = \frac{\text{न्याय पंचायत की कुल जनसंख्या}}{\text{न्याय पंचायत की कुल कृषित भूमि का क्षेत्रफल}}$$

अध्ययन क्षेत्र का कायिक घनत्व ६६६.०३ व्यक्ति प्रति किमी. है जो जनपद के कायिक घनत्व ७२.८६ व्यक्ति प्रति किमी. से कम है। कायिक घनत्व के क्षेत्रीय विवरण में असमानता के कारण ही एक ओर बाह विकासखण्ड में कायिक घनत्व ७८८.६४ व्यक्ति प्रति किमी. है तो दूसरी ओर पिनाहट विकास खण्ड में ५८१.७१ व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. ही है। न्याय पंचायत स्तर पर देखा जाय तो सर्वाधिक कायिक घनत्व (१४८८.०५ व्यक्ति) जैतपुर कला में तथा सबसे कम कायिक घनत्व (३६२.६६ व्यक्ति) रूपपुरा न्याय पंचायत में मिलता है। जैतपुर कला में कायिक घनत्व अधिक होने का कारण जनाधिक्य की तुलना में कृषित भूमि का कम होना है।

क्षेत्र अवनालिका कटाव के परिणामस्वरूप कृषित क्षेत्रफल में कमी के कारण कायिक घनत्व का स्तर उच्च होता जा रहा है। तालिका ३ तथा मानचित्र २ में अध्ययन क्षेत्र के कायिक घनत्व के स्थानिक प्रतिरूप को प्रदर्शित किया गया है, जिससे स्पष्ट होता है कि पश्चिम में तीन लघु भू-भागों पर कायिक घनत्व ५५० व्यक्ति से कम है जबकि उत्तर में यमुना के तटीय क्षेत्र के तीन भू-भागों तथा पूर्व में एक बृहत् भू-भाग पर कायिक घनत्व अति उच्च (८५१ व्यक्ति अधिक) है। अध्ययन क्षेत्र के कायिक घनत्व एवं गणितीय घनत्व में पर्याप्त समरूपता देखने को मिलती है क्योंकि यहाँ की ६१ प्रतिशत से अधिक जनसंख्या कृषि पर ही निर्भर है।

कृषि घनत्व : कृषि घनत्व से आशय कृषि में संलग्न जनसंख्या तथा शुद्ध कृषित क्षेत्रफल के अनुपात से होता है। अध्ययन क्षेत्र एक कृषि प्रधान क्षेत्र है जहाँ की ६१.३७ प्रतिशत जनसंख्या ग्रामों में तथा ८.६५ प्रतिशत जनसंख्या नगरों में निवास करती है। ग्रामीण जनसंख्या प्रधानता कृषि कार्यों में संलग्न है। कृषि घनत्व का परिकलन अधोलिखित सूत्र के आधार पर किया गया है।

$$\text{कृषि घनत्व} \quad \frac{\text{कुल कृषित जनसंख्या}}{\text{कृषित भूमि}}$$

अध्ययन क्षेत्र का औसत कृषि घनत्व १३१.६८ व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. है जो जनपद के कृषि घनत्व ११३.८३ व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. से कुछ ही अधिक है। कृषि घनत्व में विकास खण्डवार एवं न्याय पंचायत स्तर पर विषमता देखने को मिलती है। सर्वाधिक कृषि घनत्व विकास खण्ड जैतपुर कलॉ में १४०.४३ व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० है, इसके बाद विकास खण्ड बाह में १२६.६८ व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० तथा पिनाहट में सबसे कम

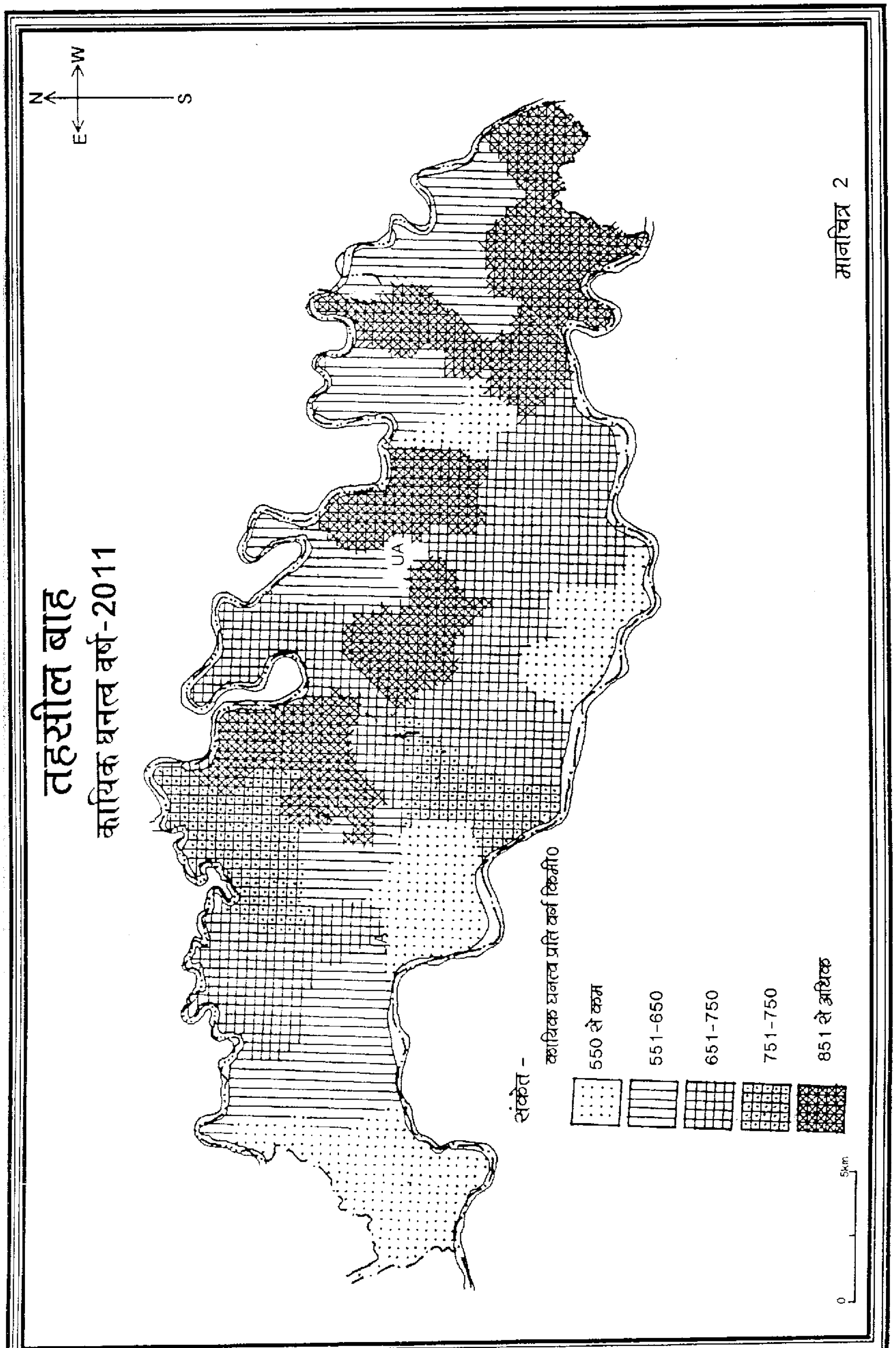
तहसील बाह
कायिक घनत्व वर्ष-2011
N
E
W
S
UA
संकेत -
कायिक घनत्व प्रति वर्ग किमी0
550 से कम
551-650
651-750
751-750
851 से अधिक
0
5km
मानचित्र 2

कृषि घनत्व १२६.१० देखने को मिलता है। न्याय पंचायत स्तर पर कृषि घनत्व में और भी अंतर देखने को मिलता है। एक ओर बड़ा गॉव न्याय पंचायत में २२६.०३ व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० दूसरी ओर रूपपुरा का कृषि घनत्व केवल ५८.७६ व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० है। मानचित्र ३ एवं तालिका १ में अध्ययन क्षेत्र के कृषि घनत्व को प्रदर्शित किया गया है जिसके अवलोकन से स्पष्ट होता है कि कायिक घनत्व एवं कृषि घनत्व में पर्याप्त समरूपता देखने को मिलती है अर्थात् जिन भू-भागों में कायिक घनत्व कम है उन्हीं, भागों में कृषि घनत्व भी कम देखने को मिलता है। इसका कारण अध्ययन क्षेत्र की जनसंख्या की कृषि पर निर्भरता है। अध्ययन क्षेत्र की चार न्याय पंचायतें उमरेठा, सिधॉवली, पुराभगवानपुर तथा रूपपुरा ऐसी न्याय पंचायतें हैं, जहां कृषि घनत्व १०० व्यक्ति/वर्ग किमी० से भी कम है। इन न्याय पंचायतों का कृषि घनत्व क्रमशः ७५.६१, ६७.६४, ६५.१२ तथा ५८.७६ व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० है। इन न्याय पंचायतों में कृषि घनत्व कम होने का कारण कृषक एवं कृषि जनसंख्या का अन्यत्र स्थानान्तरण तथा भूमि कटाव के कारण कृषि क्षेत्र में ह्रास है।

पोषण घनत्व : पोषण घनत्व से किसी क्षेत्र की भूमि भार वहन क्षमता का ज्ञान होता है इससे जनसंख्या दबाव वाले क्षेत्रों की पहचान आसानी से की जा सकती है। पोषण घनत्व का परिकलन निम्नलिखित सूत्र द्वारा किया जाता है।

$$\text{पोषण घनत्व} \quad \frac{\text{कुल जनसंख्या}}{\text{खाद्यान शस्यों के अंतर्गत क्षेत्रफल}}$$

अध्ययन क्षेत्र बाह तहसील का पोषण घनत्व ६१५.५६ व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० है, जो जनपद के पोषण घनत्व ७८६.६४ व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० से अत्यधिक कम है। अध्ययन क्षेत्र में बाह तहसील के विकास खण्ड वार पोषण घनत्व तथा न्याय पंचायतवार पोषण घनत्व में अत्यधिक प्रादेशिक विषमता देखने को नहीं मिलती है। अध्ययन क्षेत्र में सर्वाधिक पोषण घनत्व विकास खण्ड बाह में ६५२.५५ व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० तथा सबसे कम पोषण घनत्व विकास खण्ड पिनाहट का ५८४.६२ व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० है। अध्ययन क्षेत्र की न्याय पंचायतों में भी पोषण घनत्व कम देखने को मिलता है इसका प्रमुख कारण अध्ययन क्षेत्र में कृषि सुविधाओं का अपर्याप्त विकास तथा भूमि में नमी की कमी के कारण कृषक अखाद्य शस्यों की कृषि अधिक करते हैं। अध्ययन क्षेत्र के विकास खण्ड बाह की न्याय पंचायत जरार में पोषण घनत्व विकास खण्ड बाह की न्याय पंचायत पुराभगवान में ३०२.१६ व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० देखने को मिलता है। मानिचत्र ४ में तथा तालिका १ में अध्ययन क्षेत्र के न्याय पंचायतवार पोषण घनत्व को प्रदर्शित किया गया है। मानचित्र के अवलोकन से स्पष्ट होता है, कि अध्ययन क्षेत्र के उत्तर में प्रवाहित यमुना नदी तथा दक्षिण में प्रवाहित चम्बल नदी के दोआब में स्थित बलुई दोमट मिट्टी में अखाद्य शस्यों जैसे आलू, लहसुन, इत्यादि के क्षेत्रफल में वृद्धि होने के कारण खाद्यान्न शस्यों के क्षेत्रफल में ह्रास हो रहा है। अध्ययन क्षेत्र के मध्य में एक भू-भाग में ही पोषण घनत्व अधिक देखने को मिलता है अध्ययन क्षेत्र की शेष न्याय पंचायतों में पोषण घनत्व जनपद के पोषण घनत्व से कम देखने को मिलता है।

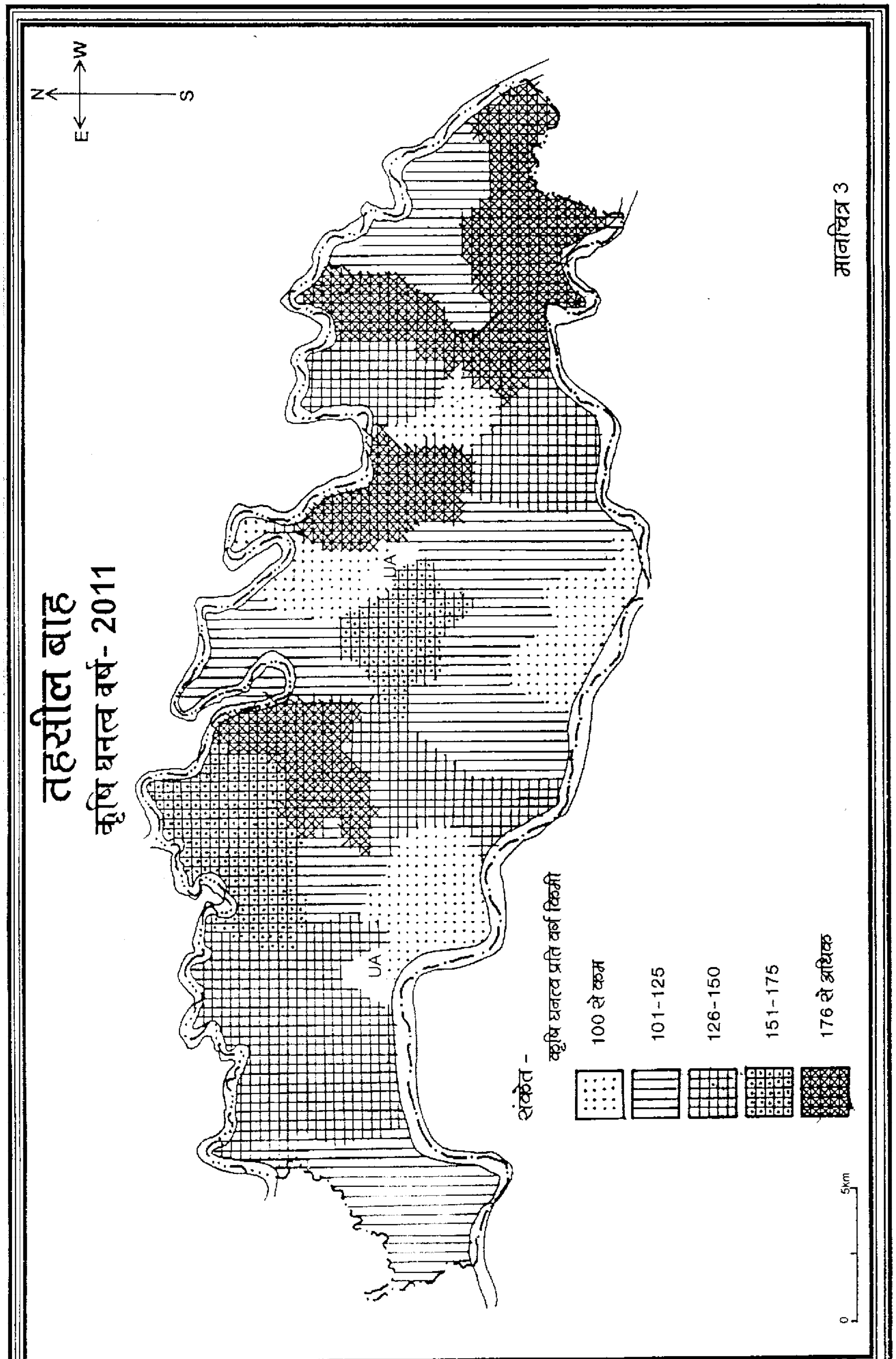
तहसील बाह
कृषि घनत्व वर्ष- 2011
N
E
W
S
UA
UA
संकेत -
कृषि घनत्व प्रति वर्ग किमी
100 से कम
101-125
126-150
151-175
176 से अधिक
0
5km

मानचित्र 3

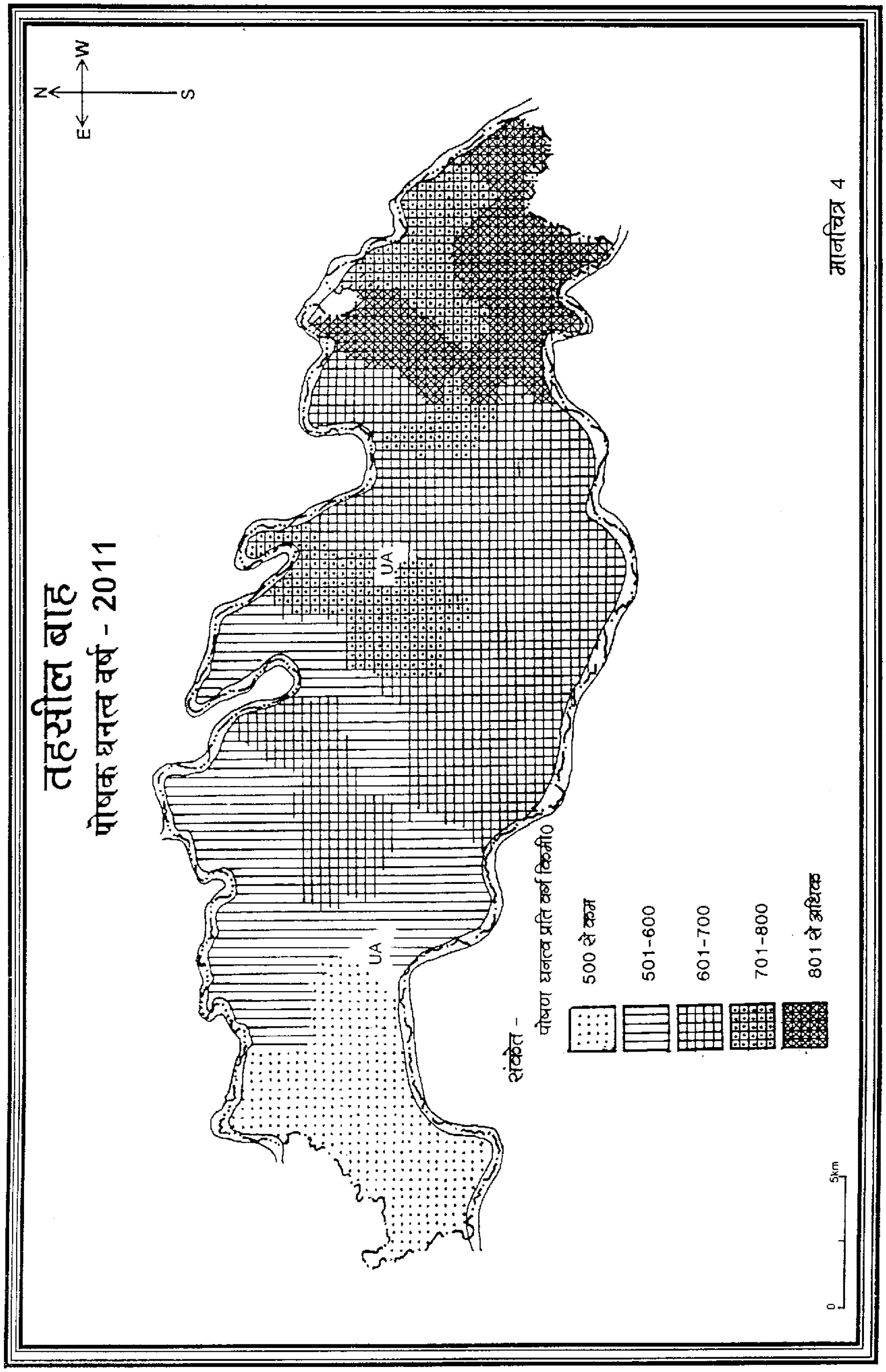
तहसील बाह
पोषक घनत्व वर्ष - 2011
N
W
E
S
UA
UA
संकेत -
पोषण घनत्व प्रति वर्ग किमी0
500 से कम
501-600
601-700
701-800
801 से अधिक
0
5km
मानचित्र 4

तालिका १ तहसील बाह में विकास खण्डवार जनसंख्या घनत्व का विवरण-२०११

विकास खण्ड का नाम	कुल जनसंख्या	क्षेत्रफल वर्ग किमी० में	गणितीय घनत्व वर्ग किमी० में	कायिक घनत्व वर्ग किमी० में	कृषि घनत्व वर्ग किमी० में	पोषण घनत्व
पिनाहट	१२६१६८	२६६.३८	३४७.६८	५८१.६६	१२६.१०	५८४.६२
बाह	१४७४५२	२७६.४६	४३२.७३	७८८.६४	१२६.६८	६५२.५५
जैतपुर कलॉ	१२१६८३	३००.६३	३६५.२४	७३६.७८	१४०.४३	६०१.०७
कुल योग	३३५१३२	८७६.४७	४१७.१०	६६६.०३	१३१.६६	६१५.५६

अध्ययन क्षेत्र के सर्वाधिक क्षेत्रफल पर पोषण घनत्व ५०१ से ७०० व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० देखने को मिलता है। इस वर्ग के अन्तर्गत अध्ययन क्षेत्र की १४ (६५.६४ प्रतिशत) न्याय पंचायतें सम्मिलित हैं।

सन्दर्भ

१. U.N. Demographic Year Book, 1992.

२. चाँदना आर०सी०:, 'जनसंख्या भूगोल', कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली, १६८७, पृ०-४०

३. दुबे के०के० एण्ड सिंह एम०वी०, 'जनसंख्या भूगोल' रावत पब्लिकेशन, जयपुर, १६६४, पृ० ७६-७७

४. Clark, J.I., 'Population Geography Oxford', New yourk, 1973, P.-29

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

संथालों के विभिन्न प्रकार के देवी-देवता

❑ ब्रह्मनाथ

संथाली भाषा में धर्म शब्द के अर्थ को व्यक्त करने वाला कोई शब्द नहीं है, और अभी कुछ समय पूर्व तक ऐसा भी कोई शब्द नहीं प्रचलित था, जिससे यह पता चलता कि संथाल का अमूक धर्म है, यद्यपि संथाली लोग आदि काल से देवी-देवताओं पर विश्वास करते चले आ रहे हैं और उनके अपने विशिष्ट धार्मिक आचरण भी रहे हैं। इधर संथालों के नेताओं ने अपने धर्म को ''सरना धर्म'' नाम दिया है। इस नाम से कोई नया धर्म नहीं चलाया गया है बल्कि धार्मिक आचरण को केवल नाम दिया गया है।[1]

> संथाली लोग आदि काल से देवी-देवताओं पर विश्वास करते चले आ रहे हैं और उनके अपने विशिष्ट धार्मिक आचरण भी रहे हैं। संथालों का सबसे बड़ा देवता मारांड बुरू है। प्रत्येक गांव में मारांड बुरू तथा अन्य देवताओं के निवास के लिए एक वृक्षों का निकुंज होता है। संथालों के सभी त्योहार सामूहिक होते हैं व्यक्तिगत नहीं। गाँव का नायक (पुजारी) सबकी ओर से व्रत रखता है और पूजा अर्चना करता है। संथालों के त्योहारों में एरोक (धान बुवाई के समय) हरियाह (खेत में फसल लगाने पर), जानपाड़ करमा, सोहराय, सकरात, बाहा या सरहुल आदि प्रमुख त्योहार हैं। संथाल समाज में नृत्य संगीत व मदिरा सेवन आदि के द्वारा पर्व, त्योहारों का आनंद बड़े उल्लासपूर्व मनाते हैं।

प्रत्येक गाँव के संस्थापक का एक स्मारक होता है, जिसे मांझी थान कहते हैं। इनमें कुछ अनगढ़ पत्थर रखे रहते हैं इनमें एक पत्थर उस गाँव के संस्थापक का होता है उसे प्रमुख महत्त्व दिया जाता है और यह समझा जाता है कि उस पत्थर में संस्थापक की आत्मा निवास करती है। अनेक अवसरों पर गाँव के लोग पुरोहित या प्रधान के नेतृत्व में इस स्थान में पूजा करने जाते हैं। इसके अतिरिक्त एक गाँव में रहने वाले एक उप-गोत्र के लोगों से यह आशा की जाती है कि सुखःदुख के अवसरों पर वे एक दूसरे को सहयोग करें। इस व्यवस्था में संथालों में सामुदायिक भावना सुदृढ़ बनी रहती है। **संतालों का** सबसे बड़े देवता मारांड बुरू है। प्रत्येक गाँव में मारांड बुरू तथा अन्य देवताओं के निवास के लिए एक वृक्षों का निकुंज होता है। यह निकुंज उसी समय से पवित्र स्थान घोषित कर दिया जाता है, जिसमें पूर्वजों की आत्माओं का निवास माना जाता है। विभिन्न अवसरों पर गाँव के सब नर-नारी इस स्थान पर संथालों का पवित्र स्थान ''जातर थान'' मांझी थान तथा ''भीतार'' है। जातर थान में साल और महूआ के पेड़ होते हैं। इनके विचार के अनुसार सबसे ऊँचे दो पेड़ पर मारांग बुरू और उनकी स्त्री जाहर बुरू रहते हैं। हर संथाल घर में एक पवित्र स्थान होता है जहाँ पर घर वालों के अतिरिक्त कोई दूसरा व्यक्ति नहीं जा सकता है। उस स्थान पर पुरखों की मृतात्माओं के नाम पर पशुओं और पक्षियों की बलि दी जाती है।[3]

संथाल समाज में ''ठाकुर जी'' को विधाता समझा जाता है, किन्तु उनके नाम पर कोई बलि इसलिए नहीं दी जाती है वह दयालु है। ये लोग ऐसे जीवों को प्रसन्न करने की चेष्टा करते हैं जिनसे इन्हें कष्ट या दुखः पहुँचाने का डर होता है।

संथाल समुदाय का विश्वास है कि सारी परेशानियाँ, बीमारियों की जड़ बोंगा (शैतान प्रेत आत्माओं) से है जिसको प्रसन्न एवं शान्त रखने के उपाय ओझा गुरूओं के नियंत्रण में हैं तभी तो संथाल समुदाय ने ओझा-गुरूओं को मान सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है और उनका हुक्म निर्णय पत्थर की लकीर माना जाता है।

संथालों में ''बोंगा कोड़ा'' ''बौंगा कुड़ी'' का बहुत

❑ शोध अध्येता इतिहास विभाग, तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)

महत्व है, बोंगा कोड़ा संथाल रमणियों को सपने में तंग करता है तो बोंगा कुड़ी संथाल वीरों को अपने पति के रूप में रखना चाहती है जिसका निवास स्थान धरती के गर्भ में तथा पेड़ों पर है। संथाल समुदाय कृत्रिम वर्षा के लिए मेंढ़क और मेढ़की का विवाह भी बहुत धूम-धाम से कराते हैं। संथालों का विश्वास है कि मरने के पश्चात् के पाताल पुरी में पहुँचते हैं जहाँ उन्हें उनके अच्छे कर्म के लिए अच्छा फल तथा बुरे कर्मों के लिए दंड भुगतना पड़ता है।

संथालों के अनुसार इस धरती पर मुख्यतः दो प्रकार के बोंगा (शक्तिशाली आत्मा) होती है। पहली ओड़ाक् बोंगा अर्थात् घर की, दूसरी बाहरे बोंगा अर्थात् घर के बाहर की शक्तिशाली आत्मा।[४]

''बाहरे बोंगा'' विभिन्न प्रकार के होते हैं जैसे सीम-बोंगा, खरई बोंगा (खलिहान का बोंगा), जाहेर ऐरा, गोसाई ऐरा इत्यादि। इन सभी बोंगा में संथाल समुदाय सदैव भयभीत रहता है तथा इन्हें प्रसन्न रखने के लिए ओझा गुरूओं के आदेश पर मुर्गी, बकरी, सुअर, गाय का मांस, शराब पर रूपये खर्च करने के लिए तैयार रहता है। संथाल समुदाय बोंगा को शक्तिशाली आत्मा मानते हैं, अतः इसे प्रसन्न रखने के लिए नियमित पूजा-पाठ करते हैं। बोंगा के नाम पर संथालों का विश्वास है कि बोंगा के नाराज होने से बीमारियाँ महामारियाँ तथा अन्य परेशानियों का संथाल समुदाय को सामना करना पड़ेगा। इसके अलावा कुछ प्रमुख बोंगा निम्नलिखित हैं- रंगोरूजी शिकार करने के पूर्व शिकारी तथा देहरी बाबा रंगो रूजी बोंगा की अराधना करते हैं।[५]

कान्हू-समुदाय का प्रमुख देवता है। जीव जन्तुओं, वनस्पतियों के जीवन मृत्यु पर उनका ही अधिकार है। कान्हू बोंगा को चालू बोंगा या सिंग बोंगा भी कहा जाता है, संथाल सूर्य को ''सिंग चान्दू कहते हैं।''

अस्थायी बोंगा - अकाल एवं अप्राकृतिक ढंग से मृत बालकों की मृत आत्माओं को अस्थायी बोंगा कहते हैं।

नहियर बोंगा - विवाहित महिलाओं के ससुराल से भी बोंगा आते हैं जिन्हें नहियर बोंगा कहते हैं।

किसार बोंगा - इस बोंगा के खुश रहने पर यह जिस घर में रहता है उसे धनी बना देता है तथा क्रोधित होने पर कंगाल बना देता है, उस घर में अकाल मृत्यु होती है।

युद्ध बोंगा - युद्ध में प्रयोग होने वाले अस्त्रों के नाम पर इसका नाम पड़ा है।ये युद्ध में शक्ति एवं विजय दिलाने बाले बोंगा है। भला बोंगा और कपिकर्ण बोंगा का युद्ध काल में विशेष रूप में पूजा अर्चन किया जाता है।

संथाल देव कुल (पेनथेयम) में दो प्रकार के देवता होते हैं- एक उनका समूह होता है जो परिवार और समाज के लिए अच्छे फल लाने वाले होते है और दूसरा वे जो समाज के लिए अपशकुन होते हैं। इन दोनों समूहों के बीच संतुलन बनाए रखना समाज का लक्ष्य होता है, ताकि समाज में कोई रोग या विपत्ति नहीं पड़े। परम्परागत रूप से समाज में दो पुजारी की व्यवस्था है, एक अच्छे देवताओं की पूजा करते हैं उन्हें ''नायके'' कहा जाता है। परन्तु जो बुरे देवताओं को प्रसन्न रखने के लिए पूजा पाठ कराते हैं उसे ''कुड़ाम नायके'' कहा जाता है। कुड़ाम नायके का काम मुख्यतः पूरे देवताओं को संतुष्ट करना होता है, ताकि समाज में किसी प्रकार का कोई विपत्ति नहीं आये।

''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'' के रूप में भारतीय संस्कृति की आधारभूत मान्यता की पृष्ठभूमि में जहाँ हमारे समाज में चंडी, लक्ष्मी, सरस्वती आदि के रूप में शक्ति समृद्धि शिक्षा आदि की ''अधिष्ठात्री देवियों की प्रतिष्ठा है, वहीं आदिवासी समाज में भी किसी न किसी देवी के नाम से कल्याणकारी रूप में नारीत्व का समादर होता आया है।

संथालों का 'जाहेर एरा' 'गोसाई एरा' वैसी ही देवियों में से हैं। संथाल लोगों का धर्म स्थान 'जाहेर एरा के नाम से ही जाहेर थान' कहलाता है। यद्यपि वहाँ अन्यान्य देवता भी संस्थापित रहते हैं।[६]

संथालों के सभी त्योहार सामूहिक होते हैं, व्यक्तिगत नहीं। गाँव का नायक (पुजारी) सबकी ओर से व्रत रखता है और पूजा अर्चना करता है। इसके त्यौहारों के

अलग-अलग समय निर्धारित हैं लेकिन तिथि कोई निश्चित नहीं है। प्रत्येक गाँव वाले अपनी-अपनी सुविधा अनुसार त्योहार मनाते हैं।[७]

संथाल के त्योहारों में एरोक (धान वुनाई के समय) हरियाह (फसल खेत में लगने पर), जानपाड़, करमा, सोहराय, सकरात, बाहा या सरहुल आदि प्रमुख त्योहार हैं।[८]

पर्व-त्योहार : बसुन्धरा के वन पुत्र संथालों के तीज त्योहार भी मन भावन जंगलों, पहाड़ों की तरह ही विभिन्ताओं, रंगीनियों और हरियालियों से भरपूर हैं, नयनाभिराम हैं। सभ्य समाज ने जंगलों, पहाड़ों को उजाड़कर संतालों को एक तरह से बेघर बना दिया है, लेकिन उनके तीज त्योहारों को उनसे अलग नहीं कर पाया। आज भी उनके तीज त्योहारों की एक अलग तथा विशेष पहचान बरकरार है।

संथालों के बीच तीज-त्योहार मनाने के तौर-तरीके उनके स्वच्छन्द, ठोस उमंग, रंग-तरंग, मस्ती से ओत-प्रोत जीने की कला की ओर संकेत करते हैं। ऐसा लगता है कि मानों जंगलों, पहाड़ की जुझाड़ू, कठोर जिन्दगी की दिनचर्या संथालों की शारीरिक और मानसिक दोनों रूपों में थका देती है, एक नीरसता भर देती है, और इसी थकान एवं नीरसता पर विजय पाने, जीवन को मधुर रसों से सजाने के लिए तथा एक नवीन ऊर्जा संचय हेतु संथालों ने तीज-त्योहारों का सहारा लिया। इन तीज-त्योहारों में संथाल समुदाय बाहरी दुनिया से एकदम बेखबर होकर अपनी समस्त गतिविधियाँ स्वयं में तथा अपने समुदाय में केन्द्रित कर देता है। समस्त संथाल समुदाय भोजन, मदिरा, नृत्य-संगीत, पूजा-पाठ और आमोद-प्रमोद में लिप्त हो जाता है।[९]

संथाल मुख्यतः श्रमजीवी होते हैं। उनकी आय का प्रमुख स्त्रोत कृषि है इसलिए आदिवासियों का पर्व-त्योहार भी कृषि कार्यों से संबंधित रहा है चूँकि साल भर व्यस्त रहने से लोग आपस में भली-भाँति मिल नहीं पाते हैं, और न किसी प्रकार के आनन्द का आदान-प्रदान कर सकते हैं, इसलिए पर्व-त्योहार का ही एक ऐसा समय होता है, जिसमें वे मिलकर विचारों का विनिमय करते हैं तथा हर्षोल्लास मनाते हैं और कुछ क्षण के लिए सारी चिन्ताओं से मुक्त होकर नाच-गान में लीन हो जाते हैं। साथ ही इन पर्वों को मनाने से संतालों के बीच सामाजिक संगठन, सांस्कृतिक सुदृढ़ता, धार्मिक एकाग्रता एवं आपसी सद्भावना कायम रहती है। इसका कोई भी पर्व-त्योहार व्यक्तिगत न होकर सामाजिक होता है जिसे करना वे सामूहिक जिम्मेदारी मानते हैं। इस तरह से संथालों में आपसी संगठन काफी दृढ़ रहता है। पूरा गाँव एक परिवार के सदृश्य होता है।

ऐसे तो संथालों के सभी पर्व-त्योहार अपना एक अलग-महत्व रखते हैं, लेकिन इन सभी पर्व-त्योहारों में प्रमुख सोहराय पर्व होता है जिसे एक महान सद्भावना पर्व के रूप में मनाया जाता है। सोहराय जिसे आज भी भाषा में आदिवासी बन्धना भी कहते हैं।[१०]

सोहराय शब्द का मूल रूप सहराय है, जो सहर+आय से मिलकर बना है। यहाँ सहर का अर्थ 'वृद्धि' और 'आय' का अर्थ करना है। अर्थात् जो धन सम्पति तथा मवेशी एवं खुशियों में वृद्धि करे वहीं सहराय है।[११]

कुछ संथाल विद्वानों के मतानुसार 'सहर' के 'स' का अर्थ 'सनाम' (हिन्दी में सभी), 'ह' का होड़ (आदमी) एवं 'र' का रसका (खुशी)। संथाली में पूरा वाक्य इस प्रकार बनता है- 'समान होडाक रसका' अर्थात् जो सभी आदमियों के बीच खुशियाँ प्रदान करता है, वही सोहराय अर्थात् सोहराय पर्व है। सोहराय को लोग 'मराड़ दाई' यानी 'बड़ी बहन' और बंधना यानी सूत्र से बाँधना भी कहते हैं।[१२]

सोहराय पर्व की उत्पत्ति के संबंधों में संथालों के बीच कई लोक कथाएँ प्रचलित हैं जो इस प्रकार है- प्राचीन काल में किसी समय ''दिशापति'' नाम का राजा था, वह नित्य शिकार खेलने जंगल को जाया करता था और किसी न किसी जानवर को मार कर ही लाता था। दिशापति राजा की एक रानी थी, जिसका संबंध जंगल के नाग देवता से था, रानी ने ''राजा'' को जंगल की उस दिशा में जाने से मना कर रखा था, जिस हिस्से में नाग देवता का वास था। एक रोज राजा को जंगल में कोई शिकार नहीं मिला इसलिए वह उसी ओर शिकार

की खोज में निकल पड़ा जिधर जाने से रानी ने उसे मना कर रखा था। वह कुछ दूर गया तो राजा ने फन फैलाये हुए एक बहुत बड़े 'नाग' को देखा उसने नाग को मार दिया और उसके कई टुकड़े करके सिर के हिस्से को उसी जगह जमीन में गाड़ दिया घर लौटकर राजा ने रानी को नाग मारकर उसके सिर को वहीं गाड़ देने की बात बताई यह सुनकर रानी बहुत दुखी हुयी और राजा को मारने का षड़यंत्र रची। उसने राजा से कहा हे राजा जंग में एक ऐसा फूल है जिसका नाम लेने से ही वह मुरझा जाता है क्या आप उस फूल का नाम जानते हैं?

दिशापति राजा जंगल में घूमता रहता था और सभी प्रकार के फूलों का नाम जानता था।[१३] इसलिए उसने कहा मैं उस फूल का नाम नहीं जानता हूँ। बातों ही बातों में रानी ने राजा से शर्त लगायी कि अगर वह उस फूल का नाम नहीं बता सकेंगे तो रानी को उसे जान से मारने का अधिकार प्राप्त होगा और अगर राजा ने उसे फूल का नाम बता दिया तो उसे रानी को मारने का अधिकार होगा। राजा ने शर्त स्वीकार कर ली। फूल का नाम बताने का दिन निश्चत किया गया। राजा की एक बड़ी बहन भी थी जो दूर दराज में ब्याही थी। उसे यह खबर-किसी तरह मिल गयी। वह सोचने लगी कि यदि राजा उस रोज फूल का नाम नहीं बता सकेगा तो रानी उसे जान से मार देगी। वह अपने पति और बाल-बच्चों के साथ अपने छोटे-भाई दिशापति राजा से मिलने के लिए चल पड़ी। रास्ता काफी लम्बा था रास्ते में ही रात हो गयी। उन लोगों ने एक विशाल वट वृक्ष के नीचे रात बिताने का निश्चय किया, राजा की बड़ी बहन को नींद नहीं आ रही थी। उसे अपने भाई के मारे जाने की चिन्ता थी। उस वट-वृक्ष की डाली में गिद्दनी अपने बच्चों के साथ बैठी हुई थी। भूख से गिद्दनी के बच्चे रो रहे थे। वह अपने बच्चों को यह कहकर चुप कर रही थी बेटे दिशापति राजा कल फूल का नाम नहीं बता सकेगा और मारा जायगा। इसलिए मत रोओ। गिद्दनी ने बच्चों ने पूछा- माँ उस फूल का नाम क्या है? जिसका नाम राजा नहीं बता पायेगा? गिद्दनी[१४] ने कहा ''उस फूल का नाम'' ''कारी नागिन डार-वाहा'' है।

गिद्दनी की बात सुनकर उसके बच्चे चुप हो गए। विशाल वट वृक्ष के नीचे राजा की बहन ने गिद्दनी की सारे बातें सुन ली अपने पति एवं बाल-बच्चों को जगाया और राजा के द्वार पहुँच गई, वह खुशी-खुशी अपने भाई दिशापति राजा से मिली और उसे फूल का नाम 'कारी नागिन डार बाहा' बता दिया।

दिशापति राजा ने नाग देवता को मार कर उसका सिर जहाँ पर गाड़ दिया था, दूसरी रोज रानी उस फूल को दरवार में लायी और उस फूल का नाम बताने के लिए राजा से कहा। राजा ने ज्योही उस फूल का नाम ''कारी नागिन डार बाहा'' बताया वह फूल तुरंत मुरझा गया? इस तरह से तरह से राजा की जीत हुयी जिससे राजा बच गया और रानी मारी गयी। इस प्रकार बड़ी बहन ने अपने छोटे-भाई दिशापति राजा की जान बचाई।[१५]

राजा ने अपने बड़ी बहन के सम्मान में राज्य भर में रात को दीपक जलवाये और नाच गान का खुशियाँ मनायी गयीं। कहते हैं तभी से यह पर्व मनाया जाता है। इस पर्व में रात को दीपक जलाया जाता है और भाई अपने बहन को आवश्यक न्योता देता है।

दूसरी कथा के अनुसार पहले लोग खेती वाड़ी नहीं करते थे। मवेशियों के साथ जंगल में ही रहते थे लेकिन खेती करने के लिए जंगली पशुओं को पालतू बनाना आवश्यक था। लोगों ने उन्हें पालतू बनाने का बहुत प्रयास किया लेकिन वे सफल नहीं हुये। किसी तरह पकड़ लाने पर वह पुनः भाग जाते थे। अन्त में लोगों ने 'जाहेर एरा', 'गोसाई एरा', 'मोडेंको-तुरूईको', सिंम बोगा, माराड़ बुरू, पारगाना बोंगा आदि देवताओं से अन्य पशुओं को घर में ला देने के लिए प्रार्थना की। देवताओं ने प्राथनाएँ सुनी जंगल में मवेशी अपने आप लोगों के घर आए तो लोगों ने देवताओं की पूजा की।[१६] रात में दीपक जलाये और नाच-गान कर अपनी खुशियाँ प्रकट कीं। कहते हैं कि लोग तभी से पर्व को मानते हैं। सोहराय पर्व सामान्यतः जनवरी महीने के द्वितीय सप्ताह से प्रारम्भ होता है और १४ जनवरी को

समाप्त होता है। पहले यह पर्व दीपावली के साथ मनाया जाता था। पश्चिम बंगाल तथा झारखंड के कुछ क्षेत्रों में अभी भी यह पर्व दीपावली के साथ ही मनाया जाता है। जनवरी के द्वितीय सप्ताह में ''सोहराय पर्व मनाने के दो कारण बताये जाते हैं। पहला कारण यह है कि दीपावली के समय लोगों के पास अनाज नहीं रहता है धान बगैरह तो खेतों में ही रहता है। इस कारण लोगों में गरीबी रहती है। इस वजह से लोग ठीक ढंग से पर्व नहीं मना पाते थे। दूसरा कारण यह है कि ''होड़हुल'' संथाल विद्रोह के कारण संथाल लोग दीपावली के समय सोहराय पर्व नहीं मना सके। उस समय संथालों पर अंग्रेजों का दमन चक्र चल रहा था। संथाल विद्रोह के बाद ही संथाल परगना जिला का नियोजन हुआ। यह संथालों की बहुत बड़ी जीत थी। इसी जीत की खुशी में संथालों ने अदम्य उत्साह के साथ सोहराय पर्व जनवरी के द्वितीय सप्ताह में मनाये और तभी से यह पर्व जनवरी के द्वितीय सप्ताह में मनाने का प्रचलन बन गया।

सोहराय पर्व पाँच दिनों तक मनाया जाता है। यह स्नान दिवस है। इस दिन गाँव के नायके (पुजारी) स्नानकर 'शोरटाण्डी'' (पूजा मैदान) में गाँव के प्रमुख लोगों के साथ खोंड-खोंड (बेदी) बनाकर 'जाहेर एरा' के नाम से ''धूसरित मुर्गी गोसाई-एरा'' के नाम से चितकबरी मुर्गी ''मराड़ बुरू'' तथा ''सिग बोंगा'' के नाम से एक एक सफेद मुर्गी ''मोडेकोतुरूई को'' के नाम से, मुर्गी ''पारगामा बोंगा'' के नाम से लाल मुर्गी तथा विभिन्न दिशाओं के वन, नदी, नाले, पोखर, तालाब आदि देवताओं के नाम से मुर्गी की बलि चढ़ाते हैं। गाँव टोले के घरों तथा झोपड़ियों में रहने वाले लोगों एवं पर्व में आमंत्रित किये गये मेहमानों की मवेशी, धन-सम्पत्ति एवं खुशियों की वृद्धि के लिए प्रार्थनाएं करता है।[१७]

खोड पर रखी हुई मुर्गी का अंडा पैर से दबाने वाली गाय या बैल के पैरों को पानी से धोया जाता है तथा उसके सिंग पर सिन्दुर और तेल लगाकर उसका तथा चरवाहा का सम्मान किया जाता है। शाम में गाय, बैल आदि की आरती उतारी जाती है। उसकी महिमा का गान किया जाता है उसी रोज रात में घर-घर पुआ पकाया जाता है और सोहराय नाच-गान प्रारंभ हो जाता है।

सोहराय के दूसरे दिन को बोंगा माता (पूजा दिवस) कहा जाता है। उस दिन सवेरे से दो-पहर तक मर्दों का डाण्टा नृत्य 'मांझी थान' के पास होता है। घर के प्रमुख लोग स्नान करते हैं तथा जुआढ़ को भी पानी से धोते हैं। इसके बाद लोग अपने गृह देवता, मरांगबुरू तथा पितरों की पूजा करते हैं। उसके नाम से मुर्गी की बलियाँ चढ़ाते हैं तथा सभी आमंत्रित लोगों के साथ भोजन करते हैं उसके बाद शाम से पुनः सोहराय नृत्य प्रारंभ हो जाता है।

सोहराय के तीसरे दिन को 'खुण्टाक माहा' (बन्धन दिवस) कहा जाता है। इस दिन भी मर्द लोग सबेरे से दो पहर तक मांझी थान के पास डाण्टा नृत्य करते हैं। दोपहर के समय गली में खम्भा गाड़कर बैल या भैसां को रस्सी से बांध दिया जाता है तथा उसके गली में माला के साथ पुआल भी बांध दिया जाता है। निश्चित सीमा के बाहर से बैल या भैंसा को ललकार कर उसके गले की माला छीनते हैं। इसके बाद बैल या भैंसा को खोल दिया जाता है। सभी लोग मांझी थान के पास जमा होकर एक से बारह धवाँ तक की लड़ाई लड़ते हैं। पिता अपने पुत्र को ढाल या लाठी या तलवार देता है तथा स्वयं भी ढाल और लाठी या तलवार लेकर अपने पुत्र से उसके सहारे लड़कर उसकी परीक्षा लेता है कि वह कितना सीख पाया है। यह खेल अब प्रायः लुप्त होता जा रहा है।

सोहराय पर्व के चौथा दिन 'जाले मांहा' (जाले दिवस) कहलाता है। इस दिन सभी एक दूसरे के घरों में नाचते-गाते हुए आते हैं और खाते-पीते हैं। छोटा बड़ा अमीर-गरीब का कोई भेदभाव नहीं रहता है। ईर्ष्या-द्वेष की भावना तनिक भी नहीं रहती है। सारा गाँव भाईचारे के सूत्र में बंधकर नाच-गान में तल्लीन हो जाता है और गाँव के सारे लोग आनन्द सागर में डूबे रहते हैं। **सोहराय पर्व** का पाँचवा दिन हाको कारको मामांहा

(मछली के कड़ा दिवस) कहलाता है। इस रोज लोग गाँव के पासवाली नदी तालाब में मछली पकड़ने जाते है और उसे पकाकर खाते हैं। उस दिन भी शाम तक नाच-गान होता है। उसके बाद सोहराय पर्व समाप्त हो जाता है। **इस प्रकार** सोहराय पर्व हर्ष और उल्लास का पर्व है। यह मनुष्य का पर्व तो है ही, साथ ही साथ गाय-बैल तथा भैंस-भैंसा के साथ उतना ही आनन्द से नाचते हैं, जितना की आदमी के साथ, इसलिए सोहराय सद्‌भावना और प्रेम का महान पर्व है।

बाहा : संतालों का दूसरा महत्वपूर्ण त्योहार बाहा है। ''बाहा'' फूलों का त्योहार है।[१८] और इसे वसंत-काल में मनाया जाता है लेकिन इसकी कोई निश्चित तिथि नहीं होती है। तिथि का निर्णय ग्रामीण पंचायत में सर्व सम्मति से किया जाता है, बाहा त्योहार में होली की एक झलक मिलती है। संथाल लोग होली की तरह ही बाहा पानी से खेलते हैं लेकिन रंग का प्रयोग नहीं करते हैं।

सर्वप्रथम प्रत्येक संथाल गाँव का नायके बाबा ''जाहेर थान'' में पूजा करता है। साल पेड़ों से फूल तोड़ता है इसके बाद नायके बाबा सभी लड़के, लड़कियों को फूल भेंट करता है। यह क्रिया सम्पन्न होने पर सभी ग्रामीण पानी से होली की तरह खेलना प्रारंभ करते हैं। यहाँ एक मजेदार बात यहा है कि जो व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को पानी से भिंगोता है वह भींगने वाले व्यक्ति को अपने घर ले जाकर मदिरा से सत्कार करता है। यह खेल शाम तक चलता है। सूर्यास्त के पश्चात्‌ सभी ग्रामीण नृत्य संगीत में मग्न हो जाते हैं।[१९] बाहा त्योहार सिर्फ एक दिन मनाया जाता है।प्राचीन समय में नयके बाबा के पीछे-पीछे संथाली महिलाएँ नृत्य-संगीत करते हुए जाती थीं, लेकिन आजकल यह रिवाज बहुत कम हो गया। पता (पाता) संथाल समाज का पता भी एक महत्त्वपूर्ण पर्व है, यह पर्व चैत और वैशाख के मध्य स्थल पर मनाया जाता है। चैत पूर्णिमा से एक सप्ताह पूर्व से ही इस पर्व के पुजारी के बारे में यह कल्पना की जाती है कि इसके शरीर में मरांड बुरू का प्रवेश हो चुका है। यह पर्व एक प्रकार से भक्तों का पर्व माना जा सकता है। इस पर्व में प्रधान भक्त अपने साथ के पचास-साठ लोगों को भक्ति की शिक्षा भी देता है और एक प्रकार से उन्हें भक्त भी बनाया है, यह एक ऐसा पर्व है जिसमें पूरी तरह बलिदान का निषेध है।

संथालों के अन्य पर्वों में 'एराक' भी एक महत्वपूर्ण पर्व है।[२०] जाहेर थान नायके के नेतृत्व में शेष वर्ष में किसी भी प्रकार का उपद्रव या विलम्ब न हो इस निमित्त ईश्वर से प्रार्थना की जाती है। एरोक की आस्तिकता से संथाल कृषि के महत्त्व को अपने-अपने सामाजिक जीवन में अक्षुण बनाये रखने तथा उसकी महत्ता सिद्ध करने के उद्देश्य से पचारी पर्व भी मनाते हैं जिसमें बैलों का श्रृंगार किया जाता है तथा भूमि की पूजा की जाती है। खेतों में धान की फसल की हरीतिमा से प्रसन्न होकर संथाल सावन, भादों के बीच हरियार पर्व मनाता है। अब इसमें जो प्रार्थना की जाती है उसमें कोई व्यक्ति मात्र अपने या अपने परिवार के कल्याण की बात नहीं करता बल्कि ईश्वर से समस्त ग्रामवासियों की फसल की रक्षा हेतु ईश्वर से वंदना की जाती है। इसी प्रकार खेतों में धान जब पक जाते हैं तो उसे काटने के पूर्व भी संथाल जान्थार नामक पर्व अत्यन्त उत्साह से मनाते हैं।[२१] इस पर्व के साथ संथाल समाज में एक ऐसा विश्वास फैला हुआ है जिसे दूसरी भाषा में अन्ध-विश्वास भी कह सकते हैं। गाँव के सभी ग्रामवासियों को अधिक से अधिक उपज मिल सके इस भावना की प्रार्थना करते हुए यदि कहीं नायके का ध्यान दूसरी तरफ चला गया तो इसे संथाल उस वर्ष की फसल के लिए शुभ नहीं मानते और जब खलिहान की लक्ष्मी सुरक्षित रूप से घर चली आती है तो संथाल आनन्द विभोर हो उठते हैं। परन्तु किसी ने अधिक फसल उगायी है इसका तनिक भी अहंकार उन्हें नहीं रहता। संथाल अपनी फसल को ईश्वर का आशीर्वाद मानता है अतः नये अन्न जो स्वयं अपने उपयोग में लाने के पूर्व वह सर्वप्रथम ईश्वर को ही नया अन्न पका कर भेंट करता है और उसका प्रसाद टोले-मोहल्ले से लेकर गाँव के प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचाता है इसे बोल-चाल की भाषा में ''नबान'' के नाम से जाना जाता है वैसे संथालों में इसके लिए ''नवाय'' है। यह नवाय पर्व वर्ष में दोबार

मनाया जाता है - प्रथम भादों में दूसरा अगहन में। संभवतः वर्ष में दो बार मनाने की परिकल्पना आदिवासियों में खरीक एवं रवी फसलों की उपलब्धि की दृष्टि से ही की गयी है। यह पर्व पारिवारिक स्तर पर भी मनाया जाता है एवं सामूहिक रूप से ग्रामीण स्तर पर भी।

संथाल परम्परागत रूप में सामूहिक सुख संतोष के अग्रही होते हैं। समाज के सभी व्यक्ति सम्पन्न होने की कामना करते हैं, किन्तु व्यवहार में ऐसा संभव नहीं होता। कुछ ऐसे लोग या परिवार होते हैं जो अभाव की जिन्दगी व्यतीत करने को विवश होते हैं ऐसे ही असहाय लोगों के लिए संथाल समाज में एक अति महत्त्वपूर्ण पर्व मनाया जाता है जिसे 'कराम' अथवा 'काराम' कहते हैं। वस्तुतः कराम शब्द 'कर्म' से निःसृत हुआ है। इसके पीछे का दृष्टिकोण यह है कि यदि हम अच्छे कर्म करेंगे तो ईश्वर हमें कभी कष्ट का अनुभव नहीं होने देगा। एक दूसरे के प्रति त्याग, समर्पण, स्नेह एवं सौहार्द रखना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है। मनुष्य होने के कारण मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के क्षेत्र में प्रत्येक मनुष्य का थोड़ा बहुत स्वार्थी होने के कारण दूसरे व्यक्तियों की सुविधा का ख्याल रखना भी आवश्यक है। यही मानवीय आधार है यह निश्चित रूप से बिना अपने स्वार्थ को परमार्थ में बदलने से नहीं हो सकता। इसी दृष्टि से संताल समाज के पूर्वजों ने कर्म एवं धर्म की प्रधानता[२२] स्थापित करने के उद्देश्यों से इस कराम जैसे पवित्र पर्व का श्री गणेश किया होगा।

जान्थाड़ : जान्थाड़ त्योहार भी कृषि से संबंधित है तथा धान पकने के पश्चात् कटाई के पहले मनाया जाता है। गाँव का नायके बाबा मौजा की सीमा पर स्थित धान के खेत में कुछ वालों को काटता है तथा जाहेर थान में ठाकुरजी को अर्पित करता है इसके पश्चात् धान की कटाई प्रारंभ हो जाती है। यह रस्म शीघ्र पकने वाले धान फसलों के लिए किया जाता है जबकि बेहाल धान (देर से पकने वाले धान की फसल) पकने पर नायके बाबा धान के कुछ वालों को जाहेर थान में अर्पित करते हैं। यहाँ सभी संथाल ग्रामीण कृषक मिलकर एक सुअर ठाकुर जी को अर्पित करते हैं। अपने-अपने धार्मिक रिवाज के अनुसार पूजा करते हैं। सुअर का मांस सभी ग्रामीण परिवारों के मध्य बांट लिया जाता है। इस दिन के पश्चात् से धान कटनी आरंभ जा जाती है। इस अवसर पर नृत्य-संगीत का आयोजन नहीं होता है, लेकिन मदिरा का आनन्द उठाया जाता है।

दसई : दसई त्योहार दुर्गा पूजा के पाँच दिन पहले से प्रारंभ होता है तथा दुर्गा पूजा के दिन समाप्त होता है। इस अवसर पर समस्त संथाल नवयुवक धोती पहनकर सिर पर पगढ़ी बाँधकर पगड़ी में मोर का पंख खोसकर, मोर का पंख हाथ में लेकर नगड़ी-नागड़ा, मांदर की थाप पर नाचते गाते हैं। प्रत्येक समूह का एक सरदार भी होता है। सर्वप्रथम इन रंगीले सजीले संथाल नवयुवकों का झुण्ड अपने गाँव में ही घर-घर जाकर नाचते गाते हैं तथा प्रत्येक घर से मकई एकत्रित करते हैं। पश्चात् ये दूसरे गाँव, कस्बों में नाचते गाते चले जाते हैं और प्रत्येक घर से मकई भी एकत्रित करते हैं।[२३]

इस प्रकार पाँच दिनों तक नृत्य-संगीत में गोते लगाते रहते हैं और अंत में एकत्रित मकई को बेचकर प्राप्त रूपया को परस्पर बंटवारा कर लेते हैं। कभी-कभी ये सुअर भी खरीदते हैं तथा मांस का ही बंटवारा करते हैं। मांस मदिरा के सेवन के पश्चात् समीप वर्ती कस्बों में दुर्गा मेला का आनन्द लेने पहुँच जाते हैं।

सन्दर्भ

१. शर्मा राजीव लोचन, 'जनजातीय जीवन और संस्कृति', सहचारी प्रकाशन, कानपुर, १६६७, पृ० १६७
२. वही, पृ० १६८
३. अहमद जियाउद्दीन, 'बिहार के आदिवासी', जानकी प्रकाशन, पटना पृ० ११७
४. सिंह सत्येन्द्र कुमार, 'संथाल जीवन और संस्कृति', एग्रेरियन एसिस्टेन्स एसोसियेशन, दुमका, बिहार, २०००, पृ० ३०
५. वही, पृ० ३१
६. समीर डोमन साहू, 'आदिवासी समाज में महिलाओं की स्थिति', परिक्रमा प्रकाशन, देवघर १६६८ पृ० १०५
७. साहू चतुर्भुज, 'झारखंड की जनजातियाँ', के० के० पब्लिकेशन, इलाहाबाद, २००७, पृ० ४६
८. वही, पृ० ५०
६. सिंह सत्येन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ० २१
१०. हाँसदा प्रमोदिनी, 'हिन्दी साहित्य का तुलनात्मक विश्लेषण', जानकी प्रकाशन, पटना, नई दिल्ली २००६, पृ० २८
११. मुर्मू सोबान, 'सद्भावना का पर्व सोहराय', स्मारिका, जनजातीय हिजला मेला, सूचना एवं जनसंपर्क विभाग १६६१ पृ० २८
१२. वही, पृ० २८
१३. वही, पृ० २६
१४. वही, पृ० २२
१५. वही, पृ० २२
१६. वही, पृ० २३
१७. वही, पृ० २४
१८. अहमद जियाउद्दीन, पूर्वोक्त, पृ० ११७
१६. सिंह सत्येन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ० २५
२०. संताल परगना जिला गजेटियट, पटना १६३८, पृ० ६१८
२१. वही, पृ० ६१६
२२. हाँसदा प्रमोदिनी, पूर्वोक्त, पृ० ३१
२३. सिंह सत्येन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ० २६

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 20 अंक 1, जनवरी-जून 2018
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

जनपद बिजनौर में लघु उद्योगों का विकासक्रमः एक अध्ययन

❑ डॉ० भुवनेश कुमारी

जनपद बिजनौर भौगोलिक दृष्टि से पश्चिमी रूहेलखण्ड का भाग है जो गंगा व रामगंगा दोआब में स्थित है। अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण यह जनपद प्राचीन काल से ही ख्याति प्राप्त रहा है। इसे पांचाल के नाम से भी जानते हैं। यहाँ मुगल साम्राज्य के समय से लेकर ब्रिटिश शासन काल तक अनेक प्रकार के कुटीर उद्योग ग्रामीण क्षेत्रों में परम्परागत रूप से प्रचलित थे। प्रस्तुत आलेख के अंतर्गत जनपद बिजनौर के उद्योगों का स्वतंत्रता से पहले व बाद के औद्योगिक विकासक्रम का अध्ययन किया गया है।

मानव का जैसे जैसे विकास होता गया उघमशीलता भी विकास के साथ उसकी प्रवृति में समाहित होती गयी। उद्यमशीलता के गुण, स्थान, परिवेश एवं परिस्थिति के अनुसार विकसित होते हैं। भारत के सन्दर्भ में यह बात अक्षरशः लागू होती है। भारत में ऐतिहासिक साक्ष्यों का अध्ययन करें तो स्पष्ट होता है कि बहुत से क्षेत्र अपनी तकनीकी दक्षता, आर्थिक संगठन एवं औद्योगिक श्रेष्ठता के लिए विश्व विख्यात रहे हैं। भारतीय शिल्पियों की कलात्मक दक्षता विश्व प्रसिद्व थी। विभिन्न प्रकार की कलात्मक वस्तुएं यथा तांबे एवं पीतल की वस्तुएं, हड्डी एवं सींग से निर्मित वस्तुएं, मिट्टी का सामान, पत्थर की तराशी, लकड़ी की नक्काशी, सोने चांदी के आभूषण, जरी का काम, पेंटिग चित्रकला, मलमल एवं काँच का सामान आदि जो भारतीय शिल्पकारों एवं दस्तकारों द्वारा बनाया जाता था, अपनी सुन्दरता के कारण विश्व के बाजारों में अपना स्थान बना चुकी थी। अनेक ग्रन्थों, ऐतिहासिक दस्तावेजों, विदेशी यात्रियों द्वारा वर्णित संस्मरणों में इनके स्पष्ट प्रमाण हैं। ब्रिटिश शासनकाल के पूर्व मध्य युग, जो मुगलों का शासनकाल रहा, में ही भारतीय औद्योगिक संरचना में नगरीय एवं ग्रामीण उद्योगों का विकास हो चुका था अर्थात उस समय स्थानीय मांग पर आधारित उद्योगों जैसे युद्वकला में प्रयुक्त हथियार, शिल्पी वस्तुएं, सूती कपड़ा, बर्तन, लकड़ी लोहे एवं चमड़े की वस्तुएं, सोने चांदी के आभूषण निर्माण आदि का विकास हो चुका था जिसमें प्रमुखता के साथ स्थानीय रूप से प्राप्त कच्चे माल का प्रयोग किया जाता था। उस समय जो वस्तुएं बनायी जाती थीं उनमें परम्परागत तकनीक का प्रयोग किया जाता था।

अध्ययन क्षेत्र : जनपद बिजनौर भौगोलिक दृष्टि से पश्चिमी रूहेलखण्ड का भाग है जो गंगा व रामगंगा दोआब में स्थित है। अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण यह जनपद प्राचीनकाल से ही ख्याति प्राप्त रहा है। इसे पांचाल के नाम से भी जानते हैं। यहॉ मुगल साम्राज्य के समय से लेकर ब्रिटिश शासन काल तक अनेक प्रकार के कुटीर उद्योग ग्रामीण क्षेत्रों में परम्परागत रूप से प्रचलित थे। मुगल काल में यह जनपद विभिन्न राजपूत राजाओं की शरणस्थली रहा। लेकिन मुगलिया सल्तनत को और अधिक विस्तार देने तथा कुछ राजपूत राजाओं से व्यक्तिगत द्वेष के कारण यहॉ मुगल शासकों के राजपूत राजाओं से युद्व हुए।उस समय मुगल सेना की शस्त्रपूर्ति, उनकी वर्दी व अन्य सामानों की पूर्ति हेतु इन कार्यो से सम्बन्धित शिल्पी दस्तकार व कारीगर सेना के साथ. साथ चलते थे तथा मुगल सेना ने इस क्षेत्र से राजपूत राजाओं को गढ़वाल एवं कुमांऊ में ऊँचे दुर्गम पहाड़ी क्षेत्रों में खदेड़ दिया तो यह मैदानी उपजाऊ सुरक्षित क्षेत्र मुगलों के अधीन हो गया और रामगंगा के दोआब क्षेत्र में रहकर यह शिल्पी एवं दस्तकार सेना एवं राजाओं की आवश्यकता पूर्ति स्थानीय संसाधनों के आधार पर करने लगे। यहॉ से शुरू हुआ कुटीर एवं हस्तशिल्प व

❑ भूगोल विभाग, आर० एल० एस० एम० डिग्री कालेज जसपुर, उधम सिंह नगर, (उत्तराखण्ड)

लघु उद्योग का विकासक्रम। ऐतिहासिक तथ्यों से इनके साक्ष्य मिलते हैं जिनके उदाहरण नगीना व पुरैनी में लकड़ी की नक्काशी, नजीबाबाद में लोहे का सामान, धामपुर में लोहे के बर्तन एवं शस्त्र आदि के रूप देखने को मिलते हैं। अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्त तक यहाँ एक सन्तुलित आर्थिक स्वरूप का गठन हो चुका था, क्योंकि एक ओर तो अच्छी प्रकार से विकसित कृषि व्यवस्था थी तो दूसरी और क्रमबद्ध रूप में हस्तशिल्प उघोग थे।[१] ग्रामीण क्षेत्रों के अतिरिक्त नगरीय क्षेत्रों यथा नजीबाबाद, नगीना, धामपुर, बिजनौर, मण्डावर, नहटौर, कोतवाली आदि क्षेत्रों में उत्पादित हस्तशिल्प वस्तुएं न केवल इस क्षेत्र एवं देश में ही अपितु विदेशों में भी प्रसिद्ध थीं। १८ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से पूर्व ही ब्रिटिश शासन ने अपनी जड़ें पूरे देश में जमा लीं और यहाँ का शासन ब्रिटिश क्राउन को हस्तान्तरित हो गया। १६ वीं शती के अन्त तक परम्परागत एवं हस्तशिल्प उद्योगों के दृष्टिकोण से न केवल जनपद बिजनौर अपितु सम्पूर्ण रूहेलखण्ड क्षेत्र प्रसिद्ध क्षेत्र बना रहा। इस समय ब्रिटिश शासन हस्तशिल्प एवं कलात्मक वस्तुओं के प्रशंसक एवं इस कला में प्रश्रयदाता के रूप में रहे। परन्तु २० वीं शती के प्रारंभिक वर्षों में आधुनिक संगठित उद्योगों का शुभारम्भ हुआ। विभिन्न प्रकार की भौगौलिक सुविधाओं में वृद्धि के कारण पश्चिमी रूहेलखण्ड के सभी क्षेत्रों में पर्याप्त विकास होने लगा। ब्रिटिश शासक भारत को कच्चे माल के स्रोत एवं उपभोक्ता बाजार के रूप में प्रयोग करने लगे। परिणामतः यहाँ मिलों की स्थापना होने लगी जिसका प्रभाव इस क्षेत्र के कारीगरों एवं हस्तशिल्पियों पर पड़ने लगा। यहीं से शुरू हुआ जनपद बिजनौर में लघु उघोगों का विकासक्रम। इसलिए इस क्षेत्र को अध्ययन हेतु चुना गया है।

अध्ययन क्षेत्र का विकास स्वरूप- प्रस्तुत आलेख के अंतर्गत जनपद बिजनौर के उद्योगों का स्वतंत्रता से पहले व बाद के औद्योगिक विकासक्रम का अध्ययन किया गया है।

अ- स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व की औद्योगिक दशाएँ : स्वतंत्रता से पूर्व न केवल जनपद बिजनौर में अपितु सम्पूर्ण पश्चिमी रूहेलखण्ड में औद्योगिक विकास की गति मन्द थी तथा औद्योगिक संगठन में परम्परागत हस्तशिल्प व कुटीर उद्योगों की प्रधानता थी सभी प्रकार के उद्योगों के विकास एवं स्थापना का मुख्य आधार कृषिगत कच्चे माल एवं स्थानीय बाजार ही था। यद्यपि १६०० के बाद उद्योगों के स्वरूप, आकार, प्रकार एवं संगठन आदि में पर्याप्त अन्तर आ चुका था। किन्तु फिर भी जनपद बिजनौर में कुछ नगरीय क्षेत्रों के अतिरिक्त अन्यत्र औद्योगिक परिदृश्य विकसित नहीं हो पाया था जनपद बिजनौर में स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व के औद्योगिक स्वरूपों को दो भागों विभाजित कर विश्लेषित किया जा सकता है

क निम्नस्तरीय उद्योग- जनपद बिजनौर में २०वीं शताब्दी के आरम्भ तक निम्न उद्योगों की प्रधानता थी अर्थात यहॉ दो प्रकार के उघोग प्रचलित थे।

प्रथम- ग्रामीण दस्तकारी उद्योग जो कृषि के साथ सामुदायिक सम्बन्धों की व्यवस्था से जुडें थे

द्वितीय- नगरीय हस्तशिल्प उधोग- जहॉ शिल्पी या तो अपने घरों में वस्तुएं बनाते थे या छोटे-छोटे कारखानों में कार्य करते थे। उस समय लघु उघोग कारखानों में चलाए जाते थे।ये कारखाने बड़े बड़े हॉल होते थे जहाँ दस्तकार या शिल्पी सुबह से शाम तक निरन्तर काम करते थे। कारखानों का संचालन राज्य प्रशासन, व्यापारियों तथा स्वयं हस्तशिलपियों द्वारा होता था। राज्यों के अधीन कार्य कर रहे कारखानों में श्रमिकों की संख्या अधिक होने के कारण उत्पादन में उपर्युक्त कारखानों का विशेष एवं प्रभावी योगदान था।[२] दस्तकार पीढ़ी दर पीढ़ी अपने पुश्तैनी व्यवसाय में दक्षता प्राप्त करते थे जिसके कारण उच्च कोटि का उत्पादन होता था। किन्तु फिर भी इन उघोगों में श्रम विभाजन अति निम्न स्तर पर था जिसके कारण उत्पादन क्षमता अपेक्षाकृत कम थी।

निम्नस्तरीय उद्योंगों पर ब्रिटिश उपनिवेशी प्रभुत्व का प्रभाव- भारत के अन्य क्षेत्रों के समान जनपद बिजनौर में निम्नस्तरीय उद्योगों पर ब्रिटिश उपनिवेशी प्रभुत्व का परस्पर विरोधी प्रभाव पड़ा। विदेशी व्यापार के एकाधिकार, ब्रिटेन में अनेक प्रकार के भारतीय माल के

आयात पर प्रतिबंधात्मक प्रशुल्क, विदेशी बाजारों से सम्बन्ध विच्छेद, देशी सामन्तों राजाओं की समाप्ति,भोग विलास की तथा उच्च कोटि की वस्तुओं, सैन्य उपकरणों की मांग में कमी, परिवहन साधनों के विकास के कारण विदेशी माल के आयात, आधुनिक कारखानों की स्थापना तथा उपनिवेशी सरकार की उपेक्षापूर्ण नीतियों आदि के कारण दस्तकारी उघोग को भारी आघात पहुँचा।फलतः ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित हथकरघा वस्त्र गुड़ एवं शक्कर उद्योग का पतन प्रारम्भ हो गया। विदेशी वस्तुओं के ऊँचे मूल्य, पूँजी निर्माण की न्यूनतम दशाएं, सामान्य नागरिकों विशेषतः ग्रामीणों की न्यूनतम क्रय क्षमता, सरकारी शोषण आदि के कारण आधुनिक वस्तुओं में वृद्धि नही हो पायी। फलतः आम व्यक्ति स्वदेशी एवं परम्परागत तकनीक द्वारा उत्पादित वस्तुओं का ही प्रयोग करता रहा। उत्पादन शक्तियों के विकास की मन्दगति तथा जनसंख्या वृद्धि ने बेरोजगारी की समस्या को उत्पन्न कर दिया, जिससे न्यूनतम वेतन पर भी अधिकतम श्रम आपूर्ति विधिवत बनी रही । परिणामस्वरूप छोटे उत्पादक व हस्तशिल्पी अपने पुश्तैनी व्यवसाय में ही लगे रहे। अतः इस प्रकार की परिस्थितियों में जनपद बिजनौर में हथकरघा वस्त्र व्यवसाय, कृषि उपकरण, चमड़ा जूता उद्योग तथा दैनिक उपभोग की वस्तुओं के निर्माण वाले कुटीर उद्योगों का धीमी गति से विकास होता रहा। इस प्रकार सिक्के के दूसरे पहलू को देखें तो यहॉ ब्रिटिश उपनिवेशी प्रभुत्व का औद्योगिक विकास पर अनुकूल प्रभाव भी परिलक्षित होता है। यद्यपि पूर्व की तुलना में वस्तुओं का उत्पादन कम हो गया, साथ ही उनके स्तर में गिरावट भी आने लगी, परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति तक निम्न वर्गो के लिए आवश्यक वस्तुओं जैसे मोटा कपड़ा, सस्ता जूता, मिटटी के बर्तन तथा अन्य सामान की आपूर्ति निम्न स्तरीय उद्योगों द्वारा ही की जाती रही।मशीनों एवं तकनीक विज्ञान पर विदेशी प्रभुत्व, मशीनों के ऊँचे मूल्यों, बैंक से ऋण प्राप्ति का अभाव जोखिम की अधिकता के कारण लघु उद्यमी आंशिक लाभ के लिए निम्न स्तरीय उद्योगों में ही पूंजी लगाने के इच्छुक थे। क्योंकि स्थानीय बाजारोंमें वस्तुओं की मांग में उतार चढ़ाव के साथ इस प्रकार के उद्यमी उत्पादन में परिवर्तनशीलता ला सकते थे इस प्रकार के उद्योग कर मुक्त थे। लेकिन श्रमिकों के संगठन का अभाव होने के कारण कारीगरों का शोषण अधिक होता था। विदेशी व स्वदेशी स्पर्धा के कारण ये उद्योग अधिक प्रभावित हुए।

प्रायः ऐसे उद्योगों पर अधिक प्रभाव देखा गया जिनमें उत्पादनशीलता बहुत कम थी तथा उत्पादित वस्तुओं का स्तर निम्न कोटि का था। अतः हथकरघा वस्त्र उद्योग शक्कर उद्योग पर व्यापक प्रभाव पड़ा। परन्तु इसके विपरीत जनपद बिजनौर में प्रचलित उद्योग यथा-लौहारी, बढ़ईगिरी, चमड़ा कमाना, कुम्हारी उद्योग आदि पर आंशिक प्रभाव पड़ा, क्योंकि इस प्रकार के उद्योग एवं दस्तकारी उद्योगों का रूपान्तरण होने लगा। स्थानीय मांग में वृद्धि, परिवहन व्यवस्था में सुधार, बाजार के विस्तार, तकनीकी स्तर में उन्नति व वस्तुओं की गुणवत्ता में सुधार आदि के कारण लघु उद्योगों का पुर्नजन्म हुआ। स्थानीय मांग के अनुसार जनपद बिजनौर में कृषि आधारित लघुउद्योग खाण्डसारी, गुड़, चीनी, खाद्यतेल, कॉंच व सूती वस्त्रों से सम्बन्धित इकाइयॉ स्थापित होने लगीं। १६०० से १६५० के मध्य जहॉ एक ओर परम्परागत हस्तशिल्प उद्योगों में अवनति हुई वहीं लघु एवं कुटीर उद्योगों में आंशिक सुधार हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व जनपद बिजनौर में परम्परागत उद्योगों का स्वरूप निम्नवत था-

१. वस्त्र उद्योग : स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व निम्न उद्योगों में वस्त्र उद्योग का स्थान जनपद बिजनौर में सर्वोपरि था जिसमें सूती वस्त्र व्यवसाय ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों में समान रूप से प्रचलित था। क्षेत्रीय स्तर पर हजारों परिवार इस कार्य में संलग्न थे।जनपद बिजनौर में १६०१ में ६६ हजार परिवार हथकरघा वस्त्र उद्योग में कार्यरत थे।[३] इस व्यवसाय में कार्य करने वाले कारीगरों का ८५ प्रतिशत भाग जुलाहा वर्ग से था। जनपद बिजनौर के नगीना, नजीबाबाद, चॉदपुर, सहसपुर, धामपुर, नहटौर, गंज उस समय गाठा, गज्जी, गवरून धोती, चादरें व तौलिया निर्माण के लिए जाने जाते

थे।चॉदपुर चौताई निर्माण के लिए प्रसिद्ध था। इसके अलावा नहटौर, कल्याणपुर वस्त्रों की रंगाई व छपाई के लिए, नगीना पट्टीदार वस्त्रों के लिए, नजीबाबाद कम्बल निर्माण के लिए अपनी पहचान बना चुका था। इस प्रकार इस क्षेत्र में निम्न स्तरीय उद्योगों में निर्मित वस्त्र सुन्दर कोमल व मूल्यवान थे। जनपद बिजनौर में हथकरघा वस्त्रों की गुणवत्ता एवं उत्कृष्टता का अनुमान १८६७ में अफजलगढ़ मे निर्मित हथकरघा वस्त्रों को आगरा की प्रदर्शिनी में मिले प्रथम पुरूस्कार से लगाया जा सकता है।[४]

२. खाण्डसारी एवं गुड़ उद्योग : अध्ययन क्षेत्र कृषि प्रधान क्षेत्र है।यहॉ कृषकों द्वारा गन्ना को प्राथमिकता के साथ उत्पादित किया जाता रहा है। स्थानीय स्तर पर गन्ना उत्पादन एवं गुड़ की मांग ने २० वीं शती के प्रारम्भ में ही इस क्षेत्र को खाण्डसारी एवं गुड़ उद्योग में अति विशिष्ट स्थिति प्रदान कर दी थी। जनपद बिजनौर गुड़ व शक्कर उत्पादन में उत्तर प्रदेश में गोरखपुर के बाद दूसरे स्थान पर था जहॉं १६०८ में ३४७७ श्रमिक प्रत्यक्षतः इस उद्योग में संलग्न थे।[५] खाण्ड एवं गुड़ प्रक्रिया आसान थी परन्तु उत्पादन की गुणवत्ता कुशलश्रम पर निर्भर करती थी। अधिकांश कृषक अपने द्वारा उत्पादित गन्ने को या तो रसयुक्त रूप में ही अथवा लोहे के कोल्हुओं में पिराई के रूप में खाण्डसारी निर्माताओं को बेच देते थे।

३. पीतल एवं तॉबा उद्योग : धातु निर्माण उद्योग में पीतल एवं तांबे के बर्तनों का विशेष स्थान है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व पीतल एवं तॉबे के बर्तनों का प्रयोग होता था। क्योंकि उस समय एल्यूमिनियम व स्टील प्रचलन में नहीं था। जनपद बिजनौर में निर्मित पीतल के बर्तन एशट्रे, प्लेट्स, कटोरियॉं, फूलदान, मोमबत्ती स्टैण्ड, हुक्के, देवी देवताओं की मूर्तियॉ आदि कलात्मक वस्तुएं मुरादाबाद के निर्यातकों को बेची जाती थीं और यहॉ से देश विदेश को इन वस्तुओं का निर्यात किया जाता था। कारीगरों में मुसलमानों की प्रधानता थी जो इन कार्यों में पूर्ण रूप से निपुण थे। कच्चे माल की आपूर्ति जगादरी व मुरादाबाद मिलों से पीतल की चादरों को आयात करके तथा स्थानीय स्तर पर एकत्रित की गयी कतरनों को गलाकर की जाती थी।[७] जनपद बिजनौर में पीतल व तॉंबा उद्योग के प्रमुख केन्द्र नजीबाबाद व धामपुर थे।

४. लकड़ी की नक्काशी एवं उससे सम्बन्धित उत्पाद : आजादी से पूर्व कृषि प्रधान क्षेत्रों में लकड़ी के सामान यथा हल, बैलगाड़ी, कुदाल, फावड़ा, खुर्पी, दरांत आदि का विशेष स्थान था। इसके अतिरिक्त दरवाजे, चौखट, अलमारी, लकड़ी के सन्दूक, आभूषण, एशट्रे, चकला बेलन आदि का प्रयोग यहॉ के कुशल कारीगरों के द्वारा किया जाता था। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व नगीना व नजीबाबाद से पंजाब को उच्च कोटि की बैलगाडियां भेजी जाती थीं। नगीना की आबनूस की कंघियों तथा लकड़ी की नक्काशी के लिए देश विदेश में प्रसिद्व था।नगीना में निर्मित लकड़ी का सामान ग्लासगो, पेरिस व लन्दन में पसन्द किया जाता था जहॉं नगीना के सामान को पुरूस्कार भी मिल चुका था।[८]

५. मिट्टी के बर्तन व अन्य उद्योग : चॉदपुर एवं नजीबाबाद मिट्टी के बर्तन बनाने के लिए विख्यात रहा है।यहॉ ग्वालचना मिट्टी से निर्मित सुन्दर रंगों से सुसज्जित सुराही, कप, प्लेट देशभर में प्रसिद्व थे। नजीबाबाद की सुराही ब्रिटिश शासकों द्वारा पसन्द की जाती थी। जनपद बिजनौर में वर्तमान में यह उद्योग जीविकोपार्ज्रन तक सीमित तथा जर्जर अवस्था में है।जनपद बिजनौर में अन्य उद्योग भी अस्तित्व में थे टोपी पर कढाई, कांच के उत्पाद, शीशियॉं, ग्लास, चाकू, छुरियॉं, आभूषण निर्माण, रस्सी बान व चटाई की टोकरियॉं आदि। नदियों के खादर क्षेत्रों में रस्सी बान व चटाई निर्माण उद्योग प्रचलित थे जो ग्रामीणों की आय का स्रोत भी थे और आज भी है।

ख. संगठित उद्योग : जनपद बिजनौर में संगठित उद्योगों का जन्म व विकास स्वतंत्रता से पूर्व औपनिवेशक काल में हो चुका था। लेकिन विदेशी नीतियों से यह प्रभावित रहा। देश के अन्य क्षेत्रों की भॉंति जनपद बिजनौर के औधोगिक विकास पर विदेशी शासकों की नीतियों, विदेशी व स्वदेशी पूँजी के अंशदान उत्पादन की

संरचना तथा मंडियों की दशाओं का व्यापक प्रभाव पड़ा है। भारत में उद्योगों को विकसित करने हेतु प्रथम प्रयास ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन काल में किया जा चुका था ताकि अनुकूल व्यापार सन्तुलन कर अधिक लाभ अर्जित किया जा सके। लेकिन अध्ययन क्षेत्र में कम्पनी द्वारा इस प्रकार का कोई प्रयास नहीं किया गया।इसके लिए जनपद की भौगोलिक स्थिति उत्तरदायी थी।जनपद बिजनौर में नदियों की अधिकता होने व देश की राजधानी से सीधे सड़क मार्ग से उस समय क्षेत्र के जुड़े न होने के कारण औद्योगिक इकाइयों की स्थापना न हो सकी। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात संगठित क्षेत्र के उद्योगों में भारतीय प्रभुत्व बढ गया।फलतः१६५० तक लघु व वृहद उद्योगों का चहुँमुखी विकास होने लगा था। जनपद बिजनौर में संगठित क्षेत्र में उद्योगों के विकास को निम्न प्रकार विश्लेषित किया जा सकता है-

१. ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन का समय : कम्पनी के शासन काल का अध्ययन क्षेत्र के विकास पर प्रभाव नगण्य ही रहा है क्योंकि उस समय क्षेत्र में छोटी छोटी रियासतें जैसे-हल्दौर, साहनपुर, ताजपुर, बसेड़ा, जलालाबाद, स्याऊ, मण्डावर व बास्टा आदि अस्तित्व में थीं जो प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से मुगल साम्राज्य से जुड़ी थीं। इस समय कुटीर एवं परम्परागत उद्योगों के अतिरिक्त संगठित उद्योगों का पूर्णतः अभाव था।

२. १६००-१६२० के मध्य संगठित उद्योग : ब्रिटिश शासन व्यवस्था की स्थापना के कारण क्षेत्रीय स्तर पर परिवहन तंत्र के विकास, कच्चे माल की उपलब्धता, बाजार में वस्तुओं की बढ़ती मांग के कारण पश्चिमी रूहेलखण्ड में १६१० से पूर्व संगठित, उद्योगों को स्थापित करने के प्रयास शुरू हो गए। लेकिन जनपद में इस ओर ठोस प्रयास नहीं किया गया। १६१० से १६२० के मध्य काल को संगठित उद्योगों का जन्म काल कहा जा सकता है। इस समय स्वदेशी पूंजी निवेश को प्रोत्साहित करने वाली परिस्थितियों का जन्म, मशीनों के आयात की सुविधा, प्रथम विश्व युद्ध, विदेशी वस्तुओं के आयात में कमी आदि भौगोलिक दशाओं में क्षेत्रीय स्तर पर संगठित उद्योग के विकास की सम्भावनाओं को जन्म दिया।

३. १६२०-१६३६ के मध्य औद्योगिक विकास : १६२०-१६३० के मध्य जनपद बिजनौर में औद्योगिक विकास मन्द रहा क्योंकि इस समय कपास की ओटाई व सम्पीडन से सम्बन्धित इकाइयां बंद होती गयीं। रेलवे वैगन की प्राप्ति में कठिनाई, ब्रिटेन में रूई की मांग में गिरावट, जापान से आयातित वस्त्रों की स्पर्धा के कारण सूती वस्त्र उद्योग पतोन्मुखी हो गया। जनपद बिजनौर में चीनी उद्योग का शुभारम्भ हुआ। इस उद्योग के लिए मजबूत आधार पहले ही स्थापित हो चुके थे क्योंकि प्राचीन समय से ही गन्ने की कृषि का प्रचलन, कुटीर एवं लघु उद्योगों के रूप में गुड़ एवं खाण्ड का निर्माण स्थानीय बाजार की उपलब्धता, सस्ते श्रमिक परिवहन सुविधाएं प्राप्त थीं। १६३०-३५ के मध्य ६ मिलों की स्थापना हो चुकी थी जिसमें ३ मिलें अपर गैगेज शुगर मिल स्योहारा, धामपुर शुगर मिल धामपुर, एस० वी शुगर मिल बिजनौर थीं इनमें ३३१६ श्रमिक कार्यरत थे। १६२० से पूर्व जहॉ अधिकांश श्रमिक कपास की ओटाई व सम्पीडन एवं हथकरघा वस्त्र उद्योग में लगे थे वही १६३० के बाद यह वर्ग चीनी उद्योग में कार्यरत हो गया।

४. द्वितीय विश्व युद्बके समय औद्योगिक दशा : द्वितीय विश्व युद्बका संगठित उद्योग पर व्यापक प्रभाव पडा। १६३६-४५ के मध्य ब्रिटेन के उत्पाद को भारी आघात पहुंचा। अध्ययन क्षेत्र में उस समय कपास की कृषि अधिक होती थी और कपास की ओटाई व सम्पीडन से सम्बन्धित इकाइयां नगीना में कार्यरत थीं। बदलती परिस्थितियों ने किसानों को गन्ना उत्पादन के लिए प्रोत्साहित किया। फलतः चीनी उद्योग तो पुष्पित हुआ लेकिन सूतीवस्त्र उद्योग दम तोड़ने लगा १६४०-४५ के मध्य उद्योगों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी।

स. लघु उद्योगों का स्वरूप : लघु उद्योगों के स्वरूप का सवाल है तो यह स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व बहुत उन्नत नहीं थे। इस समय दो आकार वाले उद्योगों की प्रधानता थी प्रथम-कुटीर व ग्रामोद्योग जिसमें १-५

व्यक्ति घर में बैठकर परम्परागत तरीके से कार्य सम्पादित करते थे। द्वितीय- वे उद्योग जिनका आकार विशाल एवं पूंजी अधिक लगी थी। इस प्रकार के उद्योग संगठित थे जिन्हें वृहद उद्योगों के नाम से जाना जाता था। इस समय लघु एवं मध्यम आकार वाले उद्योगों का विकास सीमित मात्रा में हो पाया था। १९२० में लघु उद्योगों में कार्यरत श्रमिकों के प्रतिशत को देखें तो यह ७०.०५ प्रतिशत था जो इस बात को प्रदर्शित करता है कि कार्यशील जनसंख्या का बड़ा भाग लघु उद्योगों में कार्यरत था। जैसे-जैसे तकनीकी विकास होता गया श्रमिकों की प्रतिशतता कम होती गयी जबकि लघु औद्योगिक इकाइयों की संख्या में १९३० के बाद वृद्धि हुई। इसका मुख्य कारण कपास ओटाई व सम्पीडन से सम्बन्धित इकाइयों का बन्द होना था।

२. औद्योगिक केन्द्र : स्वतंत्रता से पूर्व संगठित उद्योगों की स्थापना व उनका विकास मुख्यतः नगरीय केन्द्रों तक ही सीमित था जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि से सम्बन्धित कुटीर एवं ग्रामोद्योगों की प्रधानता थी। १९४७ से पूर्व जनपद बिजनौर के धामपुर, स्योहारा, बिजनौर नगरों में ही संगठित औद्योगिक इकाइयॉ स्थापित हो सकी क्योंकि १८ वीं शती से ही नगरीय क्षेत्रों में कुशल कारीगरों की आपूर्ति, बाजारीय सुविधा, पूंजी संस्थानों की सुविधा, शैक्षिक विकास, परिवहन हेतु पक्की सड़कें आदि भौगोलिक सुविधाओं के कारण औद्योगिक इकाइयां स्थापित होने लगी। १९४७ से पूर्व जनपद बिजनौर के प्रमुख औद्योगिक केन्द्रों के रूप में बिजनौर, नजीबाबाद, धामपुर व स्योहारा थे। कुटीर एवं लघु उद्योगों के प्रमुख केन्द्र नगीना, शेरकोट, नहटौर थे जहॉ ग्रामीण क्षेत्रों में तैयार किया हुआ माल शिल्पी व कारीगर लाकर बेचते थे।

३. तकनीकी स्तर : स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व भारतीय उद्योगों में पूंजी की कमी थी तथा अधिकांश उद्योगों की उत्पादन प्रक्रियाओं में श्रम की प्रधानता थी। १९४७ तक विनिर्माण में प्रति श्रमिक अचल पूंजी व विद्युत व्यय भी बहुत कम था तकनीकी ज्ञान के लिए विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता था। फलतः भारतीय उद्योगों का तकनीकी स्तर बहुत निम्न था। भारत के अधिकांश उद्योग परम्परागत तकनीक पर ही आधारित थे।

४. श्रमिकों की दशाएं : स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व कुटीर उद्योगों की ही प्रधानता थी क्षेत्र में अधिकांश कुटीर उद्योग ग्रामीण अंचलों में दस्तकारों द्वारा चलाए जाते थे जिन्हे दस्तकारी उद्योग के रूप में जाना जाता था जो मूलतः कृषि के साथ सामुदायिक सम्बन्धों की व्यवस्था द्वारा जुड़े थे। मशीनों का अभाव एवं तकनीकी स्तर निम्न होने से सभी कुटीर एवं लघु उद्योग मानव श्रम पर ही आधारित थे। ब्रिटिश शासन से पूर्व जब यहॉ मुगल शासन था तब बुनियादी उद्योगों यथा सेनाओं की आवश्यकता हेतु शस्त्र निर्माण शासकों, हेतु नक्काशी एवं जरदोजी का काम आदि की प्रधानता थी जिसमें कारीगर बिना वेतन के कार्य करते थे।

५. औपनिवेशक सरकार की नीतियॉ : किसी भी राष्ट्र में उद्योगों का विकास सरकार की नीतियों पर आधारित होता है अर्थात सरकार की नीतियॉ औद्योगिक विकास के अनुकूल हैं तो यहाँ की औद्योगीकरण प्रक्रिया को विशेष बल प्राप्त होता है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व भारत लम्बे समय तक औपनिवेशक प्रशासन के प्रभाव में रहा जिसका मुख्य उद्देश्य ब्रिटेन को आर्थिक एवं राजनीतिक रूप में और अधिक सशक्त बनाना था भले ही भारत में इसका शोषण हो।

ब. स्वतंत्रता पश्चात की स्थिति : स्वतंत्रता के बाद भारत में विभिन्न अर्थव्यवस्था की नीति को अपनाया गया है जिसे भारत में राजकीय तथा निजी क्षेत्रों का समान्तर अस्तित्व तथा दोनों की अन्तःनिर्भरता माना जाता है। राष्ट्रीय योजना समिति के सुझाव पर अप्रैल १९५६ में औद्योगिक नीति का निर्धारण औद्योगिक विकास की महत्वपूर्ण घटना है जिसको समयानुसार संशोधित किया जाता रहा है।

१९५० के बाद भारत में औद्योगिक विकास हेतु निम्न विभिन्न नीतियों व कार्यक्रमों को अपनाया जा रहा है

१. मूलभूत भारी उद्योगों का द्रुतगति से विकास
२. लघुस्तरीय पूंजीवादी तथा कुटीर उत्पादन को प्रोत्साहित करना।

३. स्थानीय मंडी पर नियंत्रण हेतु राष्ट्रीय उद्योगों का विकास
४. उद्योगों में प्रयुक्त संसाधनों पर निजी स्वामित्व को सुरक्षित रखने के साथ साथ राज्यों की अग्रणी भूमिका
५. स्थानीय रूप में उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम किन्तु समुचित उपयोग
६. बेरोजगारी समस्या पर नियन्त्रण
७. हस्तशिल्प एवं दस्तकारी इकाइयों का विकास

औद्योगीकरण के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु राज्य एवं केन्द्र सरकारें उद्योगों को अनेक प्रकार से प्रोत्साहित कर रही है।

१. **लघु एवं कुटीर उद्योगों के स्वरूप में परिवर्तन**– स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से अन्य आर्थिक क्षेत्रों के समान लघु उद्योगों को भी विकास की नवीन सहयोगी परिस्थितियॉं सुलभ होती रही हैं। १६५० के बाद से विभिन्न प्रकार के उद्योगों की स्थापना से लघु एवं मध्यम प्रकार के उद्योगों के लिए आवश्यक उपकरण, कच्चा माल आदि सुगमता से प्राप्त होने लगे जिससे लघु उद्योगों के विकास क्रम में वृद्धि हो गयी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद औद्योगिक वस्तुओं की मांग एवं उत्पादन में कई गुना वृद्धि होती गयी। जनपद बिजनौर की औद्योगिक संरचना में व्यापक परिवर्तन हुए यह न केवल औद्योगिक सुविधाओं में सुधार के रूप में हुए अपितु औद्योगिक इकाइयों, श्रमिकों, पूंजीनिवेश तकनीकी स्तर में भी बहुत तेजी से हुए है।
२. **लघु एवं परम्परागत उद्योगों की स्थापना में परिवर्तन**– पीतल उद्योग में बर्तनों के स्थान पर कलात्मक वस्तुएं, फूलदान, ट्रॉफी, शील्ड, मोमबत्ती स्टैण्ड, देवी देवताओं की मूर्तियों का निर्माण किया जाता है। ऐसे ही लुहारी उद्योग में प्राचीन लोहे के बर्तनों के स्थान पर भवनों की ग्रिल, दरवाजे, जाली, फूलदान, स्टैण्ड आदि का निर्माण किया जाता है। वर्तमान में कुछ नवीन उद्योग यथा मोमबत्ती, खाद्यतेल, कोयले के चूर्ण से चिकली बनाना पॉलीथीन बैग, स्टीकर एवं झण्डे बनाना, साबुन प्लाईवुड, चाकू, स्टील फर्नीचर, हल्के कृषियन्त्र, रबड़ की वस्तुएं एवं खिलौने, जूते चप्पल व प्लास्टिक की शीशियॉं व कीरिंग आदि की स्थापना हो चुकी है।
३. **उद्योगों की आन्तरिक संरचना में परिवर्तन**– जनपद बिजनौर के उद्योग वर्गो व उद्योग की अवस्था में परिवर्तन हुए है क्योंकि कृषि आधारित उद्योगों में निरन्तर विकास होता गया है अर्थात गन्ना कृषि के विकास में चीनी उद्योग को नई ऊँचाईयॉं प्रदान की हैं।
४. **तकनीकी स्तर में परिवर्तन**– तकनीकी स्तर में बड़ा परिवर्तन वर्तमान समय में देखा जा सकता है। १६५० के बाद चीनी एवं खाण्डसारी उद्योग, कृषियन्त्र निर्माण रासायनिक पदार्थ व औषधि निर्माण कागज व गत्ता उत्पादन, दाल एवं प्रशोधन उद्योग, लकड़ी व स्टील का फर्नीचर विनिर्माण तथा वस्त्र उद्योग में तकनीकी सुधार के कारण श्रमिकों की उत्पादन क्षमता बढ़ी है।
५. **पूंजी निवेश की दशाओं में परिवर्तन**– स्वतंत्रता से पूर्व उद्यमियों को सरकारी सहायता एवं अनुदान की कोई विशेष व्यवस्था नहीं थी क्षेत्र का धनिक व्यक्ति ही पूंजी प्राप्ति का स्रोत था जिसकी ब्याज दर अधिक थी। प्रदेश एवं भारत सरकार की ओर से लघु उद्योग एवं दस्तकारी इकाइयों में पूंजी निवेश को प्रोत्साहन देने के उददेश्य वर्तमान में औद्योगिक बैंक सहकारी समितियॉं व निगम कार्यरत हैं जिनसे समय -समय पर उद्यमी लाभ उठाते हैं। भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक की स्थापना वर्ष १६६० में लघु उद्योगों के प्रवर्तन, वित्तपोषण एवं विकास तथा इन गतिविधियों में संलग्न संस्थाओं के कार्यों को समन्वित करने के उददेश्य से प्रमुख संस्था के रूप में की गयी।[६]
६. **सरकार की नीतियॉं**– स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार की नीति उद्योगों को प्रोत्साहित

करने की रही हैं। विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त असमानता तथा आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए नियोजित आर्थिक विकास को महत्ता दी गयी है।छठी योजना में लघु उद्योगों में विकास पर कुल १७८०.४५ करोड़ रूपयों का प्रावधान किया गया। लघु उद्योगों पर ६२०.२५ करोड़ रूपये व्यय किए गए। ७वीं योजना में लधु उद्योगों के लिए २७५२.७ करोड़ रूपये का प्रावधान था लेकिन वास्तविक व्यय ३२४६.३ करोड़ रूपयों का था। नवीं पंचवर्षीय योजना में कुल १०८२ करोड़ व्यय लघु उद्योगों पर किए गये।[१०]

लघु उद्योगों को प्रोत्साहन देने के लिए १९७१ में केन्द्रीय उपादान योजना बनाई गयी जिसे कुछ संशोधनों के बाद १.०४.१९८३ को लागू किया गया। इसे अ, ब, स, द श्रेणी में प्रदेश के जनपदों को रखा गया लेकिन जनपद बिजनौर को उपर्युक्त में से किसी भी श्रेणी में नहीं रखा गया।फिर समय समय पर घोषित अनुदानों का लाभ जनपद बिजनौर को मिलता रहा है। १९९१ की औद्योगिक नीति को उदारता की नीति के नाम से जाना जाता है।[११] इस नीति में लघु उद्योगों के लिए कोई प्रावधान नहीं था फलतः अलग से लघु उद्योगों के लिए नीति घोषित की गयी जिसके निम्न बिन्दु थे।

१. अन्य औद्योगिक उपक्रमों द्वारा लघु क्षेत्र की इकाइयों में २४ प्रतिशत तक इक्विटी पूंजी की भागीदारी की जा सके।
२. उद्योगों से सम्बन्धित समस्त सेवा क्षेत्र एवं व्यावसायिक इकाइयों को अब लघु क्षेत्र में सम्मिलित किया जाएगा।
३. लघु उद्योग क्षेत्र के निर्यातों को समर्थन देने के लिए लघु उद्योग विकास संगठन को प्रमुख संस्था के रूप में मान्यता दी जाए।

निष्कर्ष एवं सुझाव : आर्थिक सुधार लागू होने के बाद १९९१ से अर्थव्यवस्था के द्वार धीरे-धीरे निवेशकों हेतु खोले जा रहे हैं उसे किसी सीमा तक विश्व अर्थव्यवस्था के साथ मिलाया जाता है। अब जोर इस बात दिया जा रहा है कि औद्योगिक ढाँचे की गुणवत्ता में सुधार किया जाए ताकि उनके उत्पाद अन्तर्राष्ट्रीय मंडियों में प्रतियोगिता का सामना कर सकें। वास्तव में लघु उद्योग की विकास दर समग्र औद्योगिक क्षेत्र से दो या तीन प्रतिशत अधिक रही हो। लघु उद्योग क्षेत्र विकास हेतु सरकार द्वारा प्रयास किये जा रहे है उनमें सम्मिलित है बुनियादी सुविधाओं की व्यवस्था, कुछ वस्तुओं का निर्माण लघु उद्योग क्षेत्र हेतु आरक्षित करना। ऋण लेने के लिए लघु उद्योगों का प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र में सम्मिलित करना उत्पादन शुल्क में रियायत कच्चे माल की व्यवस्था बिक्री में सहायता प्रौद्योगिकी स्तर सुधारने में सहायता आदि।

स्वतंत्रता के पश्चात केन्द्र एवं राज्य सरकार की नीतियों एवं योजनाओं के प्रोत्साहन के कारण क्षेत्रीय स्तर पर औद्योगीकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा मिला है जिसमें राजकीय उधमवृति ने और अधिक सहयोग प्रदान किया है। लघु उद्योगों में छोटी एवं कम विद्युत शक्ति का उपयोग करके भी श्रमिक अपनी कला एवं प्रतिभा का प्रदर्शन कर सकता है जो क्षेत्र विकास में बहुमूल्य योगदान प्रदान करेगा। सर अल्फ्रैड की १९३३ में व्यक्त की गई चिन्ता के क्रियान्वयन का यही सही समय है।[१२] जब पुनः प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक संसाधनों की श्रुति स्थापित करें जैसे कि अतीत में जिसके बल पर भारत सोने की चिड़िया बना था। वर्तमान में अपनी मेधा को समझकर उसी के अनुरूप उद्योगों को स्थापित करके अपनी खोई हुई समृद्धि को प्राप्त करने हेतु प्रधानमंत्री ने देश के युवाओं के लिए स्टार्टअप का नारा दिया है। ऐसे देश के युवाओं को अनेक योजनाओं का लाभ उठाकर न केवल स्वयं को स्थापित कर सकते हैं अपितु अपने क्षेत्र को भी एक वैश्विक आर्थिक शक्ति के रूप में खड़ा कर सकते हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में जनपद बिजनौर के लघु उद्योगों के विकास क्रम का अध्ययन करने पर पाया गया कि स्वतंत्रता के पश्चात जनपद बिजनौर लघु उद्योगों की श्रेणी में अपना प्रभुत्व स्थापित कर रहा है, जिससे जनपद बिजनौर उद्योगों के रूप में अपनी अलग ही पहचान बना रहा है।

सन्दर्भ

१. Ahamad Manfooz, 'Historical Analysis of Small Scale Industries' 1958 pp. 1

२. ibid. p. 1

३. बिजनौर गजेटियर, वाल्यूम XIV-१६६१ पृ. ६५

४. उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, रामपुर १६७४ पृ. १३४

५. बिजनौर गजेटियर, वाल्यूम XIV १६११-पृ. ६६

६. Chattergee A.C., 'Notes on the Industries of United Provinces' Allahabad, 1908 p. 91

७. ibid. p. 117

८. ibid. p. 142

६. त्रिपाठी विभा (संपा.), 'उद्यम उद्यमी उद्यमिता', उद्यमिता विकास संस्थान, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, २००१-०२ पृ.३१,

१०. कुरूक्षेत्र हिन्दी मासिक पत्रिका-जनवरी २००५ पृ. २६

११. Report of SIDC, 'The Securities Industry Devlopment Corporation' 1980, 81 p. 5, 689

१२. शर्मा पवन कुमार, 'लघु उद्योगों में अग्रणी था भारत', योजना हिन्दी मासिक पत्रिका, नवम्बर २०१७ पृ. ४६

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 20 अंक 1, जनवरी-जून 2018**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

खरवार या सफाहोड़ आन्दोलनः (संताल परगना के संबंध में)

❑ **डॉ. प्रेमनाथ**

धर्म के योगदान की महत्ता के सम्बन्ध में सामाजिक और मानविकी विज्ञानों के विद्वान एक मत नहीं है। पर यह निर्विवाद है कि इतिहास के निर्माण और इसकी घटनाओं को प्रभावित करने में धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। संताल परगना का आधुनिक इतिहास इस तथ्य का अपवाद नहीं है क्योंकि इस क्षेत्र के इतिहास के निर्माण और इसकी घटनाओं को निर्मित, संचित और नियंत्रित करने में धर्म का योगदान काफी महत्वपूर्ण है। धार्मिक भावनाओं, रीति-रिवाजों, विश्वासों, राजनीतिक नेताओं के आह्वान, धार्मिक गुरूओं का आविर्भाव और उनकी विचारधाराएँ, निर्देश आदि ने इस क्षेत्रीय इतिहास की घटनाओं को गम्भीर रूप से प्रभावित किया है। प्रस्तुत आलेख 'खरवार या सफाहोड़ आन्दोलन' के संदर्भ में इसी तथ्य को प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है।

मनुष्य अपनी सृष्टि से ही धर्म से जुड़ा है। धर्म से मनुष्य की गतिविधियाँ और उपलब्धियाँ उनकी सोच आदि सब कुछ प्रस्फुटित, संचित और नियंत्रित हुई है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि धर्म ने मनुष्य को काफी प्रभावित किया है और उसके जीवन को नयी दिशाएँ दी हैं। अतः मानव सभ्यता और संस्कृति के क्रमिक विकास में धर्म की बहुत बड़ी भूमिका रही है।

इतिहास मनुष्य की तमाम उपलब्धियों का एक प्रामाणिक दस्तावेज है। यह एक ऐसा दस्तावेज है, जो मनुष्य को वर्तमान में निर्देशित करता है और भविष्य के लिए रास्ता तलाशने हेतु उसे आधार प्रदान कर उत्साहित करता है। इन तथ्यों में इतिहास और मनुष्य के जीवन में धर्म का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यद्धपि धर्म के योगदान की महत्ता के सम्बन्ध में सामाजिक और मानविकी विज्ञानों के विद्वान एक मत नहीं है। पर यह निर्विवाद है कि इतिहास के निर्माण और इसकी घटनाओं को प्रभावित करने में धर्म की अपनी भूमिका होती है।

राष्ट्रीय और क्षेत्रीय इतिहास के परिप्रेक्ष्य में इतिहास के निर्माण में धर्म की भूमिका और इसकी महत्ता को स्पष्ट किया जा सकता है। १८५७ का विद्रोह, भारत के आदिवासियों के विभिन्न विद्रोह आदि के सन्दर्भ में धर्म और इतिहास में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध को समझा जा सकता है। यद्धपि यह तथ्य आलोचना से परे नहीं है, पर मनुष्य के जीवन और उसकी सभ्यता-संस्कृति के निर्माण में धर्म की भूमिका को स्वीकार करने को हम विवश हैं।

संताल परगना का आधुनिक इतिहास इस तथ्य का अपवाद नहीं है क्योंकि इस क्षेत्र के इतिहास के निर्माण और इसकी घटनाओं को निर्मित, संचित और नियंत्रित करने में धर्म का योगदान काफी महत्वपूर्ण है। धार्मिक भावनाओं, रीति-रिवाजों, विश्वासों, राजनीतिक नेताओं के आह्वान, धार्मिक गुरूओं का आविर्भाव और उनकी विचारधाराएँ, निर्देश आदि ने इस क्षेत्रीय इतिहास की घटनाओं को गम्भीर रूप से प्रभावित किया है। इस क्षेत्रीय इतिहास के निर्माण में धर्म एक प्रेरक और सकारात्मक शक्ति के रूप में उपस्थित हुआ। फलस्वरूप आदिवासी और गैर-आदिवासी जनता ने विदेशी साम्राज्यवाद के खिलाफ एकजुट होकर संघर्ष किया।

भोगनाडीह (बरहेट, जिला-साहिबगंज) के सिदा-कान्हू, चाँद और भैरव के नेतृव्य में १८५५ ई० का संताल विद्रोह एक बड़ी जनक्रांति थी।[1] जिसमें अनुमानतः पचास हजार लोग शामिल हुए थे जिन्होंने छह महीने से भी अधिक की अवधि तक कम्पनी सरकार और इसके सैनिक और असैनिक अधिकारियों को परेशान कर रखा था। इस संतालहूल के अनेक आधारभूत कारण थे जो कई दशक से एकत्रित हो रहे थे, पर इस विद्रोह की पृष्ठभूमि में धर्म की भूमिका महत्वपूर्ण थी। इसके दूरदर्शी नेता विदेशी

❑ नेट, पीएच.डी. एस.के.एम. यूनीवर्सिटी दुमका, (झारखण्ड)

शासन से मुक्त होना चाहते थे और गरीब वर्ग का राज स्थापित करना चाहते थे। उनके द्वारा यह प्रचारित किया गया कि उन्हें दैवी शक्ति 'ठाकुर' का दर्शन हुआ और उन्हें इस बात का निर्देश दिया कि वे अपनी दासता की जंजीर को तोड़ने की हिम्मत करें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए संतालों को हथियार उठाने के लिए उत्साहित करें क्योंकि दुश्मनों के बन्दूक की गोलियाँ पानी हो जाऐंगी और उनका शासन भी समाप्त हो जाएगा।[२] संतालों का विश्वास है कि सिदो को 'मरांग वुरू' ने दर्शन दिया था। एक दिन जंगल में उन्हें दूध के समान-साफ कपड़ा पहने हुए एक स्त्री का भी दर्शन हुआ था, जिसने सिदो को संतालों का राजा घोषित किया एवं संतालों का दुखः दूर करने को कहा। इसके बाद यह स्त्री अर्न्तध्यान हो गयी। यह ''जाहेरएरा'' देवी थी।

जब पूरा क्षेत्र विद्रोह करने पर उतारू हो गया था और आदिवासी, पिछड़े, दलित और गरीब वर्गों का असंतोष अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था। ऐसे नाजुक समय में धार्मिक विश्वासों, मान्यताओं-भावनाओं और घोषणाओं ने आग में घी का काम किया और विद्रोह को प्रज्वलित कर दिया। प्रसिद्ध विद्वान के. के. वसु धार्मिक कारण को महत्वपूर्ण नहीं मानते पर प्रसिद्ध इतिहासकार के. के. दत्त का विचार है कि ''धर्म अक्सर औसत लोगों में एक बड़ी उद्दीपनकारी ताकत के रूप में काम करता है और यहाँ भी एक चमत्कारिक दैवी प्रकरण की कथा ने संतालों को अपने दुख तकलीफों को दूर करने के लिए तत्काल खुली कार्रवाई करने के लिए प्रेरित किया .... भव्य ठाकुर का दिव्य दर्शन केवल एक ही वार नहीं हुआ। .... सिदो और कान्हू ने अपने घर की बाड़ी में एक ठाकुर की मूर्ति खड़ी करके उनकी कायदे से पूजा करने की व्यवस्था की। इसी बीच उन्होंने साल पेड़ की एक टहनी के प्रतीक द्वारा उक्त रहस्यमयी प्रकटन का प्रचार किया। उनके ठाकुर के आदेश को सुनने के लिए सभी संतालों को एकजुट होने के लिए एक दिन तय किया गया।''[३]

इतिहासकार एन. वी. राय.[४] ने भी विद्रोह से सम्बन्धित धार्मिक प्रेरणा को काफी महत्व दिया है और इस तथ्य का विस्तृत वर्णन किया है। उनका विचार है कि इस अजनबी घटना ने उन्हें यह आश्वस्त कर दिया कि पृथ्वी पर उनके देवता का आगमन हो चुका है और उसके लिए उत्तेजना उस समय चरम पर पहुँच गयी, जब सिदो-कान्हू ने दैवी ठाकुर के दर्शन होने की घोषणा की और कहा कि उन्हें संतालों के सबसे बड़े देवता सुवा ठाकुर ने संतालों के विद्रोह में नेतृत्व करने का आदेश प्राप्त हुआ। यह मानी हुई बात है कि विभिन्न सामाजिक आन्दोलनों का प्रारंभ करने में धर्म की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। सिदो और कान्हू का यह दावा है कि यह भगवान की इच्छा है कि संताल अपने शोषकों के खिलाफ विद्रोह करें एक चिनगारी के रूप में प्रकट हुआ जो दावानल को प्रज्जवलित करने के लिए आवश्यक था, इस धार्मिक मान्यता ने नेताओं को यह अधिकार दे दिया, जिसकी उन्हें जरूरत थी, जिसे संताल स्वीकार कर लें। इस प्रकार संताल हूल की पृष्ठभूमि में धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका रही। यद्धपि इस जनक्रांति को अंग्रेजों ने सत्ता, शक्ति और शस्त्र बल पर दमन कर दिया और इसके जननायकों सहित अनेक विद्रोहियों को फांसी पर चढ़वा दिया, इसके वाबजूद जिन भावनाओं से क्रांतिकारी प्रेरित हुए थे उसका विदेशी शासक दमन नहीं कर सके। फाँसी पर चढ़ने से पहले कान्हू ने शीघ्र ही एक अन्य विद्रोह की भविष्यवाणी की थी जिसमें वह पुनः लोगों का नेतृत्व करेगा। इसलिए १८५७ का विद्रोह जिसकी शुरूआत देवघर जिले में स्थित रोहिणी गाँव से हुई थी (१७ जून १८५७) के दमन के पश्चात् भी संताल परगना में किसी नेता के द्वारा जनक्रांति के नेतृत्व किये जाने की सम्भावना से ब्रिटिश अधिकारी भयभीत थे। अतः ब्रिटिश अधिकारियों ने संतालों में गहरे असंतोष को दूर करने के लिए तत्काल उपाय किये। ब्रिटिश सरकार द्वारा पारित अधिनियम १८७२ जिसे सरकारी सेंटलमेंट ऑफिसर मैकफर्सन ने संताल परगना का मैग्नाकार्टा कहा है।

इसी बीच संतालों में खरबार आन्दोलन व सफाहोड़ आन्दोलन प्रारंभ हो चुका था, जो शीघ्र ही पूरे संताल परगना में प्रसारित प्रचारित हो गया था जो पूरी तरह अहिंसात्मक था। इसके बाद इस आन्दोलन ने ब्रिटिश

सरकार को ज्यादा परेशान किया क्योंकि इस आन्दोलन का ब्रिटिश अधिकारी दमन नहीं कर सके और यह आन्दोलन बार-बार फूट पड़ा। आन्दोलन के बीज मूलतः उन संताल विद्रोह के नेताओं (सिदो और कान्हू) में ही विद्यमान थे जो बाद में अन्य नेताओं में भी प्रस्फुटित हुए। प्रारंभ में यह आन्दोलन मूलतः सामाजिक परिवर्तन और धार्मिक शुद्धिकरण से जुड़ा था। पर बाद में जमीन पर अधिकार, सरकार को टैक्स न देना, आदि गंभीर मामले भी इससे जुड़ गये, जिससे आन्दोलन का स्वरूप राजनीतिक हो गया फलस्वरूप इस आन्दोलन से आदिवासी काफी प्रभावित हुए और उनके नेताओं के आर्विभाव की इसने पृष्ठभूमि तैयार कर दी।

खरवार आन्दोलन से ब्रिटिश सरकार को भारी परेशानी हुई। विद्वान जोसेफ ट्रोइसी[६] के अनुसार यह आन्दोलन एक नयी चेतना का प्रतीक था। यह आन्दोलन (१८७१) मूलतः एक सामाजिक और धार्मिक आन्दोलन था। इस आन्दोलन का मूल उद्देश्य सामाजिक और धार्मिक शुद्धिकरण था क्योंकि इसमें संतालों को केवल सच्चे भगवान की पूजा, मद्यपान निषेध और जानवरों-पक्षियों का माँस भक्षण न करने आदि की नसीहत दी थी। इसके अनुयायी अपने घर में तुलसी का पेड़ लगाते और घर की सफाई पर विशेष ध्यान देते। ये अपने को सफाहोड़ कहते थे। इसलिए इस आन्दोलन को सफाहोड़ आन्दोलन भी कहते हैं। भागीरथ मांझी का गुरू एक हिन्दू था जिसने १८५७ के विद्रोह में भाग लिया था इसलिए उनके उपदेशों में हिन्दू धर्म की अनेक बातें शामिल थीं। अपने उपदेशों में उसने स्वतंत्रता का विचार और स्वर्ण युग की व्याख्या की। उसने आन्दोलन का नेतृत्व किया और '' बाबा जी'' का पद ग्रहण किया। १८७४ ई. के अकाल के समय उसने स्वयं को भगवान द्वारा नियुक्त संतालों का राजा घोषित किया ताकि वे उसके लिए संघर्ष कर सकें और उनकी समस्याओं का समाधान कर सकें फलस्वरूप पूरे संताल परगना में सफाहोड़ आन्दोलन फैल गया। सन् १८५५ ई० के 'संताल हूल' को कार्ल मार्क्स ने अपनी पुस्तक 'दि नोट्स ऑफ इंडियन हिस्ट्री' में भारत की प्रथम जनक्रांति कहा, वास्तव में कहानी तो हमारे जंगे आजादी की वहीं से शुरू होती है, लेकिन वह जनक्रांति गोरी हुकूमत की बुनियाद को उखाड़ नहीं पायी, किन्तु 'सफाहोड़ आंदोलन' को जन्म देने का सबब जरूर बन गयी।

लाल बावा सर्वप्रथम सफाहोड़ आन्दोलन[७] से जुड़े और शीघ्र ही पूरे क्षेत्र में लोकप्रिय हो गये। चूंकि लाल बाबा के पिता भादो हेम्ब्रम सफाहोड़ आन्दोलन के अंग्रेजी नेता थे। अतः इस आन्दोलन में शामिल होने के फलस्वरूप भी लाल बाबा का राजनीतिक दृष्टिकोण प्रगाढ़ और प्रांजल हो गया।

यूँ तो सफाहोड़ आन्दोलन कोई नया आन्दोलन नहीं था सन् १८७० ई. में बाबा भागीरथ मांझी इसकी नीव रख चुके थे, जिसका स्वरूप तो धार्मिक था मगर लक्ष्य राजनीतिक था। तथ्य गवाह हैं कि बाबा भागीरथ मांझी संताल हूल की विफलता देख चुके थे कि भारत पशुबल का सामना पशुबल से नहीं कर सकता है। इसका कारण यह था कि विद्रोहियों को अंग्रेज सगीनों की दहाड़ से दवा चुके थे। बाबा ने बहरहाल, अनुभव किया कि सत्ता के लिए संघर्ष आत्म-बल चाहिए और बल की मजबूती के लिए चारित्रिक बल। यही नहीं संताल विद्रोह की विफलता का सबसे बड़ा कारण उन्होंने लोगों में धार्मिक भावना की कमी बताया। इसी सोच के मद्देनजर उन्होंने सत्ता के खिलाफ अहिंसात्मक संघर्ष शुरू किया, हालाँकि उनका नाम सफाहोड़ के बदले तब 'खरवार' आंदोलन पड़ा लेकिन उसका स्वरूप सफाहोड़ आन्दोलन से किसी भी रूप में अलग-थलग नहीं था,[८] आन्दोलनकारी सफाहोड़ों को 'राम-नाम' का मंत्र दिया गया। वे जिधर जाते राम-नाम का ही जाप करते हैं। कहते हैं रामहल के तत्कालीन एस. डी. ओ. राबर्टसन ने ''कादो'' नाम के एक संताल को पीट-पीटकर अधमरा कर दिया। प्रशासन की इस क्रूरता ने सफाहोड़ों को उद्वोलित करके रख दिया। फलस्वरूप आन्दोलन उग्रतर होता चला गया। लाल हेम्ब्रम उर्फ लाल बाबा संतालों को सफेद झंडी देते थे, उन्हें जनेऊ पहनाते थे और मांस मदिरा छुड़वाते थे। कहा तो यहाँ तक जाता है कि सारंगी बजाते, राम-नाम उच्चारते और सफेद झंडियाँ लहराते। संतालों का काफिला चलता देख अंग्रेज नौकरशाही घबड़ा उठी और ऐसी

कोशिशों पर लगाम डालने की गरज से आंगन में तुलसी चौरा बनाने और राम नाम जाप करने पर पाबंदी लगा दी, जिसने भी निषेधाज्ञा का उल्लंघन किया, हुकूमत ने वैसे लोगों पर जी भरकर कहर बरपा दिया।[६]

हुकुमत की इस क्रूरता पर लाल बाबा लाल हो उठे। इसी बीच महात्मा गाँधी देवघर आये। कहते हैं सफेद झंडी लिए हजारों की संख्या में सफाहोड़ कार्यकर्ता महात्मा के दर्शनार्थ देवघर आ पहुँचे। बापू सफाहोड़ कार्यकताओं से बड़े प्रभावित हुए खासकर उनके अहिंसक आन्दोलन से। कहा तो यहाँ तक जाता है कि बापू ने इस आन्दोलन के संचालन में आर्थिक सहयोग भी दिया था।[१०] बहरहाल, आन्दोलन की धार ज्यों-ज्यों तेज होती गयी, उसे कुंद करने के लिए हुकूमत की क्रूरता भी बढ़ती ची गयी। फलस्वरूप लाल हेम्ब्रम और पैका मुर्मू भूमिगत होकर आन्दोलन को नेतृत्व देने लगे। तब अंग्रेजों ने लाल हेम्ब्रम को 'डाकू' का संबोधन किया। लिहाजा उस कथित डाकू को पकड़ने की व्यूह रचना जोर-शोर -से होने लगी। इस साजिश को भांपते ही लाल बाबा बिहार छोड़कर बंगाल चले गये और वहीं वीरभूम में रहकर संतालों को उत्तेजित संगठित करने लगे। वहीं उन्हें पता चला कि नेता जी ने आजाद हिन्द सरकार कायम किया है। लालबाबा सुभाष बाबू के प्रिय कार्यकर्ता थे इसीलिये उन्होंने सिंगापुर जाकर नेताजी से मिलने का निश्चय किया। वह आगे भी बढ़े मगर बाधाओं ने रास्ता काट दिया और न चाहते हुए भी उन्हें वापस लौटना पड़। लेकिन बेहद मजबूरी में हुई उस वापसी ने उनके अंदर एक नया जोश उत्पन्न कर दिया और आजाद हिन्द फौज के अनुरूप ही उन्होंने संताल परगना में 'देशोद्वारक दल' का गठन किया।

सफाहोड़ आन्दोलन में ईसाई लोग संतालों को बहला-फुसलाकर ईसाई बना रहे थे। जून १९३७ ई० में इस षड़यंत्र के विरूद्ध अभियान छेड़ने का निश्चय हुआ। हिन्दू जागरण को बढ़ावा देने के लिए ऐसा सब कुछ हो रहा था। पं. विनोदा नन्द झा और शशि भूषण राय ने लम्बोदर मुखर्जी के नेतृत्व में आन्दोलन में सक्रिय-भूमिका अदा की। इस समय बिहार के कॉग्रेस की कार्यकारिणी का पुनः गठन किया गया। इस समय कॉग्रेस के जनसम्पर्क प्रस्ताव के अनुसार एक मुस्लिम जनसम्पर्क समिति बनाई गई। इसमें अधिक से अधिक मुसलमानों को सम्मिलित किया गया।[११] संताल परगना के आदिवासी एवं जनजाति बहुल क्षेत्र में सफाहोड़ आन्दोलन शुरू किया गया था। लम्बोदर मुखर्जी इस आन्दोलन को सक्रिय बनाने का प्रयास कर रहे थे, इन्होंने ही सर्वप्रथम भारत माता की प्रतिमा स्थापित करने की परंपरा स्थापित की। अधिकतर सफाहोड़ संताल और पहाड़िया थे। आन्दोलन में संताल और पहाड़िया लोगों के जीवन स्तर में शुद्धता लाने का प्रश्न था। सन् १९४३ ई. में संताल परगना जिला में सफाहोड़ आन्दोलन का बहुत जोर था इसे दवाने के लिए २१ अप्रैल को एक पुलिस दस्ता 'रंगा बंगला' गया। संयोग से एक व्यक्ति गिरफ्तार भी कर लिया गया। पुलिस दफ्तर पर आक्रमण कर दिया गया, पुलिस ने गोली चलायी। जिससे कुछ लोग घायल हो गये, किन्तु उपद्रवकारी अपने गिरफ्तार साथियों को छुड़ाकर ले गये तथा पुलिस को खाली हाथ लौटना पड़ा। वाद में कुछ सफाहोड़ गिरफ्तार कर लिये गये। इस आन्दोलन में संस्कार शुद्धि को महत्व दिया गया था। संतालों को हिन्दू धर्म में दीक्षित कर लिया गया था। ये लोग मुर्गी नहीं खाते थे, झंडा फहराते थे, तुलसी के पौधे लगाते और राम-राम का गान करते थे। सफाहोड़ संतालों और पहाड़ियों का एक सुसंस्कृत समुदाय कहा जा सकता है। कुछ वर्ष पूर्व से ही ये लोग मद्यपान से परहेज करते थे अपने पर एक उजला चकोर झंडा लगाते। झंडा स्तम्भ के नीचे मंत्र पढ़ कर मिठाई या चीनी आदि चढ़ाते खून नहीं।[१२] संताल परगना के प्रमुख नेता लम्बादेर मुखर्जी और सर्वानन्द मिश्र जो कि नेताजी सुभाष चन्द्र बोस जी की दल 'फारवर्ड ब्लॉक' में सम्मलित हो गये थे देवघर जिले में आन्दोलन के सूत्रधार थे। इन्हें फरवरी १९४२ में ही देवघर जिले से बाहर चले जाने का आदेश दिया था। १९४३ ई. के नवम्बर तक देवघर जिले में सफाहोड़ के कार्यकर्त्ता सक्रिय रहे और इसका आन्दोलन चलता रहा।[१३]

सफाहोड़ आन्दोलन का महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि संताल परगना में ईसाई धर्म के प्रचार-प्रसार में बाधाएँ

उत्पन्न हुई और संतालों को ईसाई धर्म में परिवर्तित करने का कार्य काफी हद तक नियंत्रित हो गया। कलान्तर में इस आन्दोलन के नेता गिरफ्तार कर लिये गये और उन्हें जेल में बन्द कर दिया गया। अतः संताल परगना के सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक इतिहास में सफाहोड़ आन्दोलन मील का पत्थर साबित हुआ। इस आन्दोलन से संताल परगना की सामाजिक और धार्मिक पृष्ठभूमि में राजनीतिक जागरण हुआ। फलस्वरूप १८८०-१८८१, १८६१, १८६६-१८६७, १६११, १६२१ और १६३८ में सफाहोड़ आन्दोलन पुर्नजीवित होता रहा जिससे ब्रिटिश अधिकारियों को संताल परगना में काफी परेशानियों का सामना करना पड़ा। इतिहासकार के. के. दत्त ने स्पष्ट किया है कि १६३८ में सफाहोड़ आन्दोलन पुर्नजीवित हुआ और भारतीय राष्ट्रीय कॉग्रेस द्वारा शुरू किये गये स्वतंत्रता आन्दोलन से एकीकृत हो गया।[१४] इस प्रकार स्वतंत्रता आन्दोलन के विभिन्न चरणों में सफाहोड़ों का योगदान महत्वपूर्ण था। वे असहयोग आन्दोलन, सविनय अवज्ञा आन्दोलन, व्यक्तिगत सत्याग्रह और भारत छोड़ो आन्दोलन में शामिल हुए और गिरफ्तार होकर जेल गये। उन्होंने अमानवीय कष्ट झेलते हुए ब्रिटिश साम्राज्यवाद का जबर्दस्त विरोध किया। फ्यूक्स[१५] ने लिखा है कि राष्ट्रव्यापी संघर्ष भारत छोड़ो आन्दालेन १६४२-१६४३ में सफाहोड़ों ने एक महान् भूमिका निभायी और राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए अपना अनुपम योगदान दिया। संताल परगना के वरिष्ठ स्वतंत्रता सेनानी मोतीलाल केजरीवाल ने अपनी प्रसिद्ध रचना ''१६४२ की क्रांति में संताल परगना'' में स्वतंत्रता आन्दोलान में सफाहोड़ों के योगदान की विस्तृत विवेचना की है।[१६]

सफाहोड़ आन्दोलन ने संताल परगना में राजनीतिक आन्दोलन के लिए एक सबल धरातल तैयार किया और यही कारण है कि संताल परगना में स्वतंत्रता आन्दोलन काफी सशक्त और संगठित था। अतः प्रसिद्ध चिंतक और लेखक मधु लिमये ने सटीक आकलन किया था कि गंगा के उत्तर और दक्षिण बिहार के दस जिले और पूर्वी यू. पी. के छह जिले भारत छोड़ो आन्दोलन से बहुत प्रभावित हुए।[१७]

सन्दर्भ

१. उमा शंकर, 'संताल संस्कार की रूपरेखा', दुमका १६६५ पृ. ६२-६४.
२. ओमैली एल. एल. एस., 'बिहार डिस्ट्रिक गजेटियर्सः संताल-परगनाज', रिमाइज्ड एडिशन, राय बहादुर एस. सी. मुखर्जी पटना, १६३८, पृ० ४८-५२.
३. दत्त के.के., 'एन्टी ब्रिटिश प्लॉट्स एण्ड मूवमेन्टस बिफोर १८५७', मेरठ १६७१, पृ. १०६
४. राय एन.बी. 'न्यू आस्पेक्ट्स ऑफ दि संताल इन्सटेक्शन', इंडियन हिस्टॉरीकल रिकार्ड्स कमीशन प्रोसीडिंग्स, वाल्यूम ३५ पार्ट द्वितीय, १६६०, पृ. १७१-१७६
५. समीर डोमन साहू, 'खरवार आन्दोलन', आदिवासी, राँची, १६ अक्टूबर, १६७६ पृ. ६-८
चौधरी राम चन्द्र, 'सफाहोड़ आन्दोलनः अगस्त क्रान्ति की भूमिका' आदिवासी स्वतन्त्रता विशेषांक, रांची १६८४, पृ. ०८
६. ट्रोइसी, जोसेफ 'सोशल मूवमेन्ट्स अमंग दि संतालूस', नई दिल्ली १६८४, पृ. ३३६-३६४
७. सरकार सुमित, 'मॉडर्न इंडिया', मद्रास, १६८३ पृ. ४५-४६
स्टेफन फ्यूक्स, 'रेवेलिस प्रोफेट्स', बम्बई १६६५, पृ. ५५
८. कुमार सुनील, 'शहीद भादो हेम्ब्रम और उनके पुत्र लाल हेम्बरम', बरियार हेम्बरम, आदिवासी स्वतंत्रता विशेषांक, राँची १६८४, पृ. ३७-३६.
दत्त के. के., बिहार में स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, खण्ड- १, पटना १६७४ पृ. -४७, एवं ४६१-५०१
६. उपाध्याय कमला कान्त एवं अन्य, (सम्पादक) 'भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में बिहार का योगदान', विशेषांक सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग बिहार, पटना, पृ. २२
१०. वही, पृ. २३
११. वही, पृ. २४
१२. पटना आयुक्त को, जिलाधिकारी से १ मई १६३७ की रिपोर्ट
१३. दत्त के. के., 'बिहार में स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास', भाग-३ पृ. १७३
१४. मुखर्जी लम्बोदर के समालाप के आधार पर।
१५. फ्यूक्स स्टेफन 'रिवेलियन प्रोफेट्स : ए स्टडी ऑफ मेस्ऐयानिक मूवमेन्ट्स इन इंडियन रिलीजन', एशिया पब्लिशिंग हाऊस बाम्बे, १६६५, पृ. ५५
१६. के. के. दत्त, पूर्वोक्त, १६७१, - दी संताल इन्सरेक्शन, कलकत्ता, १६४०
१७. मधुलिमये, 'अगस्त क्रान्ति व १६५७ का विद्रोह', हिन्दुस्तान १४ अगस्त, १६७३, पटना पृ. ६

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक	: आदिवासियों की परम्परागत न्याय-व्यवस्था
लेखक	: डॉ. योगेश कुमार
प्रकाशक	: परिक्रमा प्रकाशन, दिल्ली
प्रकाशन वर्ष	: २०१६
मूल्य	: रू. ७५०
पृ. सं.	: २८०

विगत कुछ दशकों से आदिवासी अस्मिता के प्रश्न भारत एवं विश्व के गवेषकों के विमर्श के केन्द्र में हैं। आदिवासियों द्वारा अपने अस्तित्व एवं पहचान के लिए किए गए संघर्ष ने भी गवेषकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। आज आवश्यकता है कि आदिवासियों की नैतिक एवं भौतिक विशिष्टता को न केवल पहचान मिले बल्कि उनकी सकारात्मक भूमिका को इतिहास में उचित स्थान दिया जाए। झारखण्ड क्षेत्र में 'कोलारियन' आदिवासियों के आगमन के बाद कालक्रम में उनकी सभ्यता संस्कृति का विकास हुआ। इसके संचालन के लिए परम्परागत नियम बने, ताकि एक समतामूलक तथा सौहार्दपूर्ण जीवन शैली की रचना हो सके। किन्तु आज भी आदिवासी क्षेत्र संघर्ष एवं द्वन्द्व से उद्धेलित हैं, जैसा कि यह ब्रिटिश काल में था। प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि सरकार एवं आदिवासी समाज के बीच उत्तरोत्तर बढ़ती हुई यह दरार क्यों है? इस पुस्तक में आदिवासियों की परम्परागत न्याय-व्यवस्था की विशेषताओं को रेखांकित करने और किस प्रकार संघर्ष कर अपनी परम्परागत न्याय-व्यवस्था को सशक्त रूप से अपने समाज पर लागू किया, पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तुत पुस्तक की समीक्षा से पूर्व यह आवश्यक है कि हम पाठकों को इसके सारांश से अवगत करवा दें। कुछ दशकों से आदिवासी अध्ययन शोधकर्त्ताओं, इतिहासकारों एवं अन्य विद्वानों के लेखन का केन्द्र रहा है। इस सक्रियता में सबअलटर्न श्रेणी के इतिहासकारों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। साथ ही सम्पूर्ण विश्व में आदिवासियों द्वारा अपने अस्तित्व एवं पहचान के लिए किए गए संघर्ष ने भी विद्वानों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। दुनिया भर के आदिवासी बुद्धिजीवी निरन्तर यह आवाज उठा रहे हैं कि उनकी नैतिक एवं भौतिक विशिष्टता को न केवल पहचान मिले बल्कि उनकी सकारात्मक भूमिका को समाज एवं इतिहास में उचित स्थान दिया जाए। उनकी विशेष मांग यह रही है कि उन्हें ट्राइब न कहकर आदिवासी नाम से पुकारा जाए एवं आदिवासियों की मूल विशेषताओं को रेखांकित किया जाए, उन्हें व्यापक स्वीकृति मिले। लेखक ने उस विमर्श को आगे बढ़ाया है जो ब्रिटिश शासन काल में शुरू हुआ था। यह मुख्यतः नृजातीय अध्ययन था, जिसका मुख्य उद्देश्य प्रशासन की सुविधा के लिए उपयोगी संवाद को एकत्रित एवं प्रकाशित करना था। इस दौरान आदिवासियों की मौखिक परम्परा का संग्रह एवं पुस्तकाकार प्रकाशित करने के महत्वपूर्ण कार्य हुए। इस संदर्भ में ज्ञान सृजन में ईसाई मिशनरियों का योगदान महत्वपूर्ण रहा। इन रचनाओं में अधिकांशतः आदिवासियों को असभ्य एवं बर्बर कौम के रूप में चित्रित करने की चेष्ठा हुई। स्वाधीनता के पश्चात् भारत के समाज विज्ञान, मानवशास्त्र एवं इतिहास के अध्ययनों के मूल स्त्रोत के रूप में उनके मूल्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। स्वाधीनता के पश्चात् आदिवासियों के ब्रिटिश विरोधी संघर्ष के प्रति विद्वानों ने विशेष रूचि दिखाई। आदिवासी रीति- रिवाजों का अध्ययन साधारणतः कानून एवं न्यायशास्त्र की एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में किया गया। समाज विज्ञानियों ने कानून एवं न्यायालयी व्यवस्था के द्वारा भारत में हो रहे सामाजिक बदलाव पर शोध किए। इनके विपरीति मानवशास्त्रियों ने विवादों के निष्पादन की प्रक्रिया पर प्रकाश डालने की चेष्ठा की। किन्तु विद्वानों के द्वारा विशेषतः आदिवासी परम्परागत न्याय-व्यवस्था के सृजन एवं क्रम विकास के धारावाहिक ऐतिहासिक शोध के विशेष प्रयास नहीं किए गए। इस दिशा में डॉ. योगेश कुमार के द्वारा "आदिवासियों की परम्परागत न्याय-व्यवस्था (दसवीं शताब्दी से २००० ई तक)" नामक पुस्तक का प्रकाशन निःसंदेह रूप से

अत्यंत प्रासंगिक प्रयास है।

डॉ. कुमार ने अध्ययन के लिए एक विस्तृत कालखंड को चुना है। आदिवासी रीति- रिवाजों के उद्भव एवं क्रम-विकास की प्रक्रिया को समझने के लिए इस तरह व्यापक कालिक अध्ययन नितांत आवश्यक है।

पुस्तक के अध्यायों का सारांश रूप में प्रस्तुतीकरण निम्नलिखित है:-

प्रथम अध्याय, प्रस्तावना के रूप में है, जिसमें लेखक ने झारखंड की जनजातियों को अपने अध्ययन का केन्द्र बनाने के उद्देश्य को स्पष्ट किया है और किस प्रकार पूरा अध्ययन पाठक के समक्ष स्पष्ट करना है इसका विवरण दिया है। इसमें एक विस्तृत पूर्व अध्ययनों की समीक्षा की गई है, जो वास्तव में सराहनीय है।

द्वितीय अध्याय 'झारखण्ड की प्रमुख जनजातियों की न्याय-व्यवस्था का एक ऐतिहासिक अध्ययन' में इस क्षेत्र की जनजातियों का ऐतिहासिक अध्ययन किया गया है, जिसका केन्द्र बिन्दु जनजातीय न्याय व्यवस्था है। इस अध्याय में लेखक ने विश्वभर की जनजातियों का तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया है, जो पाठक को और विस्तृत अध्ययन के लिए प्रेरित करता है। इसमें इनकी न्याय व्यवस्था पर पड़ने वाले विभिन्न प्रभावों का वर्णन भी किया गया है। अंततः लेखक इसी निष्कर्ष पर पहुंचता है कि अनेक बदलावों के पश्चात् भी जनजातियों में आज भी एक सशक्त व्यवस्था कायम है और आज भी आदिवासी समुदाय उसी को अपने समाज में लागू कर रहा है और करना चाहता है।

तृतीय अध्याय में राजवंशों के कालों में जनजातियों की न्याय-व्यवस्था को विस्तृत रूप से स्पष्ट एवं प्रस्तुत करने का प्रयास है। आदिवासी जनजातियों की न्याय-व्यवस्था का सृजित राज्यों के साथ टकराव युगों से होता आया है। राज्य इन्हें अपनी मुख्यधारा में लाने का प्रयास करते रहे हैं। इस अध्याय में प्राचीन काल से वर्तमान तक विभिन्न राजवंशों के संघर्ष को विस्तृत प्रस्तुति दी गई है। विभिन्न राजवंशों के अध्ययन से यहाँ यह स्पष्ट भी किया गया है कि इन जनजातीय व्यवस्थाओं के साथ संतुलन बनाने का प्रयास भी रहा है। अलग-अलग क्षेत्रों में जनजातियों के साथ एक समझौते के अंतर्गत प्रशासनिक व्यवस्था को चलाया गया। जनजातियों की अपनी प्रशासनिक व्यवस्था इतनी सुदृढ़ थी कि जिसके अंतर्गत उन्होंने राजवंशों को भी जनजातीय क्षेत्रों में बसने में सहायता की। अतः जनजातीय परम्परागत व्यवस्था से राजवंश भी प्रभावित हुए बिना न रह सके और उन्होंने इसके साथ सामंजस्य स्थापित किया। यही उनके लिए आवश्यक भी था।

चतुर्थ अध्याय, १७६७ से १८५७ तक की जनजातीय न्याय-व्यवस्था एवं उस पर ईस्ट इंडिया कम्पनी का प्रभाव में आधुनिक काल का वर्णन है, जो वास्तव में औपनिवेशिक राज्य के साथ जनजातियों के टकराव की कहानी है। १७६७ से १८५७ के बीच ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राज्य के साथ जनजातीय व्यवस्था का टकराव हुआ। यह वास्तव में आदिवासी न्याय- व्यवस्था के लिए संक्रमण काल था। इनकी व्यवस्था में आधुनिक राज्य ने विभिन्न प्रकार के हस्तक्षेप किये, जो प्रशासनिक परिवर्तनों के रूप में स्पष्ट किए गए हैं। झारखंड क्षेत्र की विभिन्न आदिवासी जनजातियों के समक्ष कई बार अंग्रेजों को भी झुकना पड़ा। इन क्षेत्रों को शांत करने की कोशिश में कई प्रशासनिक परिवर्तन किए गए। इनके असंतोष का विकट स्वरूप अंग्रेजों के सामने कोल और संथाल विद्रोहों के रूप में सामने आ चुका था। कुल मिलाकर कम्पनी शासन के अंतर्गत एक आदिवासी असंतोष की भावना का जन्म हुआ, जो भविष्य में भी बना रहा। विभिन्न जनजातीय विद्रोह, इसी असंतोष का परिणाम थे।

अध्याय पाँच में १८५७ से १६४७ तक की जनजातीय न्याय-व्यवस्था एवं उस पर ब्रिटिश शासन व्यवस्था के प्रभाव का विस्तृत वर्णन लेखक ने किया है। १८५७ के पश्चात् भारत में औपनिवेशिक शासन एक और अधिक संगठित राज्य के रूप में सामने आया। अंग्रेजी शासन की इस व्यवस्था का प्रभाव जनजातियों की सामाजिक व्यवस्था पर पड़ना शुरू हो गया। अब जनजातीय वर्ग अपने न्यायिक अधिकारों से वंचित होने लगा था, जिसके कारण जगह-जगह असंतोष की भावना व्याप्त

थी। इसी असंतोष को विद्रोहों के रूप में लेखक ने स्पष्ट किया है। औपनिवेशिक राज्य में समय-समय पर जनजातीय क्षेत्रों के लिए विभिन्न प्रशासनिक प्रावधानों को अधिनियमों का रूप दिया। इस प्रकार अलग-अलग प्रशासनिक प्रावधानों के अंतर्गत प्रशासनिक ढांचे को मजबूत करने का प्रयास किया गया। प्रशासनिक प्रावधानों को आदिवासियों के शोषण से कुछ हद तक मुक्त किया जो स्वशासन की परम्परा थी, वह नष्ट हो गई। परन्तु कुछ क्षेत्रों में उसे फिर से लागू करने का प्रयास किया गया, फिर भी जनजातीयों की न्याय व्यवस्था समाप्ति की ओर ही बढ़ती गई। औपनिवेशिक राज्य का इन पर नियंत्रण और कड़ा होता चला गया। अब यहाँ न्याय के लिए औपनिवेशिक राज्यों की अदालतों का विशेष रूप से फौजदारी मामलों में सहारा लिया जाने लगा। उनके संस्थागत प्रशासनिक अधिकार समाप्त करने की कोशिश की गई।

षष्ठ अध्याय "१६४७ से २००० तक की जनजातीय न्याय-व्यवस्था एवं स्वतंत्र राज्य में उनकी न्यायिक अस्मिता को बनाए रखने का प्रयास" में लेखक ने इन प्रयासों को विस्तृत रूप से एक समाधान के रूप में प्रस्तुत करने की कोशिश की है। अब भारत एक स्वतंत्र राज्य बन चुका था और इसके समक्ष भारत की विभिन्नता में एकता को बनाये रखने की चुनौती थी। इसीलिए भारतीय राज्य ने अपने अंतर्गत विभिन्न भिन्नताओं में सामंजस्य स्थापित करने के कदम उठाए। भारत की स्वतंत्रता के बाद सरकार की ओर से जनजातियों के अधिकार और उनकी न्यायिक अस्मिता को बनाए रखने का प्रयास किया। पंचायती राज का विशेष कानून (Panchayati Raj Extension in Scheduled Areas) लाया गया ताकि इन जनजातीय व्यवस्थाओं को कुछ हद तक मुख्यधारा में समायोजित किया जा सके। इसका उद्देश्य यहाँ के विकास को वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार किया जा सके।

लेखक का मानना है कि आदिवासी समाज उपर्युक्त प्रयासों के पश्चात् आज भी शोषित है और अपने अधिकारों के लिए जूझ रहा है। आजादी के बाद से अब तक कोई खास बदलाव नहीं हुए हैं। आदिवासी क्षेत्रों में विकास की राह अब भी कोसों दूर है। उनकी पारम्परिक प्रशासनिक व्यवस्था में ह्रास होता जा रहा है। उनके मुख्य विषय आज गौण हो गये हैं। ये अपने अस्तित्व के संकट से जूझ रहे हैं। छोटा नागपुर के कुछ जनजातीय समुदाय आज विलुप्त होने के कगार पर खड़े हैं।

सातवें अध्याय "जनजातियों पर इस व्यवस्था का प्रभाव एवं उनकी विशेष वर्तमान स्थिति" में भी आधुनिक राज्य के प्रभाव का ही विस्तृत वर्णन किया है और जनजातीय व्यवस्था की वर्तमान स्थिति स्पष्ट की है।

अंततः लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि जनजातियों ने अपनी परम्परागत न्याय-व्यवस्था को बचाए रखने का भरसक प्रयास किया है, जो उनकी सामाजिक व्यवस्था के लिए आज भी महत्वपूर्ण है। लेखक के अनुसार आने वाला समय आदिवासी समुदाय के लिए कठिनाइयों का दौर होगा और क्या वह अपने अस्तित्व की रक्षा कर पाऐंगे? इस प्रश्न के साथ लेखक पाठक को चिंतन करने के लिए छोड़ देता है।

इस पुस्तक के लिए लेखक ने स्त्रोतों का गहन एवं विस्तृत अध्ययन किया है। प्राथमिक स्त्रोतों में अभिलेखागारीय स्त्रोत राष्ट्रीय स्तर से लेकर प्रांतीय स्तर तक के स्त्रोतों का प्रयोग किया गया है। राष्ट्रीय अभिलेखागार, बिहार राज्य अभिलेखागार, ब्रिटिश म्यूजियम लाइब्रेरी, लंदन इत्यादि में संरक्षित प्राथमिक स्त्रोतों को लेखक ने अपना आधार बनाया। इनके अतिरिक्त संदर्भ ग्रंथ सूची से द्वितीयक स्त्रोंतों का प्रयोग भी स्पष्ट होता है। विभिन्न जर्नलस, बुलेटिन एवं मासिक पत्रिकाएं भी इस अध्ययन में प्रयोग की गई हैं। कुछ अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध एवं स्वयं के प्रकाशित लेख भी स्त्रोत के रूप में यहाँ स्पष्ट दिखाई देते हैं। विभिन्न समाचार-पत्रों, साक्षात्कारों एवं फील्डवर्क का प्रयोग भी किया गया है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि पुस्तक का अकादमिक क्लेवर समृद्ध एवं सुव्यवस्थित है।

समीक्षकः डॉ. जयवीर सिंह धनखड़
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग,
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक	: कश्मीर समस्या एक विश्लेषणात्मक अध्ययन
लेखक	: डा. मानिक लाल गुप्ता
प्रकाशक	: एटलांटिक पब्लिशर, नई दिल्ली
प्रकाशन वर्ष	: २०१७
मूल्य	: रू. ३६५
पृ. सं.	: ६०

प्रस्तुत पुस्तक कश्मीर को ऐतिहासिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं कुछ सीमा तक आर्थिक दृष्टि से समझने के लिए एक वृहत् आधार प्रदान करती है। यद्यपि विषय को समझने के लिए लेखक द्वारा मूलतः ऐतिहासिक एवं वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। वह समस्या का विश्लेषणात्मक विवेचन करने में भी पूर्णतः सफल रहे हैं। प्रथम अध्याय में मौर्या साम्राज्य से प्रारंभ कर बारहवीं शताब्दी तक कश्मीर के इतिहास को सुगम्य तरीके से दर्शाया गया है। द्वितीय अध्याय में मध्यकालीन इस्लाम के प्रवेश को दिखाते हुए तत्कालीन शासन व्यवस्था एवं सामजिक संरचना का वर्णन किया गया है। इन अध्यायों में लेखक द्वारा कई ऐसे तथ्यों का उद्घाटन किया गया है जो लगभग अविदित थे। कश्मीर की विशिष्ट भौगोलिक स्थिति से जनित ऐतिहासिक घटनाक्रम हमें आने वाले समय में कश्मीर की दु:साध्य समस्या का पूर्वानुमान देता है। तृतीय एवं चौथे अध्याय में लेखक द्वारा भारत की आजादी तक के कश्मीर के इतिहास को रोचक शैली में दर्शाया गया है। इन अध्यायों का मुख्य विषय राजा गुलाब सिंह का जम्मू कश्मीर का शासक बनना एवं कश्मीर में डोगरा वंश का राज है। इस अध्याय में सिख साम्राज्य के विघटन एवं इस सबमें राजा गुलाब सिंह की भूमिका पर पारंपरिक इतिहासकारों के दृष्टिकोण एवं निष्कर्ष को लेखक द्वारा स्वीकार किया गया है। पांचवे अध्याय में उन परिस्तिथियों का विवेचन किया गया है जिन्होंने भारत-पाकिस्तान के मध्य कश्मीर समस्या को जटिल एवं असाध्य रूप दे दिया है। लेखक इसमें भी परंपरागत इतिहास लेखन (हिस्ट्रियोग्राफी) के समर्थन में दिखते हैं। इसके बाद के अध्यायों में क्रमशः कश्मीर की राजनीति में शेख अब्दुल्ला के उदय एवं कश्मीर को विशेष राज्य का दर्जा दिलाने में उनकी भूमिका का निष्पक्ष विवेचन किया गया है। साथ ही कश्मीर के प्रति पाकिस्तान की सोच के निर्माण का विकास क्रम दर्शाया गया है। इस तरह से लेखक द्वारा कश्मीर की समस्या को ऐतिहासिक विश्लेषण के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इस प्रक्रिया में उद्घाटित कई तथ्यों से पाठकों को कश्मीर समस्या को स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों ही स्तरों पर समझने में मदद मिलेगी।

- समीक्षक

प्रोफेसर मीना पथनी

अध्यक्ष राजनीति विज्ञान विभाग

कुमाऊँ विश्वविद्यालय अल्मोड़ा परिसर

अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक	: सांस्कृतिक संरचना में प्रवृत्त नीतितत्व
लेखक	: डॉ. कनक रानी
प्रकाशक	: नवभारत प्रकाशन, दिल्ली
प्रकाशन वर्ष	: २०१७
मूल्य	: रू. ७५०
पृ. सं.	: १८१

प्रस्तुत पुस्तक में डॉ. कनक रानी ने भारतीय संस्कृति, तत्वदर्शन, समाज और साहित्य विषयक अपने विचारों को क्रमशः सनातनता और ऐतिहासिकता, आध्यात्म विद्या और योग, नैतिक आदर्श और सामाजिक यथार्थ, अनुभूति और अभिव्यक्ति, विश्वशान्ति और धर्म की अवधारणा इत्यादि के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

पुस्तक का मूल उद्दिष्ट भारतीय संस्कृति संरचना में प्रवृत्त नीतितत्वों की खोज करना तथा उन्हें व्याख्यायित करना है तद्नुसार भारतीय अस्मिता को जगाना एवं उसकी रक्षा करना है। दार्शनिक या धार्मिक और सांस्कृतिक परम्परा की चर्चा उसी चिन्तन प्रवाह का एक अंग है। जीवन के विविध नैतिक मूल्यों यथा अहिंसा, धैर्य, क्षमा, दान, मैत्री, कर्मशीलता, अनासक्ति, आचार, परोपकर, संतोष, धर्म इत्यादि के स्वरूप और इनके आपेक्षिक महत्व का प्रश्न दर्शन का केन्द्रीय विषय है। वर्तमान काल में भी यही नैतिक तत्व पुनः सर्वाधिक महत्व के हो गये हैं क्योंकि भारतीय विचारशील लेखकों की चिंता का मुख्य केन्द्र, इसी दुनिया अर्थात संसार का जीवन है, यहां पग-पग पर व्यक्तियों एवं वर्गों के स्वार्थ परस्पर टकराते हैं। भारत में भौतिकवादी दृष्टिकोण के समर्थन के लिए प्रायः यह तर्क दिया जाने लगा है कि पुरूषार्थ चतुण्टय में अर्थ और काम महत्वपूर्ण पुरूषार्थ है और उनका सेवन अतः निरापद है। वस्तुतः ऐसा नहीं है अर्थ और काम पुरूषार्थ चतुण्टय की पद्धति में तभी मूल्यवान माने गये हैं जब धर्म द्वारा वे परिसीमित हों और उनका उदातीकरण किया जाये।

डॉ. कनकरानी ने अपनी पुस्तक में नीति तत्वों को विशेष रूप से धर्म के अनुरूप रेखांकित किया है तथा स्थान-स्थान पर वेदों, स्मृतियों एवं ब्राह्मण संहिताओं इत्यादि के सन्दर्भों को उद्धृत करके सुव्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास भी किया है।

डॉ. कनकरानी संस्कृत की गम्भीर विद्वान तथा शिक्षिका तो हैं ही साथ ही उनकी साहित्य एवं दर्शन में विशेष रूचि भी है। उनका हिन्दी भाषा पर सुन्दर अधिकार है। उनकी भाषा प्राज्जल और अभिव्यक्ति शैली सुठरी एवं प्रसादगुण सम्पन्न है। आशा है भारतीय संस्कृति एवं नीति तत्वों से संबंधित उनकी यह पुस्तक नीति मीमांसा के विद्यार्थियों के लिए विशेषकर और सामान्यतया दर्शन मात्र के जिज्ञासु पाठकों और उसका विधिवत् अध्ययन करने वाले छात्रों के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी।

समीक्षक
प्रोफेसर विभा मुकेश
अध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग
हे.न.ब. गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय
श्रीनगर (गढ़वाल) उत्तराखण्ड

डॉ. राकेश कुमार स्मृति शोध पुरस्कार

डॉ. राकेश कुमार की स्मृति को अक्षुण्य बनाये रखने के लिए '**समाज विज्ञान विकास संस्थान', बरेली (उ.प्र.)** ने यह निर्णय लिया था कि शोध अध्येताओं को अच्छे शोध-लेख लिखने के लिए प्रेरित करने हेतु शोध पत्रिका ''**राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा**'' में शोध अध्येताओं द्वारा लिखे गये वर्ष के दोनों अंकों के शोध पत्रों को विशेषज्ञों के द्वारा मूल्यांकित कराकर सर्वश्रेष्ठ शोध पत्र लिखने वाले शोध अध्येता को '**डॉ. राकेश कुमार स्मृति शोध प्रशस्ति पत्र**' तथा रू. 2100/- मूल्य की शोध सहायक पुस्तकें पुरस्कार स्वरूप संस्थान द्वारा प्रदान की जायेंगी।

संस्थान के उपर्युक्त निर्णय के क्रम में वर्ष 2017 के दोनों अंकों में शोध अध्येताओं द्वारा लिखे गये शोध पत्रों का विद्वानों द्वारा मूल्यांकन कराकर वर्ष 2017 के सर्वश्रेष्ठ शोध पत्र लिखने वाले शोध अध्येता की घोषणा की जाती है।

सुश्री प्रियंका लोदवाल, शोध अध्येत्री अर्थशास्त्र अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) को उनके शोध पत्र '*भारत में उपभोक्ता व्यवहार पर वैश्विक कारकों का प्रभाव*' को 2017 का डॉ. राकेश कुमार स्मृति शोध पुरस्कार प्रदान किया जाता है। उन्हें एक प्रशस्ति पत्र तथा रू. 2100/- मूल्य की पुस्तकें प्रदान की जाती हैं।

संस्थान के इस कार्य में प्रोफेसर इला शाह विभागाध्यक्ष समाजशास्त्र विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय अल्मोड़ा परिसर (उत्तराखण्ड), डॉ. गिरीश चन्द्र पाण्डेय, एसोशिएट प्रोफेसर इतिहास विभाग, मुंगेर विश्वविद्यालय (बिहार) तथा प्रोफेसर आर.के. मिश्रा अध्यक्ष राजनीतिशास्त्र विभाग, शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय छिन्दवाड़ा (म.प्र.) ने प्रशंसनीय सहायता की है। संस्थान इन विद्वानों के प्रति आभार व्यक्त करता है।

डॉ. जे.एस. राठौर
सचिव
समाज विज्ञान विकास संस्थान, बरेली